Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
March-April 2026
Volume 14, Issue 3-4

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni
Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
www.ginajournal.com

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 14 अंक : 3 – 4, भाग – 3 मार्च – अप्रैल : 2026 आईएसएसएन : 2321 – 8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर, राज.
प्रधन सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)
अंतर्राष्ट्रीय सम्पादक मण्डल :
डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।
शिओंग छन श्यू, चीन।
डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे
साहित्यकार, शिक्षाविद, नीदरलैंड।
डॉ. सुनीता शर्मा
हिन्दी साहित्यकार, कवयित्री, संपादक
एवं शिक्षाविद् मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया
डॉ. अनुरुद्ध बायन
मध्य कामरूप कॉलेज, सुभा
जिला बारपेटा, असम।
डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड
कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक
कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।
श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा
अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।
कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)
डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)
डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।
डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर
डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)
डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)
डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।
श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार, अनुवादक, यूक्रेन।
डॉ. हेमराज न्यौपाने
काठमाण्डु, नेपाल।
डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।
डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।
डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।
डॉ. मधुबाला
राजकीय महाविद्यालय, लाखनमाजरा।
डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश
डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)
डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा
डॉ. राजेश शर्मा
शिक्षा संकाय, टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)
डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)
डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर
डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश
डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।
डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की
डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, लखनऊ।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग**, एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज**, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07–07
2.	जनजातीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन की आवश्यकता	डॉ. नरेश कुमार	08–16
3.	INDIANS DIASPORA IN THAILAND : MIGRATION AND OCCUPATIONAL ENGAGEMENTS	Chandan Kumar Yadav, Prof. Pawan Kumar Yadav	17-25
4.	कल्याणकारी योजनाओं में आधार और डिजिटल पहचान की भूमिका	आस्था तिवारी, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या)	26–30
5.	A STUDY ON ACADEMIC STRESS IN SECONDARY SCHOOL STUDENTS	Dr. Aarti Aarya, Ms. Sheetal Bhagat	31-37
6.	भारतीय संसद की कार्यप्रणाली में गिरावट : कारण, परिणाम और सुधार की सम्भावनाएँ	डॉ० राजेश कुमार	38–42
7.	'अकाल में उत्सव' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान जीवन की त्रासदी	पवन कुमारी	43–47
8.	शाश्वत चेतनता के प्रतिरूप : 'हिन्द की चादर' श्री गुरू तेग बहादुर जी	डॉ. तेजिंदर कौर	48–52
9.	कृष्णा सोबती के उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. पंचानन महतो	53–57
10.	प्याजे के रचनावाद के माध्यम से माध्यमिक विज्ञान शिक्षा का पुर्नव्याख्यात्मक दार्शनिक विश्लेषण	डॉ. आरती आर्य	58–71
11.	Impact of Artificial Food Dyes and Preservatives on Human Health and Strategies for Sustainable Regulation in India	Bhagirath Mal Raigar	72-78
12.	मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध : भारतीय परिप्रेक्ष्य में फिलिप्स वक्र का अध्ययन	राकेश कुमार वर्मा	79–85
13.	पन्नाधाय का त्याग, बलिदान व राजधर्म	डॉ. उर्मिला शर्मा	86–89
14.	Socioeconomic Status and Academic Achievement : Systemic Barriers in Education	Dr. Manish Rathore	90-94
15.	From Rote to Critical Thinking : Curriculum Reform in Secondary Education	Dr Priyanka Singh	95-98
16.	मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संतुलन : समकालीन राजनीतिक विमर्श	नरेशपाल	99–103
17.	कुइयाँजान उपन्यास में पारिस्थितिकीय विमर्श	डॉ कला ए.	104–109

18.	**English Communication Skills and Employability in Non-Native English-Speaking Countries**	**Dr. S. Sudha, Dr. M. Mary Velanganni, Dr. Vijayalakshmi. S, Dr. B. Abirami, Mr. B. Manoj Kumar, Dr. K. Angel Vinoliya, Dr. S. Swarnalatha**	**110-114**
19.	समसामायिक कला जगत में जयपुर की महिला कलाकारों के चित्रों एवं शिल्पों के माध्यम	अमनदीप कौर, डॉ. सोनिया रानी	115–117
20.	**Effective Classroom Management Techniques And Improvement In Student Behavior : A Detailed Study**	**Dr. Mahesh Kumar Sharma**	**118-121**
21.	**SHG समूह की प्रमुख भूमिका : महिला सशक्तिकरण, सामाजिक परिवर्तन और ग्रामीण विकास का एक प्रभावी माध्यम**	**Anju Kumari**	**122-132**
22.	महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना : ग्रामीण आजीविका सुरक्षा, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास का एक सशक्त माध्यम	**Pushpa Kumari**	**133-142**
23.	किन्नर जीवन : पीड़ा की एक अनकही दास्तान ('पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	विशाल साहु	143–148
24.	विद्यार्थियों की शैक्षणिक प्रगति और मानसिक स्वास्थ्य पर डिजिटलीकरण का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ राजीव कुमार सक्सेना	149–155
25.	**Influence of Animated Media on Value Formation and Emotional Responses in Secondary School Students**	**Dr Arti Arya, Ms Ayushi**	**156-167**
26.	हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्वास्थ्य समस्या और वनौषधि ज्ञान परंपरा	रिया श्रीवास्तव	168–171
27.	कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी चेतना के स्वर	डॉ. नीतू शर्मा	172–177
28.	एक महिला साहित्यकार की विवादित आत्मकथा 'अन्या से अनन्या'	शशि नाथ प्रसाद	178–181
29.	हठयोग एवं स्वास्थ्य : एक समीक्षात्मक अध्ययन	संतोष कुमारी[1], डॉ. सत्यप्रकाश पाठक[2], अजय कुमार[3], महेन्द्र सिंह[4]	182–189
30.	श्रीरामचरितमानस में संस्कृति का धार्मिक चित्रण	पूनम, प्रोफेसर संजीव कुमार	190–193
31.	भारतीयज्ञानपरम्परायामन्तर्निहितवैज्ञानिकतत्त्वानि	सुभाषः पालः	194–198
32.	बी. एल. एड. प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान पर एक अध्ययन	डॉ. सुदीप कुमार	199–202
33.	दलित विमर्श : आर्तनाद से अस्मिता की प्रखर चेतना तक	डॉ. रेशमा	203–208
34.	**Artificial Intelligence and Employment : Opportunities, Challenges and Future Impact**	**Dr. Nutan Sharma**	**209-211**
35.	**A Study on the Impact of Internet Dependency on Academic Proformance Among College Students**	**Dr. Merlin Jenefer**	**212-215**

सम्पादक की कलम से.....

''शब्दों की लौ से ज्ञान का दीप जले,
हर पंक्ति में सृजन का संगीत ढले।''

प्रिय पाठकों,

नवसृजन और शोध की इस यात्रा में एक बार फिर गीना शोध संगम का नया अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। साहित्य, शोध और अभिव्यक्ति के इस मंच पर, हम हर बार नई सोच, नई धारा और नई दृष्टि को स्थान देने का प्रयास करते हैं। यह अंक भी उसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए, विचारों के गहरे सागर से निकले कुछ अनमोल मोतियों को संजोकर आपके सामने ला रहा है।

इस बार के अंक में हमने साहित्य और शोध की उन प्रवृत्तियों पर विशेष ध्यान दिया है, जो समाज के बौद्धिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को नई दिशा देती हैं। हमारे रचनाकारों ने अपने विचारों को शब्दों में ढालते हुए, जीवन के विभिन्न आयामों को उकेरा है। कविता, लेख, समीक्षाएँ और शोध आलेखों के माध्यम से, यह अंक एक सार्थक विमर्श को जन्म देगा।

''हर शब्द में एक आकाश छिपा होता है,
हर विचार में उजाले की तलाश छिपी होती है।''

आज के समय में जब सूचनाओं की बाढ़ है, तब सही शोध और सारगर्भित साहित्य की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। एक ओर साहित्य समाज का दर्पण है, तो दूसरी ओर शोध वह मशाल है, जो हमें सटीक और तर्कसंगत निष्कर्ष तक पहुँचाती है। इसी दृष्टिकोण से हमारे लेखकगण अपनी मौलिक और शोधपरक रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं, जो निश्चित रूप से पाठकों के मन–मस्तिष्क को प्रबुद्ध करेंगी।

इस अंक में प्रस्तुत कविताएँ मानवीय संवेदनाओं को उजागर करती हैं, तो आलेख समाज के विविध पक्षों पर विचार प्रस्तुत करते हैं। आशा है कि यह अंक आपकी सोच को नई दिशा देगा और ज्ञान के प्रसार में एक छोटी–सी भूमिका निभाएगा।

''कलम की रोशनी से अंधेरे छँटते रहेंगे,
हम विचारों से नई दुनिया गढ़ते रहेंगे।''

आपकी प्रतिक्रियाओं और सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

–संपादक,
गीना शोध संगम

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 8–16
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

जनजातीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन की आवश्यकता

डॉ. नरेश कुमार
(अतिथि व्याख्याता–समाजशास्त्र)
वीरांगना अवंती बाई शासकीय महविद्यालय, छुईखदान, जिला–खैरागढ़–छुईखदान–गण्डई (छ.ग.)

सारांश :

जनजातीय समाज सहस्त्राब्दियों से अर्जित ज्ञान, परंपराओं एवं सांस्कृतिक विरासत का अमूल्य भंडार है। यह ज्ञान परंपरा न केवल पर्यावरण, औषधि, कृषि और जल प्रबंधन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है, अपितु सामाजिक सामंजस्य एवं टिकाऊ विकास की दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक है। वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण एवं जलवायु परिवर्तन के दौर में यह ज्ञान तेजी से लुप्त होता जा रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में जनजातीय ज्ञान परंपरा के विविध आयामों, उसके संरक्षण की आवश्यकता, वर्तमान चुनौतियों एवं संभावित समाधानों पर विस्तृत विवेचना की गई है। इस ज्ञान का संरक्षण केवल एक नैतिक दायित्व नहीं है, बल्कि यह टिकाऊ विकास, सामाजिक न्याय एवं सांस्कृतिक विविधता के लिए एक रणनीतिक आवश्यकता भी है। इसके लिए सरकार, शोध संस्थानों, नागरिक समाज, उद्योग एवं सबसे महत्वपूर्ण स्वयं जनजातीय समुदायों का समन्वित प्रयास अपेक्षित है। महात्मा गांधी ने कहा था 'भारत गाँवों में बसता है।' उसी भाव में यह भी कहा जा सकता है कि भारत का आत्मा जनजातीय जीवन–दर्शन में विद्यमान है। इस आत्मा को बचाए रखना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है। जनजातीय ज्ञान का संरक्षण एवं संवर्धन न केवल हमारे अतीत का सम्मान है, बल्कि हमारे भविष्य की नींव भी है। आदिवासी बाहुल्य राज्य छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार ने ट्राइबल म्यूजियम बनाकर आदिवासी संस्कृति, सभ्यता और उनकी जीवनशैली को आमजन तक पहुँचाने के लिए अभिनव पहल की है। इसके लिए नवा रायपुर अटल नगर में करीब 10 एकड़ क्षेत्र में भव्य एवं आकर्षक आदिवासी संग्रहालय (ट्राइबल म्यूजियम) बनाया गया है, जो राज्य का पहला ट्राइबल म्यूजियम है।

शब्दकुंजी : जनजातीय ज्ञान, परंपरागत ज्ञान, सांस्कृतिक विरासत, जैव विविधता, सतत विकास।

प्रस्तावना :

भारत विश्व का एक ऐसा देश है जहाँ 700 से अधिक जनजातीय समूह निवास करते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जनजातियों की कुल जनसंख्या 10,42,81,034 (लगभग 10 करोड़) है, जो देश की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। इसमें पुरुषों की संख्या 5,24,09,823 तथा महिलाओं की

संख्या 5,18,71,211 है। भारत में जनजातियों के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों एवं विचारकों ने अलग–अलग अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं। वेरियर एल्विन ने जनजातियों के संरक्षण हेतु 'राष्ट्रीय पार्क' (National Park) की अवधारणा दी, जिसका उद्देश्य उनकी संस्कृति और जीवन–शैली को बाहरी प्रभावों से सुरक्षित रखना था। ठक्कर बापा को 'आदिवासियों का मसीहा' कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने उनके उत्थान और कल्याण के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। संविधान सभा के सदस्य जयपाल सिंह मुंडा तथा ठक्कर बापा ने जनजातीय समुदायों के लिए 'आदिवासी' शब्द के प्रयोग को प्रचलित किया। वहीं, जी. एस. घुरिये ने जनजातियों को 'पिछड़े हिन्दू' के रूप में वर्णित किया। एल. पी. विद्यार्थी, जिन्हें भारत में मानवशास्त्र का प्रमुख विद्वान माना जाता है, ने इन्हें 'गिरिधन' की संज्ञा दी। इसके अतिरिक्त, महात्मा गांधी ने जनजातीय समुदायों को 'गिरिजन' अर्थात् 'पहाड़ों पर रहने वाले लोग' कहकर संबोधित किया। भारतीय संविधान में इन्हें 'अनुसूचित जनजाति' (Scheduled Tribes) के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। ये जनजातियाँ देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों – पहाड़ों, जंगलों, मैदानों एवं तटीय इलाकों में बसी हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, परंपरा एवं ज्ञान प्रणाली होती है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक परंपरा, व्यवहारिक अनुभव एवं सामुदायिक जीवन के माध्यम से हस्तांतरित होती रही है। जनजातीय ज्ञान परंपरा केवल लोक–कथाओं तक सीमित नहीं है। यह एक व्यापक ज्ञान प्रणाली है जिसमें वनस्पति विज्ञान, चिकित्सा, जल संरक्षण, कृषि पद्धतियाँ, मौसम पूर्वानुमान, पारिस्थितिकी प्रबंधन एवं सामाजिक न्याय के सिद्धांत सम्मिलित हैं। इस ज्ञान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल, पर्यावरण–हितैषी एवं सामुदायिक रूप से सत्यापित है। आज के संदर्भ में जब विश्व जलवायु संकट, खाद्य असुरक्षा, औषधि प्रतिरोध और सांस्कृतिक एकरूपता की चुनौतियों से जूझ रहा है, तब जनजातीय ज्ञान परंपरा का संरक्षण एवं संवर्धन एक राष्ट्रीय एवं वैश्विक अनिवार्यता बन गई है।

1. छत्तीसगढ़ – जनजातीय ज्ञान का जीवंत केंद्र :

छत्तीसगढ़ को 'जनजातियों का राज्य' कहना अतिशयोक्ति नहीं है। राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 32% भाग जनजातीय समुदायों से है, जो राष्ट्रीय औसत (8.6%) से कहीं अधिक है। राज्य में 42 अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें गोंड, बैगा, कोरकू, कमार, हल्बा, ओरांव (कुडुख), भतरा, धुर्वा, दोरला एवं अबूझमाड़िया प्रमुख हैं। राज्य के बस्तर, सरगुजा, रायगढ़, कांकेर एवं कोरबा जिलों में जनजातीय जनसंख्या का घनत्व सर्वाधिक है। छत्तीसगढ़ के घने जंगल, नदियाँ, पहाड़ियाँ एवं मैदान इन जनजातियों के लिए केवल निवास–स्थान नहीं, बल्कि ज्ञान, आस्था एवं अस्मिता के स्रोत हैं। यहाँ की जनजातियों ने शताब्दियों में पर्यावरण के साथ सहजीवी संबंध स्थापित कर एक विशाल एवं बहुआयामी ज्ञान–प्रणाली विकसित की है।

2. गोंड जनजाति की ज्ञान परंपरा :

गोंड छत्तीसगढ़ की सबसे बड़ी जनजाति है। बस्तर, कोंडागाँव, नारायणपुर एवं दंतेवाड़ा जिलों में इनकी विशाल जनसंख्या है। गोंडों का ज्ञान–भंडार अत्यंत विविधतापूर्ण है।

2.1 वनस्पति एवं औषधि ज्ञान :

गोंड समाज में 'वैद्य' या 'सिरहा' (पारंपरिक चिकित्सक) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये वनस्पति–आधारित उपचारों के गहरे ज्ञाता होते हैं। गोंडों को 500 से अधिक वनौषधियों का ज्ञान है जिनका उपयोग बुखार, सर्पदंश, हड्डी–भंग, प्रसव–सहायता एवं चर्म रोगों में किया जाता है।

- 'तिखुर' (Curcuma Angustifolia) – पेट रोगों में औषधि के रूप में।
- 'महुआ' (Madhuca Longifolia) – पोषण, औषधि एवं आर्थिक उपयोग।
- 'सफेद मूसली' (Chlorophytum Borivilianum) – शक्तिवर्धक औषधि।
- 'हर्रा–बहेड़ा–आँवला' (त्रिफला) – पाचन एवं रोग–प्रतिरोधक।
- 'पत्थर चट्टा' (Bryophyllum Pinnatum) – घाव एवं जलन उपचार।

बस्तर का 'जड़ी-बूटी बाजार' :

बस्तर के जगदलपुर में प्रत्येक रविवार को लगने वाले साप्ताहिक बाजार में 200 से अधिक प्रकार की वनौषधियाँ बिकती हैं। गोंड एवं हल्बा समुदाय की महिलाएँ इन्हें बेचती हैं। अनेक शोधकर्ताओं ने पाया है कि इनमें से 60% से अधिक वनस्पतियों के औषधीय गुण आधुनिक फार्माकोलॉजी द्वारा प्रमाणित हो चुके हैं।

2.2 गोंड चित्रकला - ज्ञान का दृश्य माध्यम :

गोंड चित्रकला केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं है – यह पारिस्थितिक ज्ञान, आध्यात्मिक दर्शन एवं सामाजिक मूल्यों का दृश्य दस्तावेज है। इस कला में पशु–पक्षी, वृक्ष, नदियाँ एवं ऋतुचक्र को विशेष प्रतीकों में चित्रित किया जाता है। दिग्गज कलाकार जनगढ़ सिंह श्याम ने गोंड चित्रकला को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाई। आज भोपाल, जबलपुर एवं बस्तर के अनेक गोंड कलाकार इस परंपरा को जीवित रखे हुए हैं। इस कला में वन्य पारिस्थितिकी तंत्र का जो ज्ञान अंकित है, वह शोध का एक समृद्ध स्रोत है।

2.3 कृषि एवं बीज-ज्ञान :

गोंड समाज में कृषि एक आध्यात्मिक अनुष्ठान है। बुवाई, रोपाई एवं फसल–कटाई के समय विशेष पूजा–पद्धतियाँ हैं। गोंड किसान देशी धान की 50 से अधिक किस्मों की पहचान रखते हैं जो सूखा–प्रतिरोधी, बाढ़–सहिष्णु एवं विभिन्न मिट्टी के लिए अनुकूल हैं।

- 'झीनी धान' – सुगंधित, कम सिंचाई में पकने वाली किस्म।
- 'दुबराज' – छत्तीसगढ़ का प्रसिद्ध सुगंधित धान।
- 'जवाफूल' – तालाब के किनारे जल–भराव में उगने वाली किस्म।
- 'कालीमूँछ' – लम्बे समय तक भंडारण योग्य पारंपरिक किस्म।

3. बैगा जनजाति - प्रकृति के संरक्षक :

बैगा जनजाति को छत्तीसगढ़ की 'विशेष पिछड़ी जनजाति' (PVTG) का दर्जा प्राप्त है। मुख्यतः कबीर धाम, राजनांदगाँव एवं बालोद जिलों में निवासरत बैगाओं को 'धरती के पुजारी' भी कहा जाता है। उनकी मान्यता है कि पृथ्वी उनकी माँ है, इसलिए वे परंपरागत रूप से हल नहीं चलाते – यह बैगा संस्कृति की सबसे अनोखी पर्यावरणीय नीति है।

3.1 बेवार (झूम खेती) की परिष्कृत पद्धति :

बैगा समुदाय की 'बेवार' खेती झूम कृषि का एक परिष्कृत रूप है जो वास्तव में एक जटिल कृषि–पारिस्थितिक प्रणाली है। इसमें एक ही खेत में 20 से अधिक फसलें एक साथ उगाई जाती हैं – जिसे आधुनिक कृषि विज्ञान 'पॉलीकल्चर' कहता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) के एक अध्ययन में पाया गया कि बैगाओं की 'बेवार' पद्धति में प्रति हेक्टेयर पोषण–उत्पादन आधुनिक एकल–फसल पद्धति से 40 प्रतिशत

अधिक था। साथ ही मृदा में कार्बनिक पदार्थ का स्तर भी उच्च था।

- कोदो–कुटकी, ज्वार, मक्का, तिल, उड़द, मूँग – सभी एक साथ।
- विभिन्न ऊँचाई की फसलें एक–दूसरे को छाया एवं पोषण देती हैं।
- बिना रासायनिक उर्वरक के मृदा स्वास्थ्य बना रहता है।
- जैव विविधता का स्वाभाविक संरक्षण होता है।

3.2 वन्य संसाधन प्रबंधन :

बैगा जनजाति के पास वन–प्रबंधन का एक सूक्ष्म, संतुलित एवं प्रभावी तंत्र विकसित हुआ है, जो उनके पारंपरिक ज्ञान और प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व की भावना को दर्शाता है। वे जंगल के विभिन्न भागों में अलग–अलग मौसमों में जाकर संसाधनों का उपयोग करते हैं, जिससे किसी एक क्षेत्र पर अत्यधिक दबाव नहीं पड़ता और वन को पुनर्जीवित होने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। इस प्रकार उनकी जीवन–पद्धति वन के सतत् उपयोग (Sustainable Use) के सिद्धांत पर आधारित है।

इसके अतिरिक्त, बैगा समाज में प्रचलित 'टोटम' (Totem) प्रणाली भी जैव विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रत्येक कुल या गोत्र किसी विशेष पशु, पक्षी या वृक्ष को अपना टोटम मानता है और उसे पवित्र समझकर उसकी रक्षा करता है। उस टोटम से संबंधित जीव या वृक्ष को नुकसान पहुँचाना सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से वर्जित माना जाता है। परिणामस्वरूप अनेक वन्य प्रजातियाँ स्वाभाविक रूप से संरक्षित रहती हैं।

इस प्रकार बैगाओं की पारंपरिक सामाजिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ न केवल उनके सामुदायिक जीवन को संगठित करती हैं, बल्कि वन और जैव विविधता के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

3.3 बैगा वैद्य – हर्बल चिकित्सा के विशेषज्ञ :

बैगा समाज में 'गुनिया' (वैद्य) का विशेष स्थान है। बैगा गुनिया जड़ी–बूटियों के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक उपचार पद्धतियों में भी दक्ष होते हैं। बैगाओं की जड़ी–बूटी चिकित्सा में 'कोंच बीज' (मानसिक विकार), 'विदारीकंद' (बल–वर्धन) एवं 'गिलोय' (ज्वर–नाशक) का विशेष प्रयोग होता है।

4. ओरांव (कुडुख) जनजाति – सामाजिक संगठन का ज्ञान :

सरगुजा एवं जशपुर जिलों में बसी ओरांव जनजाति की ज्ञान परंपरा सामाजिक संगठन एवं सामुदायिक शासन के क्षेत्र में अत्यंत समृद्ध है।

4.1. 'पाहन' प्रणाली – परंपरागत शासन :

ओरांव समुदाय की 'पाहन' (गाँव पुजारी) प्रणाली एक लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था है जिसमें धार्मिक, न्यायिक एवं पर्यावरणीय निर्णय एक व्यक्ति में केंद्रित न होकर सामुदायिक सहमति से होते हैं। यह प्रणाली विवाद–समाधान, भूमि–वितरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

4.2 'सरना' – वन-संरक्षण की धार्मिक परंपरा :

ओरांव समुदाय का 'सरना' (पवित्र वन) परंपरागत वन–संरक्षण का एक प्रभावी तंत्र है। गाँव के निकट एक निर्दिष्ट वन–खंड को 'सरना' घोषित किया जाता है जहाँ किसी प्रकार का कटान या शिकार वर्जित होता

है। इस पवित्र वन में वृक्षों की कटाई को धार्मिक पाप माना जाता है। शोधकर्ताओं ने पाया है कि 'सरना' वनों में वृक्षों की प्रजाति–विविधता एवं घनत्व आसपास के सामान्य वनों की तुलना में 3 से 5 गुना अधिक होता है। यह परंपरागत जैव विविधता संरक्षण का एक वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित उदाहरण है। सरगुजा जिले के 45 सरना वनों का सर्वेक्षण किया गया। परिणाम चौंकाने वाले थे, इन वनों में औसतन 87 वृक्ष प्रजातियाँ पाई गईं जबकि आसपास के सामान्य वन क्षेत्रों में केवल 23 प्रजातियाँ थीं।

4.3 कुडुख भाषा एवं ज्ञान :

ओरांव की 'कुडुख' भाषा द्रविड़ भाषा परिवार की है जो उत्तर भारत में द्रविड़ भाषाओं की उपस्थिति का अद्वितीय प्रमाण है। इस भाषा में पारिस्थितिकी, कृषि एवं चिकित्सा से संबंधित अत्यंत समृद्ध शब्द–भंडार है। उदाहरणार्थ, कुडुख में मिट्टी के लिए 15 से अधिक शब्द हैं जो विभिन्न प्रकार की मिट्टी की गुणवत्ता एवं कृषि–उपयोगिता का वर्णन करते हैं जो आधुनिक मृदा–विज्ञान की वर्गीकरण प्रणाली से कहीं अधिक व्यावहारिक है।

5. कमार जनजाति – लुप्तप्राय ज्ञान परंपरा :

कमार छत्तीसगढ़ की एक विशेष पिछड़ी जनजाति है जिसकी जनसंख्या 35,000 से कम है। गरियाबंद एवं महासमुंद जिलों में निवासरत इस जनजाति की ज्ञान परंपरा अत्यंत दुर्लभ एवं खतरे में है।

5.1 बाँस-शिल्प का अद्वितीय ज्ञान :

कमार जनजाति बाँस–शिल्प में अद्वितीय दक्षता रखती है। उनके पास बाँस की 20 से अधिक प्रजातियों की पहचान एवं उनके विशिष्ट उपयोग का ज्ञान है। कमार कारीगर बाँस से टोकरी, सूपा, चटाई, घर की दीवारें, बर्तन एवं संगीत वाद्ययंत्र बनाते हैं। प्रत्येक उत्पाद के लिए बाँस की विशेष प्रजाति, विशेष आयु एवं विशेष मौसम में कटान का ज्ञान आवश्यक है।

5.2 वन-संग्रहण का पारंपरिक ज्ञान :

कमार समुदाय वन–संग्रहण पर निर्भर है और उन्हें वन में खाद्य एवं औषधीय पदार्थों की पहचान का गहरा ज्ञान है। 'चार' (Buchanania Lanzan), 'महुआ', 'तेंदू', 'आचार' (Wild Mango) जैसे वनफलों के संग्रहण, प्रसंस्करण एवं भंडारण की पारंपरिक विधियाँ कमार समुदाय की खाद्य सुरक्षा का आधार हैं।

संकट में कमार ज्ञान :

2021 की जनगणना के अनुसार कमार जनजाति की जनसंख्या में पिछले दो दशकों में 12% की गिरावट आई है। उनकी मातृभाषा 'कमारी' बोलने वाले अब केवल 8,000 से कम बचे हैं। भाषाविद डॉ. योगेश्वर दास के अनुसार यदि अगले 15 वर्षों में कमारी भाषा का दस्तावेजीकरण नहीं हुआ तो यह सदा के लिए विलुप्त हो जाएगी।

6. अबूझमाड़िया – अलिखित ज्ञान का जीवित संग्रहालय :

नारायणपुर जिले के 'अबूझमाड़' (अज्ञात पहाड़ियाँ) क्षेत्र में निवासरत अबूझमाड़िया जनजाति को भारत के सबसे अलग–थलग एवं कम अध्ययन किए गए समुदायों में गिना जाता है। इनके पास पारिस्थितिक ज्ञान का एक अक्षुण्ण भंडार है।

6.1 अस्पर्शित वन का ज्ञान :

अबूझमाड़िया अपने जंगलों में वर्षों से बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप इनके वन क्षेत्र में अभी भी ऐसी जड़ी–बूटियाँ पाई जाती हैं जो अन्यत्र विलुप्त हो चुकी हैं। इनकी मानसिक 'वन–मानचित्र' की क्षमता अद्‌भुत है, ये सैकड़ों वर्ग किलोमीटर के वन में बिना किसी मार्गदर्शक के रास्ता ढूंढ सकते हैं।

6.2 प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग :

अबूझमाड़िया केवल उतना ही लेते हैं जितना आवश्यक हो, यह उनका मूल जीवन–दर्शन है। वे किसी भी पेड़ को पूरी तरह नहीं काटते, केवल जितनी जरूरत हो उतनी टहनियाँ काटते हैं। शिकार में भी एक मौसम में एक ही क्षेत्र में शिकार की सीमा होती है। यह 'सतत उपयोग' की परंपरा आधुनिक पर्यावरण प्रबंधन के सिद्धांतों से शताब्दियों पहले की है।

7. छत्तीसगढ़ में बीज-संरक्षण की जनजातीय परंपरा :

छत्तीसगढ़ को 'धान का कटोरा' कहा जाता है और इसके पीछे जनजातीय किसानों का सहस्राब्दियों का बीज–ज्ञान है। यहाँ की जनजातियों ने धान की 20,000 से अधिक देशी किस्मों को संरक्षित किया है।

7.1 'बीज माता' की परंपरा :

छत्तीसगढ़ की जनजातीय एवं ग्रामीण महिलाएँ परंपरागत रूप से बीज–संरक्षण की प्रमुख जिम्मेदार हैं। 'बीज माता' – वह महिला जो समुदाय के लिए बीजों का संरक्षण करती है, को विशेष सामाजिक सम्मान मिलता है। बीजों को मिट्टी के बर्तनों में, नीम की पत्तियों एवं राख के साथ संरक्षित किया जाता है, एक ऐसी तकनीक जो बिना किसी रासायनिक कीटनाशक के कीड़ों से बचाती है।

7.2 'इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय' एवं जनजातीय बीज ज्ञान :

रायपुर स्थित इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय ने जनजातीय किसानों के साथ मिलकर 'छत्तीसगढ़ जीन बैंक' की स्थापना की है जिसमें धान की 19,000 से अधिक देशी किस्में संरक्षित हैं। इनमें से अनेक किस्में जनजातीय किसानों द्वारा दान की गई हैं। शोधकर्ताओं ने पाया है कि जनजातीय किसानों द्वारा संरक्षित बीजों में जलवायु परिवर्तन के प्रति प्रतिरोधक क्षमता अधिक है।

बस्तर का 'बीज उत्सव' :

बस्तर जिले में प्रतिवर्ष 'बीज उत्सव' का आयोजन होता है जिसमें 50 से अधिक गाँवों के जनजातीय किसान एकत्र होकर अपने संरक्षित बीजों का आदान–प्रदान करते हैं। 2023 के उत्सव में 312 किसानों ने भाग लिया और 680 देशी बीज किस्मों का आदान–प्रदान हुआ। यह परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है।

8. जल-प्रबंधन की जनजातीय तकनीकें :

8.1 'चेकडैम' एवं 'देवझर' की परंपरा

छत्तीसगढ़ की जनजातियों में 'देवझर' (पवित्र जलधारा) की परंपरा है जिसके तहत गाँव के निकट की एक जलधारा को 'देव–जल' घोषित कर उसके आसपास के वनों की कटाई एवं उसमें प्रदूषण वर्जित किया जाता है। यह जलागम संरक्षण की एक प्रभावी पारंपरिक प्रणाली है।

8.2 पारंपरिक तालाब प्रबंधन

छत्तीसगढ़ में 'गाँव के तालाब' का प्रबंधन परंपरागत रूप से जनजातीय समुदाय द्वारा होता था। तालाब में मछली पालन, सिंचाई एवं पेयजल के उपयोग का एक संतुलित नियामक तंत्र था। तालाब के किनारे विशेष वृक्ष लगाए जाते थे, जामुन, महुआ, पीपल जो मिट्टी के कटाव को रोकते थे। यह परंपरागत जल–प्रबंधन ज्ञान आज के जल–संकट के दौर में अत्यंत प्रासंगिक है।

9. जनजातीय लोककला – ज्ञान का सांस्कृतिक माध्यम :

9.1 पंथी नृत्य – ओरांव का आध्यात्मिक नृत्य

ओरांव जनजाति का 'पंथी नृत्य' छत्तीसगढ़ की पहचान बन चुका है। यह नृत्य संत गुरु घासीदास की शिक्षाओं को जन–जन तक पहुँचाने का माध्यम है। इस नृत्य में सामाजिक समता, प्रकृति–प्रेम एवं भाईचारे के संदेश हैं, यह एक जीवित सांस्कृतिक शिक्षा–प्रणाली है।

9.2 गेड़ी नृत्य – बाँस का विज्ञान

छत्तीसगढ़ की जनजातियों का 'गेड़ी नृत्य' बाँस की लंबी खपच्चियों पर चलते हुए किया जाता है। यह न केवल एक कला है बल्कि बाँस के यांत्रिक गुणों, लचीलापन, मजबूती, भार–वहन क्षमता के व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित है।

9.3 करमा एवं सुआ – प्रकृति-पूजा के गीत

'करमा' पर्व में 'करम वृक्ष' (Nauclea Parvifolia) की पूजा होती है। यह वृक्ष वास्तव में मिट्टी के लिए लाभकारी है और इसकी पत्तियाँ जल को शुद्ध करने में सहायक हैं। जनजातीय समुदाय ने इस वृक्ष के पारिस्थितिक महत्व को धार्मिक मान्यता देकर उसके संरक्षण को सुनिश्चित किया है।

10. वर्तमान स्थिति एवं संरक्षण प्रयास :

10.1 राज्य सरकार की पहलें

छत्तीसगढ़ सरकार ने जनजातीय ज्ञान के संरक्षण हेतु अनेक कदम उठाए हैं :

- 'छत्तीसगढ़ जनजातीय संग्रहालय', रायपुर–जनजातीय संस्कृति एवं ज्ञान का दस्तावेजीकरण,
- 'बस्तर विश्वविद्यालय' में जनजातीय अध्ययन विभाग,
- 'वनौषधि परिषद' द्वारा जड़ी–बूटी कारीगरों को प्रशिक्षण एवं बाजार,
- 'छत्तीसगढ़ हस्तशिल्प विकास बोर्ड' द्वारा जनजातीय शिल्पकारों को सहयोग,
- GI Tag – दुबराज धान, कोसा रेशम, बस्तर आयरन क्राफ्ट को भौगोलिक संकेत।

10.2 नागरिक समाज के प्रयास

अनेक गैर–सरकारी संगठन एवं शोध संस्थान छत्तीसगढ़ में जनजातीय ज्ञान के संरक्षण में सक्रिय हैं :

- 'वनवासी कल्याण आश्रम' – शिक्षा एवं सांस्कृतिक संरक्षण।
- 'एकल विद्यालय फाउंडेशन' – दूरस्थ जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा।
- 'छत्तीसगढ़ महिला मंच' – महिला बीज–संरक्षकों का नेटवर्क।
- 'IGKV' का पारंपरिक कृषि ज्ञान अनुसंधान कार्यक्रम।

11. सुझाव :

- प्रत्येक जिले में 'जनजातीय ज्ञान केंद्र' की स्थापना जहाँ स्थानीय ज्ञान का संग्रह, दस्तावेजीकरण एवं प्रसार किया जाए।
- जनजातीय भाषाओं के संरक्षण हेतु विशेष अभियान एवं उनमें डिजिटल सामग्री का निर्माण।
- राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में जनजातीय ज्ञान एवं संस्कृति को अनिवार्य रूप से शामिल करना।
- जनजातीय ज्ञान–संवाहकों को 'राष्ट्रीय धरोहर व्यक्ति' का दर्जा एवं आर्थिक सम्मान।
- जैव विविधता अधिनियम एवं पेटेंट कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन एवं जनजातीय समुदायों को लाभ–वितरण सुनिश्चित करना।
- जनजातीय औषधि एवं स्वास्थ्य पद्धतियों का वैज्ञानिक अध्ययन एवं आधुनिक स्वास्थ्य तंत्र के साथ एकीकरण।
- जनजातीय युवाओं को उनकी विरासत पर गर्व की भावना जगाने हेतु सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं मीडिया सहयोग।
- जनजातीय उत्पादों एवं कलाओं के लिए उचित बाजार एवं मूल्य–श्रृंखला का विकास।

12. निष्कर्ष :

छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ एक जीवित विश्वविद्यालय हैं जो हजारों वर्षों के संचित ज्ञान को जीवन के हर पक्ष में व्यक्त करती हैं। गोंड का चित्रकला–ज्ञान, बैगा की बहुफसली कृषि, ओरांव का सामुदायिक शासन, कमार का बाँस–शिल्प, अबूझमाड़िया का पारिस्थितिक दर्शन, ये सब मिलकर मानव सभ्यता की उस वैकल्पिक परंपरा का निर्माण करते हैं जो प्रकृति के साथ, न कि प्रकृति के विरुद्ध जीना सिखाती है। आज जब जलवायु परिवर्तन, खाद्य संकट एवं जैव विविधता ह्रास विश्व की सबसे बड़ी समस्याएँ हैं, तब छत्तीसगढ़ की जनजातियों का ज्ञान केवल उनकी सांस्कृतिक धरोहर नहीं रहता, यह समूची मानवता के लिए एक अपरिहार्य संसाधन बन जाता है। आवश्यकता है कि इस ज्ञान को संरक्षित करने की प्रक्रिया में स्वयं जनजातीय समुदाय सबसे आगे रहें। बाहर से थोपे गए संरक्षण प्रयास प्रायः उस ज्ञान की आत्मा को खो देते हैं जिसे वे बचाना चाहते हैं। सच्चा संरक्षण वह है जिसमें जनजातीय समुदाय अपनी शर्तों पर अपने ज्ञान को जीते हैं, उससे आजीविका पाते हैं और उसे अगली पीढ़ी को गर्व के साथ सौंपते हैं।

संदर्भ सूची :

1. भारत सरकार. (2011). भारत की जनगणना 2011 : अनुसूचित जनजाति से संबंधित प्राथमिक जनगणना सार (Primary Census Abstract).
2. छत्तीसगढ़ शासन. (2022). जनजातीय विकास प्राधिकरण : वार्षिक प्रतिवेदन. रायपुर.
3. धुर्वे, हेमलाल. (2018). छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ : इतिहास एवं संस्कृति. रायपुरः विश्वविद्यालय प्रकाशन.
4. वेरियर एल्विन. (1939). द बैगा. लंदन : जॉन मरे.
5. गेल, अल्फ्रेड. (1998). द आर्ट ऑफ द सैवेजेस : गोंड चित्रकला एवं कला का मानवशास्त्र. ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

6. महात्मा गांधी. (1940 के दशक). हरिजन (पत्रिका के विभिन्न अंक).
7. जी. एस. घुरिये. (1943). द शेड्यूल्ड ट्राइब्स. बॉम्बे : पॉपुलर प्रकाशन.
8. इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय. (2020). वार्षिक प्रतिवेदन : पारंपरिक धान किस्म संरक्षण कार्यक्रम. रायपुर.
9. जयपाल सिंह मुंडा. (1946–1949). संविधान सभा वाद–विवाद (Constituent Assembly Debates).
10. राव, आर. आर., – जामिर, एन. एस. (2000). नागालैंड एवं छत्तीसगढ़ में एथ्नोबॉटैनिकल अध्ययन. बी. एस. आई. पब्लिकेशन्स.
11. सिंह, के. एस. (1994). पीपल ऑफ इंडिया : छत्तीसगढ़. कोलकाता : एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया.
12. श्रीवास्तव, एम. के. (2015). बस्तर के आदिवासियों का परंपरागत चिकित्सा ज्ञान. भोपाल : वनस्पति सर्वेक्षण संस्थान.
13. ठक्कर बापा. (1955). अनुसूचित क्षेत्र एवं अनुसूचित जनजाति आयोग की रिपोर्ट (ढेबर आयोग). भारत सरकार.
14. विद्यार्थी. एल. पी. (1976). ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया. नई दिल्ली : कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 17–25
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

INDIANS DIASPORA IN THAILAND : MIGRATION AND OCCUPATIONAL ENGAGEMENTS

Chandan Kumar Yadav
Ph.D. Research Scholar
Department of Medieval and Modern History, University of Lucknow, Lucknow
Prof. Pawan Kumar Yadav
Department of History (RMP PG College, Sitapur)
University of Lucknow, Lucknow.

Abstract :

The Indian diaspora in Thailand represents one of the oldest and most influential migrant communities in Southeast Asia. Over centuries, Indians migrated to Thailand through trade networks, colonial-era mobility, and modern professional migration. This research article examines the historical trajectory of Indian migration to Thailand and analyzes the occupational engagements of the Indian community in the Thai economy. It explores how Indian migrants have participated in trade, entrepreneurship, professional services, and modern industries while maintaining cultural and social institutions. The study highlights the Indian traditional merchant communities and their historical profession. It also discusses the socio-economic contributions, challenges, and integration patterns of Indians within Thai society.

Keywords : Migration, Thailand, Illegal money lending, Indian community

INTRODUCTION :

Migration has been a process of acculturation and exploration for human being since time immemorial. There are ample of evidences available confirming Indians migration to different parts of the world and vice-versa. Thailand is one of the most preferable destinations of Indians in southeast Asia, to seek job opportunities and travel. Continuously growing number of Indians in Thailand draws scholarly attention for an academic enquiry about Indo-Thai relations and cultural influence. In this paper I have briefly discuss migration history of

Indians and the growing number of Indians in Thailand along with certain push factors from India and pull factors attracting Indians in Thailand.

Following article attempts to trace brief history of Indian emigration to Thailand and the shifting occupational trends of Indian communities (particularly the Hindi speaking emigrant section of Gorakhpur region) present in Thailand since their arrival in the foreign land till ongoing first quarter of 21st century. Huge inflow of monetary support to this region has helped many families to overcome out of poverty. This phenomenon has allured the youth (specially of less educated class) of this region to look for jobs and ways and means to take out their families from vicious web of poverty.

Most of the Indians migrated in the nineteenth century as laborers in rubber plantations, rice fields, docks, and government construction projects. Some others followed them as traders and moneylenders.

Indian migration to Thailand : Historical trends

The Indian diaspora in Thailand has a rich history, with its members engaging in various occupations that have significantly influenced Thai society and economy.

Indian emigration to Thailand at a larger scale is merely a recent phenomenon of past 20th century. According to an estimate released by Ministry of External affairs (govt. of India), currently the number of Indian emigrants in Thailand is slightly more than 4,00,000. Most of the emigration is for employment and tourism purpose as this is evident from the presence of Indians in Phuhurat and Ban-Kaek districts of Bangkok (Thailand). Most of the emigrants are from certain specific regions of India comprising Tamilnadu, Punjab, Sindh, Uttar Pradesh and Bohra Muslim community.

Migration began in the age of Dvaravati civilization when Hindu religious cultural contacts reached different locations of Dvaravati civilization. This was followed by new relations in third century B.C in the course of propagation of Buddhism by King Asoka. The influence of Buddhism is still quite conspicuous in Thai life as on later stage Buddhism received the royal patronage & became the state religion.[1]

Later, in the modern period, waves of Indian migration to Thailand in the era of colonialism started in the 19th century when the British were granted permission to trade at Thailand's port in 1826. Thailand (Erstwhile Siam) was the immediate neighbour of India as soon as Britain acquired Tennasserim, Tavoy, Martaban and Arakan of Burma by the Treaty of Yandabo on 24 February 1826. The British strategists namely Crawfurd, Burney and Stamford Raffles, who had laid the foundations of colonial expansion in Southeast Asia, began to fortify British India from all sides, and they were interested in bringing Thailand under their sphere of influence. The British merchants were interested in timber business and opium supplies in Thailand. On the other hand, Siam was concerned about its sovereignty

[1] Ghosh, L. (2015). Sectional President's Address: INDIA-THAILAND RELATIONS IN THE ERA OF COLONIAL ENCROACHMENT. *Proceedings of the Indian History Congress*, *76*, 609–619. http://www.jstor.org/stable/44156628

after the defeat of China in the Opium War and establishment of British paramountcy in the region.[2]

Since the arrival in southeast Asian part, British colonialist did not engage with Thailand through war but they chose to have dialogue with royal Siam (now Thailand) king. The both parties arrived with following treaty of 1856.

Anglo-Thai Treaty of 1855

1. British subjects were permitted to own land in and around Bangkok.

2. British subjects were to be governed by the extraterritoriality system, according to which they were not subject to the Thai laws and courts, but were to be tried for any civil and criminal offense by the British consul according to the British legal system.

3. British subjects gained the right to trade freely, and to travel freely in the interior.

Then Indians who were British subjects started migration to Thailand and seek opportunities for economic growth.

The Indian migration into Thailand was not forced by colonial authorities, as it was often seen for other countries where English government had established colonies. The Indian emigrants went there to improve their economic status and it was in seek of employment. While talking about majority of later migrations into Thailand, it was result of economic advancement of earlier communities which was seen by their economic prosperity in homeland. Often generations of some families took over the businesses and trading firms of their forefathers. Most of the times emigration was as a result of people calling their kinsmen, or members of the same village or district. Most of them contemporary Indian emigrant and came to Thailand after the 1920s, with certain groups tracing their arrival to the first half of the nineteenth century. Most Indians carne of their own· free will, and very few could have been said to have come to work in labour-intensive occupations.

The collapse of the rubber industry in Malaya in early 1930s prompted Indian workers to seek a livelihood in Siam (Thailand). By the 1930s, there was a thriving Indian community in Siam comprising recent immigrants. As Lanka Sundaram, a lawyer and intellectual who would later be elected to the Lok Sabha, wrote in the *Malaya Tribune* after a visit: "The British consulate puts the total strength of the Indian community in Siam as running up to anything like the hundredth thousand mark. But no figures are available to sustain this statement. Still, it is a common sight in Bangkok and elsewhere in the interior to find the sturdy Punjabi, the willing Bhayya from the UP, the shrewd Hindu from Kathiawar, and Ramaswamy from

[2] Ghosh, L. (2015). Sectional President's Address: INDIA-THAILAND RELATIONS IN THE ERA OF COLONIAL ENCROACHMENT. *Proceedings of the Indian History Congress*, *76*, 609–619. http://www.jstor.org/stable/44156628

Madras, engaged in different trades, from hawking to vending milk, from being watchmen (Indians are in great demand for keeping peace round about shops, warehouses and hotels) to keeping well-appointed shops." Indians were "flourishing" in the clothing trade in Bangkok.[3]

The earliest groups to have come in sizable numbers to Thailand appear to have been the Tamils. Phuket in southern Thailand seems to have been the first area that experienced a spill-over of Tamils from Penang and Peninsular Malaysia. Most of them came to participate in the cattle trade and precious-stone mining.[4]

The Uttar Pradesh Hindi-speaking Hindus generally followed the establishment of Western trading firms in Bangkok. As each trading firm set up its warehouses and expanded its economic activities, more Uttar Pradeshis came to work as watchmen.[5]

TABLE 1: TOTAL EMIGRANTS REGISTERED IN DIFFERENT DISTRICTS (YEAR 1908-1912)

DISTRICT	**EMIGRANTS REGISTERED**
GORAKHPUR	3727
BASTI	7583
BENARAS	2138
FYZABAD	9982 **(HIGHEST IN U.P.)**
ALL OTHER DISTRICTS	31355
TOTAL FROM UNITED PROVINCE	**54785**

* SOURCE: U.P. STATE ARCHIVES (INDUSTRIAL FILES ACCESSED ON 27/11/2024)

As per the data available at U.P. STATE ARCHIVES, due to huge outflow of Indian emigrants during first quarter of 20th century, colonial authorities decided to establish a new regional emigration centre in Uttar Pradesh in 1913. Since most of the registered emigrants were from eastern Uttar Pradesh and Bihar area, it was finally opened in Varanasi (then Banaras) after a long discussion between different colonial authorities. Since Fyzabad district had highest number of emigrants registered, few officials wanted the new emigration centre to be opened in Fyzabad, but Varanasi was chosen due to administrative convenience and its location nearing to Bihar.

Ministry of external affairs (govt. of India) published a fact sheet report in 2012, as per the data shown it estimated 150,000-200,000 people of Indian origin in Thailand, many of them having lived in the country for several generations. It comprised the communities of Punjabis, Namdhari and other Sikh sects, Gorakhpuris, Tamils and Sindhis.

Occupational aspect of Indians in Thailand

The history of Indian occupations in Thailand reflects centuries of migration, cultural exchange, and trade between India and Southeast Asia. This connection is rooted in shared religious, cultural, and economic ties that date back over 2,000 years. Indians emigrated to

[3]Kamalakaran Ajay, https://scroll.in/magazine/1065039/while-indians-faced-prejudice-and-abuse-in-thailand-british-colonists-chose-to-dilly-dally

[4] Singh Sandhu, K. & Mani, A. (2006). *Indian Communities in Southeast Asia (First Reprint 2006).* Singapore: ISEAS Publishing. https://doi.org/10.1355/9789812305732, p 912

[5] Ibid. p 914

Thailand got themselves engaged in wide range of occupations since their landing to this foreign land. It included them as traders, export and import business, cattle rearing, farming in rice fields, laborers in rubber plantation, dealing in precious metals and semi-precious stones, for some time Punjabis were enrolled in police services, and illegal money lending business etc.

Since Tamilians are regarded as the the first group of Indians who migrated to Thailand in the modern colonial era, so they were employed initially by British authorities and other British trading firms based on their skills and education level as laborers, clerks, and traders. They were particularly active in agriculture and small businesses. They were also engaged in the various development projects like irrigation, waterworks, railways, and banking. Tamil Muslims were engaged as butchers. There were other Tamilians who traded precious stones. When in the third quarter of the nineteenth century King Mongkut started modernizing Thailand, many British engineers and entrepreneurs entered the country along with their Indian subordinates which included some group of Tamilians who came through kangani system of labour, worked as labourers to construct railway line. Tamil Muslim traders opened their precious stone stores and textile shops in and around the Wat Ko area, where some shops exist even to this day.

Later on, the important community of Indian traders entered in Thailand was of Dawoodi Bohra Muslims and most of them came as wealthy traders to import British goods and export local goods. They established many firms in and around Bangkok city and carried on their wealthy business.

Indian Sikhs who are good in number even today in Thailand marked their presence in textile business. However, they were engaged in wide range of occupations but an important aspect to note is that during King Chulalongkom's reign (1868-1910), some Sikhs had also been enrolled into the Thai Police Force[6]. De Busen, the then British Consul in Thailand, explained that the police forces of Hong Kong, Singapore, and other British colonies had urged the Thai Government to make use of their experience by drawing on the considerable British Indian population in Bangkok. The constant French objections to the employment of British subjects in Thai government departments, discouraged such hiring. Sikhs settled in areas like Phahurat, i.e. also known as Bangkok's "Little India," and were involved in the textile industry. Sikhs were the early vendors from India selling textile and electrical equipment. The onset of World War II brought enhanced fortunes to the Indian business community. As cloth became a scarce commodity the stocks held by the Indian traders brought tremendous profits. During the war their position as a trading group with Japan was further enhanced. With the increased profits, they were able to buy more shops in the adjoining traditional Chinese business area - the Sampeng district. When the war ended, the textile-trading Punjabi community was in a better position in terms of controlling the textile market in Thailand.

[6] Singh Sandhu, K. & Mani, A. (2006). *Indian Communities in Southeast Asia (First Reprint 2006)*. Singapore: ISEAS Publishing. https://doi.org/10.1355/9789812305732, p 914

In late 19th Century the postal service in Thailand were manned by Indian clerks. When the Britishers established their business offices in Bangkok, they preferred Indians as watch men. One important development in 1905 was the complete abolition of slavery in Thailand and this resulted in an acute shortage of labour supply. The permission to hire immigrant labour in Thailand accorded by King Mongkut helped to solve this problem of labour shortage. Since the local Thais were not prepared to work as hired labourers in plantations (rubber and teak) and in mining activities, Indian and Chinese immigrants filled the gap.

The most important emigrant community for the purpose of this article i.e. of Uttar Pradesh Hindi-speaking (mostly Hindus) emigrants were initially taken by western trading firms who had newly established their firms in Bangkok and other areas of Thailand. These emigrants were primarily employed watchmen of warehouses of trading firms. Other occupations included retail-shopkeepers, labourers in rice fields and rubber plantation. By the beginning of the twentieth century, the emigrants of eastern Uttar Pradesh mostly of higher castes i.e. Brahmins and Rajputs were working in sizable numbers as watchmen. Some emigrants entered into Thailand from Myanmar as watchmen and dairy farmers[7]. They were mainly from Gorakhpur, Azamgarh, Deoria districts of eastern Uttar Pradesh. some came largely as labourers and peons to work in the British and Dawoodi Bohra firms. One important point to note here is some emigrants were from Yadav community (known for milk business) from eastern Uttar Pradesh and with their arrival they developed colonies with cows. They worked as security guards in foreign firms, and developed friendly relations with local Thai people. These emigrants were called as Babus and bang (brother). However, the term bang is reserved for describing watchmen and milk-vendors, the number of emigrants to Thailand from eastern Uttar Pradesh has varied according to the growth or decline of foreign firms in Thailand

The economic pursuits of Indians in Thailand have largely remained unchanged. Textile is still the mainstay of all Indian wealth. Punjabis, both Sikhs and Hindus, are textile merchants who are concentrated in the Sampeng Pahurat area, which in tum reinforces their linguistic, cultural, and religious affinities. Punjabi, and to some extent Hindi, is the business language of the textile trade. G.J. Malik has noted that sugar plantations which were started in early 19th century in Bangkok had Indian labourers.

Post 1960s Indian businesses began to dominate in textile trade and some Indian businessmen began to set up their own factories, individually and/or in collaboration with Japanese or Indian capital and technology, notable names include Shivanath Rai Bajaj and Amamath Sachdev. Since 1978, Shivanath Rai Bajaj participated in more joint ventures. The Tupper of India firms have teamed up with him to start a 3,000-million-baht firm producing paper and pulp. With the Usha Company of India, he went into a joint venture to start Usha Siam, producing steel wires and ropes.

Indians in Thailand today are highly integrated into the local economy, with prominent representation in:

[7] Ibid 915

- **Retail:** Dominating segments such as jewellery, textiles, and consumer goods.
- **Corporate and IT:** Working in global firms and multinational corporations.
- **Education and Healthcare:** Operating schools, hospitals, and clinics catering to both Indian and Thai communities.
- **Tourism and Hospitality:** Leveraging Thailand's status as a major tourist destination, especially with Indian travellers.

Currently, many Indian business corporations have established their firms in Thailand with great success, notably Indian hotel chain namely OYO has opened its services in Thailand and it proved to be a great success.[8]

Illegal money-lending aka 'Din Daeng' business

Illegal money lending enterprise, popularly referred to as the 'Din Daeng' business, has garnered significant attention among certain entrepreneurial circles. This venture, which traces its roots to Bangkok's Din Daeng district, revolves around the sale of commercial goods on a hire-purchase basis.[9] Despite the introduction of stricter regulations aimed at curbing excessive interest rates, the sector continues to thrive, gaining traction among both vendors and customers. The merchants involved in this trade are considered affluent by the standards of Thailand's middle class. This form of money transaction system has allured the youth of eastern Uttar Pradesh and from Sikh community and motivated them emigrate to Thailand. The vendors are wealthy by Thai middle-class standards. This is commonly seen in sell of clothes by roaming through villages and offering them to pay in instalments but the point to note here is that it involves very high interest rates (sometimes up to 20% per month).

They lend money to their personally known people (mostly are local vendors) with whom they have maintained a good credit business since a very long time. Indians lend money to them at a very high interest rate that goes up to 20% per month.

A returned emigrant through television interview told about modus operandi. Lenders lend X baht to a local Thai person at a rate of 20% interest (generally at this high rate this illegal lending business runs) per month. The total amount that is supposed to be returned by borrower will beX+ X*20-baht, post completion of one month, but the unique style of recovering (X+ X*20)/30 baht daily from borrower for 30 consecutive days makes it unique type of profitable business. It seems to be an easy model of compounding money (if all money is at lending for a year it can give up to 82 Times Effective Annual Return)[10] but sometimes the lender has to suffer losses also due to non-payment by borrower. However, all such transactions are illegal. Since all these transactions happen through nonproper channel

---

[8] https://www.traveldailymedia.com/oyo-welcomed-1000000-guests-in-thailand-in-3-months/

[9] Singh Sandhu, K. & Mani, A. (2006). *Indian Communities in Southeast Asia (First Reprint 2006)*. Singapore: ISEAS Publishing, p 926.

[10] Gopi Nath Vajpai, "82 Times Effective Annual Return – A Case Study Of Siam Moneylenders", International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), ISSN:2320-2882, Volume.6, Issue 2, pp.119-121, April 2018, Available at :http://www.ijcrt.org/papers/IJCRT1872421.pdf

they cannot do anything about it post losses. As per Thailand government rules, the banks can offer credit at maximum 15% annual interest rate as personal loans.

There have been many instances of Indians getting caught by local Thai police while recovering the illegally lent money in past 2 decades. This business has resulted in local Thai lower class people being caught into vicious web of never-ending debt. Thailand government has regulated many laws to end this type of illegal businesses.[11]

The money-lending and 'Din Daeng' activities of the Indians have also caused certain amount of distrust among working-class Thais. The involvement of any Indian nationals in such activities can impact the broader community's reputation, which is generally well-regarded in Thailand. Legitimate Indian businesses often contribute positively to Thailand's economy, and community leaders typically discourage illegal practices.

In the recent times there have been many instances of foreigners getting caught by local Thai police for the violation of local laws of immigration and visa rules by getting involved in sham/fake marriages and fake student visas to overstay/extend their stay in Thailand on the basis of spouse visa, which includes a bulk number of Indian emigrants. Certain media reports published internationally, confirm that since sham marriages, also known as fake or fraudulent marriages, occur when two individuals enter into a marital union not for personal or romantic reasons but for other benefits, such as obtaining visas, residency, or other legal advantages. This becomes one of the several ways of extending stay on the foreign land.

The Indians travel mostly on tourist visas i.e. valid for 3 or 6 months, but with the means of sham marriages with a Thai lady (mostly from mon community) and/or fraud student visas, which has become part of their modus operandi to evade local emigration rules they become able to extend their stay. Since, there are stricter rules regarding marriages with foreign nationals the role of several illegal sham marriages agents and local corrupt royal govt. officials is a point to ponder upon. In the recent times on several occasions many such agents, Thai women and officials were caught and arrested involved in such sham marriages certificate case.[12]

Most of the accused used to make a living in Thailand as illegal moneylenders or salesmen for pay-by-installment goods such as clothing and electrical appliances. The news report said that around 8,000 Indian nationals reside in Thailand on spousal visas with Thai nationals.[13] The newspaper noted that Indian nationals are often keen to stay

---

[11] https://thai.news/news/thailand/bangkoks-illegal-loan-saga-indian-nationals-high-interest-money-lending-operation-unraveled

[12]https://timesofindia.indiatimes.com/nri/other-news/indian-man-27-thai-women-arrested-over-fake-marriage-scam-in-thailand/articleshow/67540291.cms

[13]https://www.aa.com.tr/en/asia-pacific/thailand-hundreds-of-indians-suspects-of-scam-marriage/1376853

in Thailand beyond the remit of their tourist visas, and "marriage can be used as a means to facilitate this."

Conclusion :

The Indian diaspora in Thailand illustrates a dynamic migration history shaped by trade, cultural exchange, and economic opportunity. From ancient maritime trade routes to modern professional mobility, Indian migrants have played an essential role in Thailand's social and economic development.

Initially dominated by merchants and traders, the occupational structure of the Indian community has diversified to include entrepreneurs, professionals, and service-sector workers. This transformation reflects broader trends in globalization and international migration. Despite challenges related to integration and regulatory frameworks, the Indian diaspora continues to contribute significantly to Thailand's economy and cultural diversity. Future research may focus on the role of second-generation Indian Thais and the evolving nature of Indo-Thai economic relations in the globalized world.

NOTES AND REFERENCES :

1. Ghosh, L. (2015). Sectional President's Address: INDIA-THAILAND RELATIONS IN THE ERA OF COLONIAL ENCROACHMENT. *Proceedings of the Indian History Congress*, *76*, 609–619. http://www.jstor.org/stable/44156628
2. Singh Sandhu, K. & Mani, A. (2006). *Indian Communities in Southeast Asia (First Reprint 2006)*. Singapore: ISEAS Publishing. https://doi.org/10.1355/9789812305732
3. https://scroll.in/magazine/1065039/while-indians-faced-prejudice-and-abuse-in-thailand-british-colonists-chose-to-dilly-dally
4. Gopi Nath Vajpai, "82 Times Effective Annual Return – A Case Study Of Siam Moneylenders", International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), ISSN:2320-2882, Volume.6, Issue 2, pp.119-121, April 2018, Available at :http://www.ijcrt.org/papers/IJCRT1872421.pdf
5. ARCHIVAL RECORDS (U.P. STATE ARCHIVES)
6. https://thai.news/news/thailand/bangkoks-illegal-loan-saga-indian-nationals-high-interest-money-lending-operation-unraveled
7. https://timesofindia.indiatimes.com/nri/other-news/indian-man-27-thai-women-arrested-over-fake-marriage-scam-in-thailand/articleshow/67540291.cms
8. https://www.aa.com.tr/en/asia-pacific/thailand-hundreds-of-indians-suspects-of-scam-marriage/1376853

Mob No: 7518134699

Email: cyjnvk@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 26–30
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

कल्याणकारी योजनाओं में आधार और डिजिटल पहचान की भूमिका

आस्था तिवारी (शोधार्थी)
प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या)
विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

सारांश :-

यह अध्ययन भारत में आधार आधारित डिजिटल पहचान की भूमिका को कल्याणकारी योजनाओं के संदर्भ में प्रस्तुत करता है। आधार के माध्यम से कल्याणकारी सेवाओं को अधिक पारदर्शी और प्रभावी तरीके से समाज के वंचित वर्गो को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ा है। जिससे लोगो को सशक्त बनाकर पारदर्शी और जवाबदेही शासन की दिशा में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। आधार आधारित DBT प्रणाली ने समानता के बढ़ावा दिया है और वित्तीय समावेश में वृद्धि हुई है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) जैसे उदाहरण यह दर्शाते हैं कि आधार ने फर्जी लाभार्थियों को हटाकर योजनाओं की प्रभावशीलता बढ़ाई है। हालांकि, तकनीकी समस्याएँ और डेटा सुरक्षा जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं, फिर भी आधार ने शासन प्रणाली को अधिक जवाबदेह और सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मुख्य शब्द – आधार, डिजिटल पहचान, कल्याणकारी योजनाएं, सार्वजनिक सेवा वितरण।

प्रस्तावना –

आज के समय में तकनीक का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है और इसका प्रभाव शासन प्रणाली पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। डिजिटल तकनीकों की मदद से सरकारें अपनी सेवाओं को अधिक सरल, तेज और पारदर्शी बनाने की दिशा में काम कर रही हैं। भारत में आधार जैसी डिजिटल पहचान प्रणाली ने नागरिकों को एक विशेष पहचान प्रदान की है, जिससे सरकारी योजनाओं का लाभ सही व्यक्ति तक पहुँचाना आसान हुआ है। आधार के माध्यम से लाभार्थियों की सही पहचान सुनिश्चित की जाती है, जिससे फर्जी लाभार्थियों और दोहराव की समस्या में कमी आती है। इसके साथ ही, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) प्रणाली के माध्यम से सरकारी सहायता सीधे लाभार्थियों के बैंक खातों में भेजी जाती है, जिससे बिचौलियों की भूमिका कम होती है और भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इस प्रकार, डिजिटल पहचान प्रणाली ने कल्याणकारी योजनाओं के प्रभावी और पारदर्शी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

हालांकि, इस प्रणाली के साथ कुछ चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं, जैसे डिजिटल विभाजन, तकनीकी

समस्याएँ, प्रमाणीकरण में त्रुटियाँ तथा डेटा गोपनीयता और सुरक्षा से संबंधित चिंताएँ। विशेष रूप से ग्रामीण और वंचित वर्गों के लिए इन चुनौतियों का समाधान आवश्यक है ताकि वे भी इन योजनाओं का पूर्ण लाभ उठा सकें। आज के डिजिटल युग में पारंपरिक पहचान दस्तावेज पूरी तरह से उपयोगी नहीं रह गए हैं। इसलिए ऐसी सुरक्षित और भरोसेमंद डिजिटल पहचान की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जो लोगों को बिना सीधे संपर्क के ऑनलाइन सेवाओं और लेन–देन का उपयोग करने में सक्षम बनाए। यदि डिजिटल पहचान प्रणाली को सही तरीके से विकसित और लागू किया जाए, तो यह किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है, विशेषकर विकासशील देशों में। किसी व्यक्ति की सटीक पहचान सुनिश्चित करने के लिए बायोमेट्रिक तकनीक का उपयोग आवश्यक माना जाता है, क्योंकि इसके बिना सही पहचान करना कठिन होता है।

वर्तमान स्थिति यह दर्शाती है कि कई विकासशील देशों में अभी भी डिजिटल पहचान प्रणाली का अभाव है, और बहुत कम देशों के पास ऐसी व्यवस्था है जो ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों स्तरों पर कार्य कर सके। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में और अधिक सुधार की आवश्यकता है।

ऐसे देश, जहाँ राष्ट्रीय स्तर की पहचान प्रणाली उपलब्ध नहीं है, उन्हें उचित दिशा–निर्देशों की आवश्यकता है ताकि "सभी के लिए पहचान" का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। इस संदर्भ में, आधार एक महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में सामने आता है, क्योंकि इसके माध्यम से बड़ी संख्या में लोग विभिन्न सेवाओं से जुड़े हुए हैं और इसका व्यापक उपयोग हो रहा है (McKinsey, 2019)।

भारत दुनिया का पहला ऐसा देश है जिसकी जनसंख्या 1 अरब से अधिक है और जिसने अपने नागरिकों के लिए व्यापक स्तर पर डिजिटल पहचान प्रणाली लागू की है। लगभग 1.3 अरब की आबादी के साथ भारत विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। इतनी बड़ी जनसंख्या में आधार जैसी विशाल योजना को लागू करना आसान नहीं था, क्योंकि देश में निरक्षरता, सांस्कृतिक विविधता, अलग–अलग राजनीतिक विचारधाराएँ और भिन्न जनसंख्या संरचना जैसी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं।

आधार प्रणाली का मुख्य उद्देश्य नागरिकों की पहचान स्थापित करना है, न कि उनकी नागरिकता तय करना। यह भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण पहल है, जिसका लक्ष्य प्रत्येक निवासी को एक विशिष्ट पहचान संख्या प्रदान करना है, जिससे देश में पहचान से जुड़ी समस्याओं को कम किया जा सके। इस पहचान संख्या को व्यक्ति के बायोमेट्रिक विवरण, जैसे फोटो, फिंगरप्रिंट और आँखों की स्कैन से जोड़ा गया है, जिससे पहचान की सटीकता बढ़ती है। आधार संख्या का उपयोग सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों में पहचान और पते के प्रमाण के रूप में किया जाता है। इसके अलावा, आधार प्रणाली ने सरकार और नागरिकों के बीच संबंधों में भी बदलाव लाया है, जहाँ अब नागरिकों को सेवाओं के उपयोगकर्ता के रूप में देखा जाने लगा है। यह प्रणाली संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों के अनुरूप है, जिसका उद्देश्य सभी लोगों को पहचान उपलब्ध कराना और कल्याणकारी योजनाओं में पारदर्शिता एवं दक्षता बढ़ाना है। इसके माध्यम से फर्जी लाभार्थियों, भ्रष्टाचार, पहचान की कमी और वित्तीय लेन–देन में अविश्वसनीयता जैसी समस्याओं को कम करने का प्रयास किया जा रहा है (Bank, 2016; Gelb & Clark, 2013; Weinberg, 2016; UNGA, 2016)।

आधार, एक विश्वसनीय पहचान पत्र के रूप में, भारत को एक भरोसेमंद पहचान प्रणाली प्रदान करता

है, जिससे हर व्यक्ति को सशक्त बनाया जा सके और विकास की राह में कोई पीछे न रह जाए। यह सीमित संसाधनों के बावजूद सेवाओं, लाभों और सब्सिडी के पारदर्शी और सही वितरण के लिए एक उपयुक्त तकनीक है, जिसमें बिचौलियों की आवश्यकता नहीं होती। आधार लोगों के बीच और व्यक्ति व प्रणाली के बीच पहले की तुलना में अधिक विश्वास और भरोसा स्थापित करता है। केवल एक दशक के भीतर, दुनिया का लगभग हर छठा व्यक्ति आधार धारक बन चुका है।

आधार सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है और इस प्रकार लोकतंत्र और समानता को मजबूत करता है। आधार, जो एक 12 अंकों की विशिष्ट पहचान संख्या है, लोगों को कई तरीकों से सशक्त बनाकर बड़े बदलाव लाने की क्षमता रखता है। इस पहचान के माध्यम से लोगों के जीवन में सुरक्षा और विश्वास की भावना बढ़ती है, जिससे जीवन और व्यापार करना आसान हो जाता है।

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) में आधार की भूमिका – कल्याणकारी सेवाओं को अधिक पारदर्शी और प्रभावी तरीके से लक्षित लाभार्थियों तक पहुँचाने के लिए भारत सरकार ने जनवरी 2013 में आधार पेमेंट ब्रिज (APB) और अन्य माध्यमों के जरिए प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) की शुरुआत की। JAM (जन–धन, आधार और मोबाइल) त्रयी ने DBT की शक्ति के साथ मिलकर समाज के वंचित वर्गों को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ा है, जिससे लोगों को सशक्त बनाकर पारदर्शी और जवाबदेह शासन की दिशा में महत्वपूर्ण बदलाव आया है।

DBT को केंद्रीय क्षेत्र और केंद्र प्रायोजित योजनाओं में चरणबद्ध तरीके से लागू किया गया है, जिसमें APB प्लेटफॉर्म का उपयोग करके लाभार्थियों के आधार से जुड़े बैंक खातों में सीधे नकद लाभ स्थानांतरित किए जाते हैं। अगस्त 2022 तक, PAHAL, MGNREGS सहित कई प्रमुख केंद्रीय योजनाओं के माध्यम से कुल 7,18,329.41 करोड़ रुपये की राशि 969.22 करोड़ से अधिक सफल लेन–देन के जरिए वितरित की जा चुकी है (डेटा स्रोत : NPCI)। अब आधार निवेश को आसान बनाने के नए अवसरों की ओर भी बढ़ रहा है। यह सब आधार की तकनीक, उसके प्लेटफॉर्म, उसकी प्रमाणीकरण प्रणाली और कभी भी, कहीं भी सत्यापित की जा सकने वाली पहचान के कारण संभव हो पाया है।

प्रधानमंत्री जन धन योजना (PMJDY) ने वित्तीय समावेशन को और बढ़ावा दिया है, जिसके तहत 52. 3 करोड़ से अधिक बैंक खाते खोले गए हैं, जिससे समाज के वंचित वर्ग औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जुड़े हैं। आधार आधारित इस व्यवस्था ने न केवल लोगों को सशक्त बनाया है, बल्कि योजनाओं के डाटाबेस को शुद्ध करके सरकारी खजाने की बड़ी बचत भी की है। इसके तहत विभिन्न सरकारी मंत्रालयों और विभागों में लाखों फर्जी, अस्तित्वहीन और अयोग्य लाभार्थियों को हटाया गया है। उदाहरण के रूप में, आधार आधारित DBT के कारण 4.15 करोड़ से अधिक फर्जी एलपीजी कनेक्शन और 5.03 करोड़ डुप्लिकेट राशन कार्ड समाप्त किए गए हैं, जिससे रसोई गैस और खाद्य सब्सिडी जैसी आवश्यक सेवाओं के वितरण को अधिक व्यवस्थित और प्रभावी बनाया गया है।

वंचित वर्गों का सशक्तिकरण : वित्तीय समावेशन और सेवाओं की सीधी पहुँच –

आधार ने वंचित और कमजोर वर्गों के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। JAM (जन–धन, आधार और मोबाइल) तथा प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) के माध्यम से आधार को विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं से जोड़ने पर अब लाखों जरूरतमंद लोगों को लाभ सीधे उनके खातों में मिल रहा है। इससे बिचौलियों की

भूमिका कम हुई है और धोखाधड़ी पर भी नियंत्रण पाया गया है। प्रधानमंत्री जन धन योजना (PMJDY) के साथ आधार के एकीकरण से करोड़ों नए बैंक खाते खोले गए, जिससे पहले से वंचित लोग औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जुड़ सके।

समय के साथ आधार आम लोगों के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है, खासकर गरीब और वंचित वर्गों के लिए यह एक सहायक साधन साबित हुआ है। कोविड–19 के बाद की स्थिति में इसकी उपयोगिता और अधिक स्पष्ट हुई। अधिकांश लाभार्थियों का मानना है कि आधार के कारण योजनाओं के तहत सेवाओं का वितरण अधिक सरल और पारदर्शी हुआ है। इसके अलावा, इसने देश की डिजिटल अर्थव्यवस्था को भी गति दी है। बड़ी संख्या में आधार संख्या को बैंक खातों से जोड़ा जा चुका है, जिससे वित्तीय लेन–देन अधिक सुरक्षित और व्यवस्थित हुआ है। आधार के माध्यम से फर्जी लाभार्थियों की पहचान कर उन्हें हटाने से यह सुनिश्चित हुआ है कि योजनाओं का लाभ वास्तविक जरूरतमंद लोगों तक पहुँचे, जिससे समाज के कमजोर वर्गों का सशक्तिकरण हुआ है।

नागरिकों का सशक्तिकरण : जवाबदेही और पहुँच में वृद्धि –

आधार एक विशिष्ट पहचान के रूप में नागरिकों को सशक्त बनाता है, क्योंकि इससे सेवाओं का वितरण अधिक पारदर्शी और सुलभ हो गया है। इसकी प्रमाणीकरण प्रणाली के माध्यम से लोग अपनी पहचान ऑनलाइन सत्यापित कर सकते हैं, जिससे कई दस्तावेजों की आवश्यकता समाप्त हो जाती है और e-KYC (Know Your Customer), स्वास्थ्य, शिक्षा तथा डिजिटल भुगतान जैसी सेवाओं तक आसानी से पहुँच मिलती है।

आधार की डिजिटल संरचना, जिसमें आधार सक्षम भुगतान प्रणाली (AePS) शामिल है, ने दूर–दराज के क्षेत्रों में घर–घर बैंकिंग सेवाएँ उपलब्ध कराई हैं। इसके माध्यम से लोग केवल आधार संख्या का उपयोग करके नकद निकासी, धन हस्तांतरण और अन्य बुनियादी लेन–देन कर सकते हैं। इससे न केवल नागरिक सशक्त हुए हैं, बल्कि वित्तीय सेवाएँ सभी के लिए सुलभ बनी हैं और डिजिटल अंतर (Digital Divide) कम हुआ है।

आधार केवल आवश्यक जानकारी 'जैसे नाम, पता, जन्मतिथि, लिंग और बायोमेट्रिक विवरण' ही एकत्र करता है, जिससे गोपनीयता का सम्मान बना रहता है और एक मजबूत पहचान प्रणाली भी सुनिश्चित होती है। यह सरल और सीमित डेटा संग्रह का तरीका शासन में पारदर्शिता और विश्वास को बढ़ावा देता है तथा व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा बनाए रखते हुए सेवाओं का प्रभावी वितरण सुनिश्चित करता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) में आधार की भूमिका और प्रभाव –

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) का मुख्य उद्देश्य गरीब और जरूरतमंद लोगों को सस्ती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना है। इस प्रणाली में आधार के उपयोग से लाभार्थियों की पहचान को अधिक सटीक बनाया गया है, जिससे अपात्र और डुप्लीकेट राशन कार्डों की समस्या में कमी आई है और वास्तविक जरूरतमंद लोगों तक ही लाभ पहुँच रहा है।

आधार आधारित सत्यापन के कारण राशन वितरण की प्रक्रिया अधिक पारदर्शी और नियंत्रित हुई है। अब लाभार्थियों की पहचान डिजिटल तरीके से सुनिश्चित की जाती है, जिससे अनियमितताओं और भ्रष्टाचार पर काफी हद तक रोक लगी है। इससे वितरण प्रणाली में विश्वास भी बढ़ा है। इसके अतिरिक्त, आधार के माध्यम से PDS के संचालन में तकनीकी सुधार हुआ है। डिजिटल डेटा और निगरानी प्रणाली के कारण सरकार के लिए

योजनाओं की देखरेख करना आसान हुआ है, जिससे संसाधनों का बेहतर उपयोग सुनिश्चित हो पाया है।

हालांकि, कुछ क्षेत्रों में तकनीकी बाधाएँ, जैसे नेटवर्क की समस्या या बायोमेट्रिक पहचान में त्रुटियाँ, सामने आती हैं। फिर भी, आधार के समावेशन ने च्वै को अधिक प्रभावी, पारदर्शी और जवाबदेह बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

निष्कर्ष –

आधार आधारित प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) प्रणाली ने भारत की कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण सुधार किए हैं। इसने सेवाओं के वितरण को अधिक पारदर्शी, तेज और प्रभावी बनाया है तथा रिसाव को कम करते हुए लाभ को सही लाभार्थियों तक पहुँचाने में मदद की है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक समानता को बढ़ावा मिला है और वित्तीय समावेशन में भी वृद्धि हुई है।

आधार के व्यापक उपयोग ने करोड़ों लोगों के जीवन को प्रभावित किया है और शासन प्रणाली को अधिक सशक्त बनाया है। बड़ी संख्या में लोगों तक इसकी पहुँच और प्रतिदिन होने वाले लाखों लेन–देन यह दर्शाते हैं कि यह प्रणाली कितनी प्रभावी और उपयोगी है।

इस प्रकार, आधार न केवल भारत में डिजिटल शासन को मजबूत करने में सहायक सिद्ध हुआ है, बल्कि अन्य देशों के लिए भी एक आदर्श मॉडल के रूप में उभरा है, जो अपनी कल्याणकारी योजनाओं को अधिक प्रभावी बनाना चाहते हैं।

REFERENCE -

1. Gelb, A., & Clark, J. (2013). Identification for development: The biometrics revolution. World Bank.
2. Kar, A. K., Gupta, M. P., & Mir, U. B. (n.d.). Analyzing the design and implementation goals for Aadhaar: The digital identity. India Science and Technology Portal.
3. Ministry of Electronics and Information Technology. (2024, October 24). Aadhaar: A unique identity for the people.
4. Ministry of Finance, Government of India. (2021). Direct Benefit Transfer (DBT) in India. https://dbtbharat.gov.in
5. National Payments Corporation of India (NPCI). (2022). Aadhaar Enabled Payment System (AePS). https://www.npci.org.in
6. Press Information Bureau, Government of India. (n.d.). Press Information Bureau. http://www.pib.gov.in
7. Unique Identification Authority of India (UIDAI). (2022). Aadhaar: Enabling digital India. https://uidai.gov.in
8. World Bank. (2016). Digital dividends. World Bank Publications.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 31-37
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

A STUDY ON ACADEMIC STRESS IN SECONDARY SCHOOL STUDENTS

Dr. Aarti Aarya
Professor, BCG Shiksha Mahavidhyalaya, Dewas, Madhya Pradesh, India
Ms. Sheetal Bhagat
BCG Shiksha Mahavidhyalaya, Dewas, Affiliated to Vikram University, Ujjain (M.P.)

ABSTRACT :

This research paper provided the level of Academic stress in students studying in secondary school of Dewas District in Madhya Pradesh.

Academic stress or mental tension belongs to Academics (Education) of students.

Mental stress on students driven by high academic expectations, intense competition and fear of failure, causes significant anxiety, burnout and emotional distress. The study executed on collected 537 secondary class students data, where Academic stress measured through approved standarised questioners assessing scale i.e. 'Academic stress scale by Dr. UDAY K.SINHA'. The Obtained data analyzed quantitatively by using statistical techniques.

Based on evaluation it has been found that the maximum population of secondary school students having stress during their academics.

Since stress can not eliminated completely but it can manage and reduces in students by school, curriculum, teachers and parents initiatives by increasing Factors like, confidence, concentration, building interest, atmosphere, hesitation elimination, equality, financial support, understanding, discipline, planning, learn with fun and cognitive controls.

Keywords : Stress, Academic, Academic Stress, Secondary school students.

1. INTRODUCTION :

Stress is the body's natural, involuntary reaction to any demand, threat, or challenge, creating physical and mental tension.

Academic stress is pressure, tension comes from the exceptions' and demands and it impacted

the performance of students. As well as none fulfill the expectations' create condition to get decisions like suicide by students which frequently occurred in current time.

Among Students competitions serve as powerful motivators that can drive academic excellence and personal growth when managed constructively. However, these are a significant source of academic stress, particularly in high-stakes or outcome-focused environments.

Following of major Impacts of Academic Stress :

Academic and Cognitive functionality impact: Disability of poor decision making, Memory impact due to high stress, decreases motivation, concentration loss.

Health Issues : Sleeping disorder, headaches, fatigue, etc.

Mental Health impact : Long time stress often produced anxiety, future career performance, helplessness, depression, lake of self confidence..

Behavioral Changes : Disconnect from social involvement, relations, sadness, unhealthy behaviors, addiction of alcohol and drugs.

Academic Stress Cannot Be Eliminated because Academic pressure is part of the educational journey from school admission to higher education and intermediate situations like competitive environments, expectations with targets timelines, perfectionism, fear of failure, however it can reduced through planned management.

Every student having their own capability to succeed academically, so adequate management by school, curriculum, teachers and parents intervenes, stress can reduced and make easy to achieve the targets and make milestone and take correct decision for their carrier and future life, So researcher's mind conduct a present study to come out the level of academic stress in Secondary school students.

2. REVIEW OF LITERATURE :

2.1 Minaram Gogoi (2019) 'A STUDY OF ACADEMIC STRESS IN RELATION TO ACADEMIC ACHIEVEMENT MOTIVATION OF SECONDARY SCHOOL STUDENTS; find that the Education is as deep as the life itself and as broad as the world of our experiences.Results showed that there is a significant relationship between academic stress and achievement motivation in reliability level of 95% among the girl and boy students and there is no difference between academic stress and achievement motivation in reliability level of 95% among girl and boy students.

2.2 Juhi Soni (2024) in 'Study of the effects of emotional intelligence and mental stress of students on their academic achievement' observed In the presented study, the effects of student emotional intelligence and stress on their academic achievement have been studied; survey method of descriptive research method has been selected in the study. The conclusion was found that the

emotional intelligence of boys is better than the emotional intelligence of girls. After studying mentalist and academic achievements among students, it is found that there is no significant difference between the two. The study of emotional intelligence, mental stress and educational achievement pose that there is no significant difference between these three

2.3 Sweta Sonali (2016) find out the impact of academic stress among adolescents with regards to gender, class and type of school organization. The study was delimited to students of class 11th and 12th of CBSE and BSEB affiliated two senior secondary schools. The finding revealed that no significant difference exists in the academic stress of students in relation to gender, while significant differences exist with regards to class and type of school organization. Students of class 12th of both CBSE and BSEB affiliated school shave more academic stress than that of 11th. Students studying in CBSE affiliated school have more academic stress than that of BSEB affiliated school. It was concluded that academic stress hasn't any impact up on gender while has significant impact upon class and type of school organization.

2.4 Snehlata (2017) studied academic stress among the secondary school students and present the causes and symptoms of stress as well as coping mechanism for stress. In order to overcome deviant behaviors, the parents play a constructive role in channelizing energies of the adolescents. Students should have the aspiration/expectation about their study, not beyond their capacities and abilities, Students need also proper counseling while selecting their courses at intermediate level. Author concludes that supportive and stimulating atmosphere is very necessary for the student to progress in their academic life and for reaching their aim or goal.

2.5 Suriyakumar and Saraladevi (2016) studied family related factors and academic stress on Mental Health among higher secondary school students. The aim of this study was to determine the family factor and academic stress, Mental Health and childhood behaviour involved in family environment. Stratified random sampling technique was used for the selection of the sample. It was found that there is no significant difference between types of schools and family factors. A significant difference was observed between type of schools and academic stress. It was also concluded that there is significant difference between type of schools and Mental Health.

2.6 Shivani Haritay, Mubashir Angolkar, Vinayak Koparde , Deshna Oswal and Alex Carvalho (2025) : Academic stress in adolescents : findings from a school-based study in Belagavi district. Result observed Among the 1,426 students, 74% reported high levels of academic stress, with 17% reporting medium levels. Academic stress levels were significantly associated with age , area ,father's education and gender. Male students experienced significantly higher stress levels in study pressure, grade-related anxiety, self-expectation, and self-despondency. Female students experienced slightly

higher stress related to workload, though this was not statistically significant

3. OBJECTIVES OF THE STUDY :

To find out the Academic stress among the secondary School student.

4. HYPOTHESIS :

H0 (Null Hypothesis)

1. There is no Academic stress among the secondary School student.

5. RESEARCH METHODOLOGY :

5.1 Research Approach

The present study based on the quantitative research approach.this approach represents the overall techniques, procedure and philosophy chosen by researcher to address a problem. Since the study evaluated the academic stress in secondary school students. The quantitative approach provides reliability, objectivity and accuracy.

5.2 Research Design

The study adopts a descriptive research design.

The descriptive design is used to describe the high and low level of Academic stress among secondary school student.

5.3 Population

The population of the study includes secondary school students studying in recognized schools from same region. These students belong to an age group of 14 to 16 year where Academic stress develops at moderate to high level that experience emotional academic challenges.

5.4 Sample

A sample of 537 secondary school students was selected through the random sampling technique. Random sampling was considered appropriate because it provides equal opportunity to all members of the population to be selected and helps minimize personal bias.

5.5 Variables of the Study

The study includes the following variables :

Independent Variable: Academic stress.

This variable includes psychological state resulting from continuous social and self-imposed pressure in a school environment that depletes the student's psychological reserves.

5.6 Tools for Data Collection

Assessing scale of academic stress (SAAS) by Dr. Uday K. Sinha : A 30-item self-report measure has been developed considering Principal Factors i.e Cognitive, Affective, Physical, Social/ Interpersonal, Motivational used to assess all possible indicators of academic stress in terms of their

presence or absence. The subject has to select one out of two alternative responses (yes and no) for each item of the scale.

5.7 Data Collection Procedure

Research data collected from sample of the study directly through questionnaire. The researcher contact with the principals of Dewas district school affiliated to C.B.S.E, M.P. Board School and government school. Clear the intention and significance of the present study. The instructions given on tool explained in a specified manner. Scoring of the answer sheets and statically computed where ever required.

5.8 Statistical Techniques Used

Data computed using Microsoft Excel with functions like average, mean, sum etc.

5.9 Delimitations of the Study

1. The present study conducted on 537 secondary school students of CBSE and M.P. board of Dewas district of Madhya Pradesh.
2. The present study is limited to secondary class students only.
3. The present study is restricted to only one independent variable i.e. academic stress._____

6. DATA ANALYSIS AND INTERPRETATION :

Data analyses for Academic stress as tabulated and interpreted below;

No. of sample	No. of Stressed students	Remaining students
537	405	132
Ratio	75%	25%

Outcome : The above observation table indicated that the 75% students having Stress which is Significant in secondary school students. So the null hypothesis 'No Academic stress among the secondary School student' is Rejected.

7. FINDINGS OF THE STUDY :

The major findings of the study are as follows :

1. There is significant difference in Academic stress of secondary school students.
2. Academic stress observed in majority population of secondary School student.
3. Both student group male and female having academic Stress.

8. RESULT AND DISCUSSION :

Secondary school students face high academic stress, with 75% of majority.

Existing studies also had shown high levels of academic stress with findings up to 74% stress. Key causes include heavy workloads, peer competition, and parental pressure. High stress inhibits

performance, demanding school-level interventions like counseling and balanced extracurricular activities to mitigate negative mental health impacts.

9. EDUCATIONAL IMPLICATIONS :

- Stress is human behavioral factor which can be reduced by timely taking necessary action and monitoring by parents and teachers.
- Parents should understand the mental condition of child and help them to overcome the stress instead of imposed our wishes.
- Design the curriculum in small parts instead of large task and revision of completed task to memories which help to reduce burden of large task.
- Parents should take care about children's health ,their sleeping hours, healthy foods, exercise regularly.
- Recognize them for their each effort and for each achievement.
- Focused on their hobbies and give support to fulfill wishes which make them internally happy.
- Teachers should listen carefully his/her problems instead to dismiss without understand which build faith in student for their teachers. This is very important requirement of current time.
- This implies that the teachers should pay personal attention to guide the students.
- Teachers should try to remove unnecessary academic stress generating factors from learning environment
- Use techniques to improve I.Q. of students.
- Build and increased the confidence level.
- Students are counseled for stress factor by trained guidance worker/counselor as well as aware the parents about him child stress.

10. LIMITATIONS OF THE STUDY :

The study is subject to the following limitations :

1. The sample size is limited to 537 students only.
2. The study is restricted to secondary school students.
3. The study is based on standard tool,
4. Study conducted with only one variables i.e Academic stress.

11. SUGGESTIONS FOR FURTHER RESEARCH :

1 This present study was conducted on secondary school students only. It is suggested that similar study can be conducted on others students also.

2 In the present study, the sample was delimited to Dewas district students only, Similar study can be conducted on other district students etc.

3 Same study can be conducted taking changed/ maximize independent variables.

4 Same study can be conducted by taking other approved questioners or self prepared questioners after verification with guide.

5 Same study with increased sample quantity can be conducted to strengthen the outcome reliability.

6 Similar study can be conducted in form of comparative research among different grade of students, male, female etc.

12. CONCLUSION :

In conclusion, this research confirms that academic stress is a pervasive challenge in secondary education, with a significant reporting high stress levels majority of students up to 75%.

The studies highlight that while low-level stress can motivate, the elevated levels stress require immediate, comprehensive intervention to avoid long-term mental health challenges. To address this, schools must move beyond just teaching content and begin integrating emotional resilience training and time-management skills into the core curriculum. Success should be redefined to include student well-being, not just test scores

13. REFERENCES :

- Research Article : A STUDY OF ACADEMIC STRESS IN RELATION TO ACADEMIC ACHIEVEMENT MOTIVATION OF SECONDARY SCHOOL STUDENTS"by Minaram Gogoi.
- Fatima (2003). Relationship of Family Climate to Academic Achievement, M.Ed.
- Dissertation, Department of Education, A.M.U., Aligarh.
- Juhi Soni, November 2024, Study of the effects of emotional intelligence and mental stress of students on their academic achievement
- Minaram Gogoi Research Scholar Rajiv Gandhi University Rajiv Gandhi University Arunachal Pradesh . A STUDY OF ACADEMIC STRESS IN RELATION TO ACADEMIC ACHIEVEMENT MOTIVATION OF SECONDARY SCHOOL STUDENTS" © 2019 JETIR June 2019, Volume 6, Issue 6 www.jetir.org (ISSN-2349-5162)
- Research Article: Academic stress in adolescents: findings from a school-based study in Belagavi district by Shivani Haritay, Mubashir Angolkar, Vinayak Koparde, Deshna Oswal and Alex Carvalho.
- Https://www.wikipedia.org.

sinha5272@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 38–42
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

भारतीय संसद की कार्यप्रणाली में गिरावट : कारण, परिणाम और सुधार की सम्भावनाएँ

डॉ० राजेश कुमार
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सतीश चन्द्र कॉलेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

लोकतंत्र अब तक ज्ञात शासन प्रणालियों में सबसे अच्छा माना जाता है,क्योंकि यह शासन प्रणाली जनता के द्वारा गठित और मार्गदर्शित होती है। भारत में संसद लोकतंत्र की नीव है और जनता अपनी सम्प्रभुता की अभिव्यक्ति संसद के माध्यम से करती हैं। भारतीय लोकतंत्र में संसद का गठन भारतीय संविधान द्वारा सर्वोच्च विधायी संस्था के रूप में किया गया है। यह लोकसभा और राज्यसभा नामक दो सदनों से मिलकर बनती है। भारत में लोकतंत्रीय/गणतंत्रीय विधायी संस्थाओं का अस्तित्व त्रगवैदिक काल और छठीं शताब्दी ईसवीं पूर्व से ही देखा जा रहा हैं जो सहभागी और विमर्शी लोकतंत्र के तत्वों को समेटे हुए हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में संसदीय लोकतंत्र को संविधान के द्वारा स्थापित किया गया और शुरुआती दशकों में भारतीय संसद को काफी अर्थ और बल प्रदान किया गया। स्वतंत्रता आन्दोलन से आएं नेतागण उच्च मानवीय और सम्वैधानिक मूल्यों से प्रभावित थे और वे भारत के सम्पूर्ण विकास के लिए प्रतिबद्ध थे, इसलिए लोकप्रिय सदन लोकसभा और उच्च सदन राज्यसभा में जाने से पहले पूरी तैयारी कर कर के जाते थे और उच्च स्तरीय भाषण और बहसे होती थी। क्योंकि सत्ता पक्ष और विपक्ष के नेताओं की लोकतंत्र, विमर्श, शांति, समृद्धि, विकास और सामाजिक न्याय के प्रति गहरी आस्था और विश्वास था। इसीलिए ग्रानविल ऑस्टिन ने भारतीय संसद को "भारतीय लोकतंत्र की आत्मा" कहा हैं।

लेकिन सम्प्रति संसद की कार्यप्रणाली के संदर्भ में कई गम्भीर चिन्ताएं चिन्हित की गयी है, जैसे लोकसभा और राज्यसभा का अधिवेशन कम दिनों के लिए होनाय सदस्यों का सदन में कम पहुंचना, नाममात्र के बहस से विधेयक का कानून बन जाना, बिना किसी तैयारी के सदन में भाषण देना, पीठासीन अधिकारियों का सत्ता पक्ष के प्रति पूर्वाग्रहय धन ले कर प्रश्न पूछना, सदन में व्यवधान और हंगामा का माहौल, समितियों के पास विधेयकों को नहीं भेजना, सदन में असंसदीय भाषा का प्रयोग करना और सदन न चलने देना इत्यादि।

सम्प्रति भारत के संसदीय और संघीय लोकतंत्र में यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या संसद की कार्यप्रणाली लोकतंत्र को कमजोर कर रही है? क्या संसद की कार्य प्रणाली संघीय व्यवस्था को कमजोर कर रही है? क्या संसदीय अवसन भारतीय संविधान के उद्देश्यों, आदर्श और प्रकृति को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है?

संसद कानून बनाने वाली सर्वोच्च संस्था है। सभी कानून संसद यानि लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति के द्वारा ही बनाएं जाते हैं। लेकिन सम्प्रति उदारीकरण, वैश्वीकरण, उत्तर आधुनिक युग, सूचना क्रांति और लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा के कारण कानून की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ है। इसलिए केन्द्रीय और राज्य सरकारें कानून और लोकनीति दोनों पर बल दे रही हैं। कानून संसद के द्वारा बनाया जाता है और यह औपचारिक एवं बाध्यकारी प्रकृति का होता है जबकि लोकनीति के निर्माण में संसद, सरकार, निजी क्षेत्र, गैर सरकारी संगठन और मिडिया इत्यादि की भी भूमिका होती है। लोकनीति तुलनात्मक रूप से अनौपचारिक प्रकृति की होती है और आम जनता के लिए सरल, सुलभ और किफायती होती है और सामान्यतः यह कानून की तरह बाध्यकारी नही होती।

सरकारों के द्वारा जितनी भी योजनाएं, परियोजनाएं, कार्यक्रम चलाएं जाते हैं, वे पब्लिक पोलिसी के रूप में होते है, जैसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, प्रधानमंत्री जनधन योजना, और प्रधानमंत्री आवास योजना इत्यादि। इस प्रकार लोकनीति भी सुशासन को अर्थ और बल प्रदान करती है। संसद सरकार के वित्तिय गतिविधियों को नियंत्रित करती है। बजट संसद में प्रस्तुत और पारित किया जाता है। प्रश्नकाल, शून्यकाल, अविश्वास प्रस्ताव, काम रोकों प्रस्ताव और कटौती प्रस्ताव इत्यादि के द्वारा संसद सरकार को नियंत्रित करती है और उत्तरदायी बनाती है। संसद सदस्य देश के विभिन्न क्षेत्रों और लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनकी मांग को सरकार और सदन तक पहुंचाते हैं। भारत में संसद सदस्यों को विकास के लिए प्रतिवर्ष 5 करोड़ रुपएं मिलते हैं। भारत दुनियाँ का अद्वितीय देश है जहाँ विधायिका को भी कार्यपालिका यानि विकास के कार्य के लिए धन आबंटित किया जाता है जो कि शक्ति के पृथक्करण के सिद्धान्त के विरुद्ध और चिन्तन का बिन्दु है।

भारतीय संसद की कार्यप्रणाली में गिरावट के उल्लेखनीय कारण इस प्रकार हैं : राजनीतिक दलों का लोकतांत्रिक स्वरूप का न होना और राजनीतिक ध्रुवीकरण। लोकतंत्र, नागरिक और लोकतांत्रिक चेतना पर टिका होता है और भारतीय लोकतंत्र में इसकी गम्भीर सीमाएं हैं। राजनीतिक दल जातिय, लैंगिक, धार्मिक और क्षेत्रीय चेतना पर राष्ट्रीय चेतना की तुलना में अधिक बल देते हैं। फलतः संसद सदस्य आपसी वाद–विवाद, आरोप–प्रत्यारोप में अपना अमूल्य समय बर्बाद कर देते हैं और अपने मूल कार्य बहस और विधान निर्माण पर पर्याप्त समय नही दे पाते। सम्प्रति लोककल्याणकारी युग में राज्य के कार्य बहुत विस्तृत हो गये है और प्रत्येक विषय पर विचार और बहस करने के लिए संसद सदस्यों के पास न तो पर्याप्त तकनीकी और व्यावसायिक ज्ञान है और न ही समय और इच्छाशक्ति।

सदनों में सामान्यतः सरकारी विधेयकों पर ही बहस होती हैं और वे पारित होते हैं। दलीय अनुशासन और दलों के अलोकतांत्रिक स्वरूप के कारण सदस्यों को अपनी पार्टी के अनुसार समर्थन करना पड़ता हैं। वास्तविक अर्थो में विधि निर्माण का कार्य अब विधायिका का न होकर मंत्रिमंडल का हो गया हैं। भारत में राष्ट्रपति को विशेष परिस्थितियों में अध्यादेश जारी करने का अधिकार है ताँकि विषय परिस्थितियों में कानून बनाया जा सके। लेकिन सम्प्रति राजनीति से प्रेरित हो कर राष्ट्रपति से अध्यादेश जारी कराएं जाते हैं। सर्वोच्च न्यापालय की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति भी संसद की विधायी शक्ति को सीमित करती है।

भारत में राजनीतिक समाजिकरण की गम्भीर सीमाएं हैं। देश में शिक्षा व्यवस्था की दशा और दिशा बहुत की चिन्ताजनक है। शैक्षणिक संस्थान केवल प्रमाण–पत्र वितरित करने के संस्थान के रूप में बदल गये हैं।

इसीलिए जनप्रतिनिधियों में सार्थक पर्याप्त ज्ञान का अभाव और समाज के प्रति संवेदनशीलता में कमी देखी जा रही हैं और संसद सदस्य अपना अमूल्य समय हंगामा, नारेबाजी और आरोप–प्रत्यारोप में लगा रहें हैं।

भारत में संसद के सत्र लगातार छोटे होते जा रहे हैं। वर्ष 2021 में संसद का सत्र विधान सभा चुनाव के प्रचार में राजनीतिक दलों के नेताओं की सहभागिता के कारण निर्धारित समय से दो सप्ताह पूर्व ही समाप्त हो गया। वर्ष 2020 में देशव्यापी लॉकडाउन के कारण बजट सत्र की अवधि कम की गयी। वर्ष 2020 में ही मानसून सत्र भी केवल 10 दिनों तक चला और शीतकालीन सत्र को रद्द कर दिया गया। 1950 के दशक में लोकसभा वर्ष में 120–135 दिन बैठती थी। सन 2000 के बाद वर्ष में 68–70 दिन अधिवेशन में रही। 2019–2024 तक 17 वीं लोकसभा वर्ष में औसत केवल 55 दिन अधिवेशन में रही, जो कि सबसे कम पूर्णकाल वाली लोक सभाओं में से एक है। 2022–2025 में लोकसभा 50–65 दिन वर्ष में औसत अधिवेशन में रही। राज्य सभा सामान्यतः लोकसभा से 5–10 दिन कम कार्य करती है। लोकसभा और राज्य सभा दोनों में 100 दिन से अधिक की सिफारिश (एन सी आर डब्ल्यू सी 2002) कभी पूरी नही हुई। ये प्रवृत्ति संसदीय कार्यप्रणाली पर गम्भीर प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है।

संसद में दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र (संशोधन) विधेयक, 2021 को प्रस्तुत करने और कानून बनाने में केवल 10 दिन का समय लगा और विपक्षी दलों का इस विधेयक पर बहस और जाँच करने का कोई अवसर नही उपलब्ध कराया गया। खान और खनिज (विकास और विनियमन) संशोधन विधेयक, 2021 भी संसद द्वारा एक सप्ताह के अन्दर पारित कर दिया गया। इस प्रकार की प्रवृत्ति को संसद की दक्षता के बजाय किसी विधेयक की जाँच करने की लोकसभा और राज्यसभा द्वारा की जा रही लापरवाही और निष्क्रियता के रूप में देखा जाना चाहिए।

15वीं लोकसभा में संसद द्वारा विधेयकों को विभागीय समितियों को भेजे जाने की दर 71% थी, जो कि 16वीं लोकसभा के दौरान 27% रह गयी और 17वीं लोकसभा के दौरान यह दर 11% तक हो गयी। विभागीय समितियों के अतिरिक्त संसदीय समितियों और संयुक्त संसदीय समितियों को भी किसी विधेयक को भेजे जाने की दर काफी कम हैं।

भारतीय संसद की कार्यप्रणाली में गिरावट के नकारात्मक प्रभाव भारतीय लोकतंत्र, संघीय व्यवस्था और राष्ट्र को कमजोर कर रहे हैं। लोकतंत्र शासन की एक पद्धति तक ही सीमित नही है, बल्कि यह एक जीवन पद्धति है जो जातिय, धार्मिक, क्षेत्रीय और लैंगिक इत्यादि पूर्वाग्रहों को नकारता है। कोई भी व्यक्ति, संस्था या देश एक दिन में लोकतांत्रिक नही बनता बल्कि समय के साथ धीरे–धीरे लोकतांत्रिक मूल्यों को आत्मसाथ करता है। अभी भारत ही नही विश्व को भी लोकतंत्र के राजनीतिक आयाम पर भी कार्य कर इसे और सहभागी और विमर्शी बनाने की आवश्यकता हैं। लोकतंत्र के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आयाम पर भारत और विश्व बहुत कम आगे बढ़ पाये हैं। संसदीय कार्यप्रणाली में गिरावट विधायी गुणवत्ता को कम करती है और शांति, समृद्धि और विकास की यात्रा को बाधित करती है। विधायी गुणवत्ता लोकतंत्र की नीव है। यदि देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार स्वस्थ और प्रगतिशील कानून नही बनेंगे तो नागरिकों और राज्य का विकास बाधित होगा।

संसदीय कार्यप्रणाली में गिरावट कार्यपालिका की निरंकुशता को बढ़ाती है। सामान्यतः कानून बनाने के संदर्भ में पहल कार्यपालिका के द्वारा ही होता है। नौकरशाही के सहयोग से कानून का प्रारूप मंत्रिमंडल ही तैयार

करता है, सदन में प्रस्तुत करता है और उसे पारित कराने के लिए हर सम्भव प्रयास करता हैं। ऐसी परिस्थिति में संसद सदस्यों की उपस्थिति, सक्रियता और बहस में भागीदारी महत्वपूर्ण हो जाती है। सामान्यतः कानून बनाने की तथा कर व शुल्क लगाने की शक्ति संसद में निहित है, लेकिन अधिनियमों का बीजारोपड़ और अभ्युदय मंत्रालयों में होता हैं। मंत्रिमंडल के प्रभावशाली लोग और उसके दल के संसद में बहुमत होने से संसद के अधिकार प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल ने ग्रहण कर लिए हैं। शक्तिशाली विपक्ष के अभाव में संसद, प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल की इच्छानुसार ही कार्य करती है। भारत की संसद स्वर्णयुग प्राप्त किए बिना ही पतन की ओर अग्रसर हो रही है।

संसद की कार्यप्रणाली में गिरावट से जनता का लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व की व्यवस्था और संसद सदस्यों के प्रति विश्वास, उम्मीद और निष्ठा कम होती जाती हैं। क्योंकि यदि संसद के सदस्य अपनी भूमिका को पूरी सत्यनिष्ठा के साथ निर्वहन नही करेंगे तो कार्यपालिका निरंकुश हो कर जनकल्याण और राष्ट्र–निर्माण से विमुख हो पाएँगी और अंततः लोगों में असन्तोष होगा जो सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन को उभारेंगा। संसदीय कार्यप्रणाली में गिरिवट से कानून और नीति–निर्माण में अनेकों त्रुटियाँ होंगी और इससे नागरिकों को असुविधा होगी।

वैश्विक स्तर पर भी विधायिका की कार्यप्रणाली और भूमिका मे कमी देखी जा सकती है। लेकिन सम्प्रति ब्रिटेन, अमेरीका, कनाडा और आस्ट्रेलिया इत्यादि में विधायकों के कार्यप्रणाली मे भारत जैसी गिरावट नही देखी जाती क्योंकि इन देशों में राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक चेतना, नागरिक चेतना, शिक्षा का स्तर और जीवन स्तर भारत से अच्छा हैं। भारत प्रमुख लोकतंत्रों अमेरीका, ब्रिटेन, कनाडा और आस्ट्रेलिया से पीछे हैं। जहाँ इन देशों के विधायक 120–170 से भी अधिक दिन सदन में बैठते हैं और गम्भीर एवं सार्थक बहस करते हैं, वही भारत में संसद सदस्यों के सदन में बैठने के दिन 60 के करीब पहुच गये है, जिससे संसदीय विमर्श कम हो रहा है और जवाबदेही, पारदर्शिता और लोकतंत्र की यात्रा प्रभावित हो रही है।

भारतीय संसद की कार्यप्रणाली में गिरावट की प्रवृत्ति को रोकने एवं उसे और अधिक उपयोगी एवं प्रभावी बनाएं जाने के लिए पूरी इच्छा शक्ति से कुछ गम्भीर पहल किए जाने की आवश्यकता है– सत्तापक्ष को विपक्ष की अपरिहार्यता और उपयोगिता को पूरी प्रतिबद्धता एवं सम्मान के साथ स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि सशक्त और प्रगतिशील विपक्ष के बिना लोकतंत्र, राष्ट्र–निर्माण और सामाजिक न्याय की कल्पना नहीं की जा सकती, सभी सांसदों को उनकी भाषा में सार्थक, पर्याप्त, सरल और सहज रूप में, प्रभावी प्रशिक्षण सम्मान उनकी रूचि, योग्यता और क्षमता को ध्यान में रख कर दिया जाना चाहिए ताँकि अशिक्षित और उच्च शिक्षित सभी अपना उच्चतम योगदान अपने क्षेत्र और सदन को दे सकें। उच्च शिक्षित संसद सदस्यों को क्षेत्रीय भाषा, समाज और संस्कृति के विविध पक्षों का ज्ञान और अनुभव कराया जाना चाहिए, संसद से सम्बंधित विभिन्न समितियों को इक्कीसवीं शताब्दी और सूचना क्रांति के दौर में और प्रभावी बनाएं जाने की आवश्यकता है। संसद के दोनों सदनों के अधिवेशनों के दिनों की संख्या वर्ष में 100 दिन से कम नही होती चाहिए। लोकसभा के स्पीकर और राज्य सभा के सभापति का सत्तापक्ष के द्वारा राजनीतिक उपयोग नही करना चाहिए। सत्ता–पक्ष और विपक्ष दोनों को अपनी विचारधारा, सिद्धान्तों और उद्देश्यों के प्रति प्रतिवद्ध रहना चाहिए। भारत में देखा गया है कि जब कोई दल विपक्ष में होता है तो किसी मुद्दे पर उसकी सोच, और जब वह सत्ता में होता है तो उसी मुद्दे पर उसकी

सोच बिल्कुल विपरीत होती है, जो कि स्वस्थ और विमर्शी लोकतंत्र के लिए सही संकेत नही है। लोकसभा के सदस्यों को वापस बुलाएँ जाने की शक्ति मतदाताओं के पास होती चाहिए ताँकि सांसदों पर दबाव बना रहें और वे सदन में सही आचरण करें और जनप्रतिनिधि के मूल कार्यो का बेहतर ढंग से निर्वहन करने के लिए बाध्य हो। संसद में महिलाओं को सार्थक, पर्याप्त और प्रभावी भागीदारी दी जानी चाहिए ताँकि महिलाओं की रचनात्मकता का लाभ देश को मिल सके। दल–बदल कानून की समीक्षा होती चाहिएय स्थानीय शासन को पूरी इच्छा शक्ति से लागू किया जाए जो कि अभी तक नहीं किया गया और यह पहल राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक प्रशिक्षण और लैंगिक एवं सामाजिक न्याय को अर्थ और बल प्रदान करेंगा। भारत में संविधानवाद की गम्भीर सीमाएँ है, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को संविधान के दायरे में ही कार्य करना चाहिए, एक स्वस्थ न्यायिक नियुक्ति आयोग के गठन के द्वारा इस दिशा में प्रयास किया जा सकता है और जो समय की माँग भी है। राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतंत्र को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जो कि अभी बहुत सीमित है। सभी संस्थाओं में लोकतंत्र को प्रोत्साहित करना चाहिए और अंततः लोगों में नागरिक चेतना के विकास के लिए सरकार और नागरिक समाज को प्रयास करना चाहिए।

निःसंदेह लोकतंत्र को सहभागी, विमर्शी, विस्तृत और गहरा बनाएँ जाने की प्रक्रियाँ एवं अन्य कारणों से भारतीय संसद की कार्यप्रणाली में गिरावट आयी है, लेकिन यह कुछ वर्षो के लिए है, क्योंकि यह सामाजिक–लोकतांत्रिक परिवर्तन के कीमत की तरह हैं और ये उपचारात्मक प्रयास अंततः भारतीय लोकतंत्र को और अधिक प्रगतिशील एवं प्रभावी बनाएंगे। लेकिन समय रहते भारत सरकार और नागरिकों को कई स्तरों पर सुधारात्मक पहल करने की आवश्यकता हैं, नहीं तो भारतीय संसद की कार्य प्रणाली में गिरावट संसद, संविधान और राष्ट्र को कमजोर करेंगी।

संदर्भ सूची –

1. मेहता, पी.बी. (2015). दी डिक्लाइन ऑफ दी इंडियन पार्लियामेंट. जर्नल ऑफ डेमोक्रेसी, 26(3), 67–77.
2. कुमार, एस. (2021). इंडियन पार्लियामेंट इन ट्रांजिशन : ए स्टडी (2004–2020). जर्नल ऑफ कांस्टीट्यूशनल स्टडीज, 5(2), 46–56.
3. गोडबोले, एम. (2011). पार्लियामेंट इन क्राइसिस. इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, 46(10), 15–17.
4. आस्टिन, जी. (1999). वर्किंग ऑफ डेमोक्रेटिक कांस्टीट्यूशन : दी इंडियन एक्सपेरिएंस. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. शंकर, बी. एंड रोडरिगेज, वी. (2011). दी इंडियन पार्लियामेंट : ए डेमोक्रेसी एट वर्क. आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. कश्यप, एस. सी. (2015). आवर पार्लियामेंट. नेशनल बुक ट्रस्ट.
7. लोकसभा सेक्रेटेरिएट, (2021). स्टेस्टिकल हैण्डबुक ऑफ लोकसभा. गवर्नमेंट ऑफ इंडिया.
8. अग्रवाल, आर. (2010). पार्लियामेंट कन्ट्रोल ओवर इक्जीकेटिव इन इंडिया. इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, 71(4), 1201–1215.

rajeshme438@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 43–47
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

'अकाल में उत्सव' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान जीवन की त्रासदी

पवन कुमारी
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर।

भारतीय साहित्य में किसान जीवन एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली विषय रहा है। देश की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के आधार होने के बावजूद भी किसान लंबे समय से विषमताओं का सामना करता आ रहा है। जिस कारण विभिन्न उपन्यासकारों ने किसानी जीवन की वास्तविकता को प्रकट करने के लिए उसे अपनी रचनाओं में विशिष्ट स्थान दिया है। किसानी जीवन की त्रासदी केवल आर्थिक अभाव तक सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक शोषण, कर्ज का बोझ, प्राकृतिक आपदाएं और आधुनिक तकनीक के संसाधनों की कमी ऐसी अनेक समस्याएं हैं जिससे किसान निरंतर जूझ रहा है और कई बार उसकी मेहनत का उचित फल भी उसे नहीं मिल पाता। हिंदी उपन्यासों में इन त्रासदियों को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इन उपन्यासकारों ने न केवल किसान की दयनीय स्थिति को उजागर किया है बल्कि उसके जीवन के संघर्षों को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत कर मानवीय हृदय को उद्वेलित किया है। उपन्यासों में किसान जीवन की स्थिति केवल एक सामाजिक समस्या ही नहीं, बल्कि समाज के उस वर्ग की पीड़ा और संघर्ष का वास्तविक दर्पण है। वह किसान जो हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है उसका स्वयं का जीवन कितना अभावग्रस्त है, यह विषय केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक जागरुकता और परिवर्तन की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

पंकज सुबीर का उपन्यास 'अकाल में उत्सव' किसानों की भयावह व यथार्थ स्थिति का चित्रित करता है। यह उपन्यास उनकी आर्थिक स्थिति, सामाजिक रीति–रिवाज, उनका प्रशासनिक शोषण, सरकारी नीतियां जो उनको मारती है सूदखोर, महाजनों द्वारा दी जाने वाली यातनाओं का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस उपन्यास में दो कहानियां सामानांतर चलती है। एक तरफ सूखापानी गांव के छोटे स्तर के किसान राम प्रसाद की तो दूसरी तरफ उसी क्षेत्र के कलेक्टर श्री राम परिहार की। अकाल में उत्सव उपन्यास 'रामप्रसाद' जैसे किसान की आत्महत्या, सरकार के भ्रष्टाचार व उदासीनता को प्रकट करता उपन्यास है। यह उपन्यास वास्तव में वर्तमान राजनीतिक व सरकारी कार्यालयों की यथार्थ तस्वीर हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास का पात्र रामप्रसाद सम्पूर्ण भारतीय किसान जाति का प्रतीक है तथा 'सूखा पानी' हिन्दूस्तान के सभी गाँवों का प्रतीक बन

उभरता है। किसानों की दशा का चित्रण करते पंकज सुबीर जी लिखते है –

''अगर किसान खेती नही करेगा तो आप और हम खाएँगे क्या? और वैसे भी अब किसान धीरे–धीरे मजदूर होता जा रहा है इस देश में उसकी जमीने जा रही है। कुछ दिनों बाद इस देश में मल्टीनैशनल कम्पनियाँ ही खेती करेगी।''[1]

देश की खोखली सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली स्थिति को इस उपन्यास के द्वारा स्पष्ट किया गया है। वर्तमान भारतीय राजनीति के यथार्थ रूप को लेखक ने पात्रों के माध्यम् से हमारे सामने रखा है। इस उपन्यास में लेखक ने समाज की खोखली परतों को खोला है चाहे वह राजनीति व्यवस्था हो, सरकारी शिक्षा व्यवस्था या फिर सरकारी कार्यालय इन सबकी यथार्थ तस्वीर को लेखक ने प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास पाठक की मनोस्थिति को निश्चय प्रभावित करता है। गांव के आर्थिक पक्ष को प्रभावित करने में ऋणग्रस्तता का भी विशेष योगदान है। यह ग्रामीण जीवन की एक बड़ी समस्या है। इसी कारण किसानों की आत्महत्या की खबरें दिन प्रतिदिन बढ़ती दिखाई दे रहे हैं। प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसलों के जल्दी खराब हो जाने पर जब किसान उचित दाम न मिलने पर कर्ज नहीं चुका पाता,तो निराश होकर उसे आत्महत्या करनी पड़ती है। पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल के उत्सव' का पात्र रामप्रसाद भी इसी ऋण के बोझ के नीचे दबा बैठा है जो समाप्त होने का नाम नहीं लेता। यह उपन्यास किसानों की वास्तविकता व भयानक स्थिति को प्रस्तुत करता है। रामप्रसाद कर्ज के बोझ से दबा हुआ है। बीवी कमला के चंद गहनों को छोड़कर बाकी सब कुछ बिक चुका है या सेठ व महाजनों के पास गिरवी रखा है। स्वतंत्रता पूर्व जो सूदखोरों ,महाजनों का आंतक था, आज भी है, कहीं भी कोई बदलाव नहीं आया। वास्तव में–

"किसान के जीवन में बढ़ते दुख उसकी पत्नी के शरीर पर घटते जेवरों से गिने जा सकते हैं। नई बहू जब आती है तो नए घाघरे, लुघड़े, पोलके के साथ तोड़ी, बजट्टी, ठुस्सी, झालर, लच्छे, करधनी से झमकती है। फिर धीरे–धीरे उम्र बढ़ने के साथ–साथ खेती किसानी की सुरसा अपना मुंह फाड़ती है और महिलाओं के शरीर पर से एक–एक जेवर कम होता जाता है। जेवर जो शरीर से उतरकर किसी साहूकार की तिजोरी में गिरवी हो जाते हैं और किसान के घर की चीज एक बार गिरवी राखी जाएँ तो फिर छुटती कहा हैं।"[2]

उपन्यास का एक दृश्य है जब वह अपनी पत्नी का आखिरी जेवर पांव की तोड़ी सुनार से पिंघलवा रहा होता है। चांदी की हर पिंघलती बूंद के साथ उसे उससे जुड़ी यादें याद आती है। एक गरीब किसान की भावनाओं का कोई मोल नहीं है। किसान जिस मजबूरी में गहना तुड़वाता है इस दर्द को सुनार भी जानता है और किसान भी। किसान का जीवन मौसम पर कितना निर्भर करता है मौसम जरा सा उट पलटा नहीं कि किसान का जीवन तबाह हो जाता है। उपन्यास का एक प्रसंग है–

"कमल की तोड़ी बिक गई, बिकनी ही थी। छोटी जात के किसान की पत्नी के शरीर पर जेवर क्रमशः घटने के लिए होते हैं और हर घटाव का एक भौतिक अंत शून्य होता है। जब परिवार की महिला के पास इन धातुओं का अंत हो जाता है तब तय हो जाता है कि किसानी करने वाली बस यह अंतिम पीढ़ी है, इसके बाद अब जो होंगे वह मजबूर होंगे। यह धातुएं बिक बिक कर किसान को मजदूर बनने से रोकते हैं।"[3]

किसान का जीवन सदैव संकटों से भरा रहता है। कर्ज किसान के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है इसीलिए तो कहा जाता है कि किसान कर्ज में जन्म लेता है और कर्ज में ही मर जाता है। इसी समस्या को

प्रस्तुत करते लेखक ने भी लिखा है कि–

"हर छोटा किसान किसी न किसी का कर्जदार है, बैंक का, सोसाइटी का, बिजली विभाग का या सरकार का।"[4]

बढ़ती महंगाई की समस्या भी ग्रामीण जीवन की अर्थव्यवस्था को विचलित कर रही है। वस्तु के मूल्य लगातार बढ़ रहे हैं। महंगाई तो सुरसा के मुंह के समान बढ़ती ही जा रही है। सरकारी किसानों को सब्सिडी के नाम पर थोड़ी सी सहायता देकर किसी वर्ग की मसीहा बन रही है। परंतु अकाल के उत्सव उपन्यास में लेखक ने अपना मत प्रस्तुत करते लिखा है–

"यह दुनिया की सबसे बड़ी कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है। जिसमें हर कोई किसान के पैसे पर अययाशी कर रहा है। सरकार कहती है कि सब्सिडी बांट रही है, जबकि हकीकत यह है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य के आंकड़े में उलझा किसान तो अपनी जेब से बांट रहा है सबकी सब्सिडी। यदि 40 साल में सोना 40 गुना बढ़ गया तो गेहूं भी आज 4000 के समर्थन मूल्य पर होना था, जो आज है 1500 मतलब यह है कि हर एक क्विंटल पर ढाई हजार रुपए किसान की जेब से सब्सिडी जा रही है।"[5]

आजकल सरकारी डॉक्टरों ने भी कमाई का अलग तरीका बना लिया है। जब राम प्रसाद की बहन सुनीता की सास को शहर के सरकारी अस्पताल में ले जाया जाता है परंतु उसे कोई सहायता वक्त पर नहीं मिलती, तब वार्डबॉय आकर राम प्रसाद को कहता है कि डॉक्टर साहब मरीज घर पर देखते हैं वहां उनकी फीस थोड़ी ज्यादा है तब दो हजार तय होता है कि डॉक्टर साहब अलग से मरीज को देख लेंगे, लेखक लिखता हैः

"नाम बताता है और कंपनी उसे नाम से दवा डॉक्टर के बताए रेट पर छाप कर देती है। अब वह दवा पूरे विश्व में एक ही दुकान पर मिलेगी, डॉक्टर के घर में खुली उसे दुकान पर, जिसे उसकी पत्नी संचालित कर रही है। दूसरी जगह तो मिल ही नहीं सकती ना, क्योंकि कंपनी तो उस नाम की दवा केवल एक ही दुकान पर दे रही है। अच्छा पत्नी ने भी कोई फार्मेसी की डिग्री नहीं ली गई है, जो दवा बेच सके, लेकिन दुकान तो दूसरे के नाम पर है, जिसके पास फार्मेसी की डिग्री है और जो हर महीने दुकान की तय राशि ले जाता है। हैरत की बात है कि खेतों में दिन रात परीक्षण करने वाले किसान के लिए तो न्यूनतम समर्थन मूल्य तय है। किंतु दवाओं का कोई न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं, जो मर्जी आए छापा और बेचो।"[6]

प्रकृति आपदा का जितना प्रभाव गांव के किसानी जीवन को प्रभावित करता है उतना शायद कहीं और नहीं। फसल पक जाने पर जो ओलो की बरसात होती है वह किसान के लिए मौत लेकर आती है। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास का पात्र किसान रामप्रसाद व उसकी पत्नी घर में बैठे बाहर देख रहे हैं। रात बहुत हो गई है लेकिन इन दोनों को नींद नहीं आ रही। भय और चिंता के भाव उनके चेहरे पर है, कमला मन ही मन देवी देवताओं को याद कर मनौतियां मानती जा रही है। जैसे ही कोंध होती है वैसे ही कमला का दिल डूब जाता है। टप्प .....आंगन में पहली वर्षा की बूंद ने उस छोटे से घर के अंदर दहशत भर दी। यही वर्षा की बूंदे खेत में खड़े गेहूं को जमीन पर मौत की नींद सुला देंगी।

"मौत की दहशत, इस छोटे से मकान के आसपास कभी ध्वनि के रूप में, कभी दृश्य के रूप में नाच रही है। ध्वनियाँ तो बता रही है कि सब कुछ समाप्त हो रहा है। दृश्य जो दिख रहे हैं कि किस प्रकार से सब कुछ समाप्त हो रहा है। जब यह ध्वनियाँ रुकेगी, यह दृश्य थमेंगे, तो कहीं भी कुछ नहीं बचेगा। राम प्रसाद पत्थर

की तरह जड़ होकर बैठा है, जमीन पर बिछी चटाई पर, कमला की प्रार्थनाएं अब बंद हो गई हैं, अब वह कोस रही है, रोती जा रही है....।"[7]

इस प्रकृति आपदा पर सरकारी सहायता का आश्वासन दिया जाता है। सूखा पानी और आसपास के लोग कलेक्टर के पास आए हैं उनके हाथों में नष्ट हुई फसल के अवशेष हैं। किसी के हाथ में कुचली हुई, टूटी हुई बलिया है तो किसी के हाथ में चने के पौधे हैं। यह सब कलेक्टर को नुकसान के बारे में बताने आए हैं, तभी उनको निर्देश दिए जाते हैं कि आप पटवारी हलका के हिसाब से अलग हो जाए और अपने–अपने हलके के पटवारी को अपने नाम लिखवा कर जानकारी दे दीजिए। आप लोगों को समय पर मुआवजा आ जाएगा।

इसी आपदा से प्रभावित किसान कई बार आत्महत्या का शिकार हो जाता है। चारों तरफ से वह मुश्किलों से इतना गिर जाता है कि फिर उसके पास आत्महत्या के सिवा कोई रास्ता नहीं रहता। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास का राम प्रसाद भी इसी का शिकार होता है। गरीबी के कारण उसका सब बिक चुका है एक फसल ही उसका सहारा थी परंतु जब ओलो के कारण उसकी पूरी फसल नष्ट हो जाती है और ऊपर से बैंक के झूठे लोन का आरोप, यह सब उसके लिए असहनीय हो जाता है।

डॉ. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार –

"उपन्यास बड़े फलक के साथ करूर सच्चाइयों की महीन परतों के साथ उघाड़ने में समर्थ है, 'अकाल में उत्सव' किसान आत्महत्या जैसे बड़े सामाजिक सरोकार के संदर्भ में समय का अक्स प्रस्तुत करता है।"[8]

किसान के लिए उसकी फसल उसके बच्चे के समान होती है फसल को कही नजर ना लग जाए, इसके लिए भी ग्रामीण स्त्रियां कहीं टोटके करती हैं। फसल से ही उनके भविष्य की आस्था बंधी होती है। उपन्यास में एक जगह कमला कहती है।

"अबार (इस बार) तो गाँउ भी भोत अच्छों जमी है। और एक महीना ठीक से निकल गयो तो खूब अच्छो हीटेगी (निकलेगी) फसल। अच्छी फसल आ गई, तो अपने को कौन घर में रखनी हैं, बेच–बाच के कर लिजो सारा काम, कल हूँ (मै) गई थी जब, म्हारी तो नजर ही नी टिक री थी, गऊँ ये। हूँ तो अपनों कालो रिबन खोल के नी कोना के बबूल पे बांधी आई थी।"[9]

उपन्यास का अंत व्यंग्यात्मक एवं मर्मस्पर्शी है। राम प्रसाद की आत्महत्या के बाद प्रशासन द्वारा अपने उत्सव को जारी रखा जाता है जो प्रशासन की संवेदनहीनता को प्रकट करता है। तीन दिवसीय सांस्कृतिक आयोजन के समापन पर एक विशाल कवि सम्मेलन किया जाता है जहां शासन की गुणवत्ता का गुणगान होता है एक तरफ किसान आत्महत्या का शिकार होता है तो दूसरी तरफ कलेक्टर और प्रशासन उत्सव मना रहे हैं। राम प्रसाद की आत्महत्या के बाद अफसरशाही उसे पागलपन का रूप देकर अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेती है। यह उपन्यास आज की अफसर शाही और आम किसान की त्रासदी के बीच की गहरी खाई को उजागर करता है। यह उपन्यास किसानी जीवन की त्रासदी को हमारे सामने प्रस्तुत करने में सक्षम उपन्यास है। समग्र रूप से 'अकाल में उत्सव' उपन्यास किसान की आत्महत्या को सरकारी तंत्र द्वारा पागलपन बताकर आत्महत्या के समय में भी उत्सव मना कर अफसर शाही की संवेदनहीनता को उजागर करता उपन्यास है। यह उपन्यास भारतीय किसान की दुर्दशा और सरकारी उदासीनता को चित्रित कर किसानी जीवन की त्रासदी को उजागर करता उपन्यास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ –194
- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ –12
- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ –78
- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ –27
- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ –42
- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ –77
- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ –240
- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ –6
- अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ 28

सहायक पुस्तकें :

- पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, मध्य प्रेदश : संस्करण 2017
- आज का हिंदी उपन्यास, डॉ इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : प्रथम संस्करण 1966
- इक्कीसवीं सदी का हिन्दी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली : संस्करण 2017
- ग्रामीण साहित्य : स्वरूप बोध, नागनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : संस्करण 2006

pawanyadav12b@gmail.com

9915511752

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 48–52
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

शाश्वत चेतनता के प्रतिरूप : 'हिन्द की चादर' श्री गुरू तेग बहादुर जी

डॉ. तेजिंदर कौर
असिस्टेंट प्रो., स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
हिन्दू कन्या कॉलेज, कपूरथला (पंजाब)

भारतीय भूमि ऋषियों, महाऋषियों, संत–महात्माओं, प्रेरक व्यक्तित्वों की भूमि रही है जिसका इतिहास, सभ्यता व संस्कृति इतनी समृद्ध है कि सम्पूर्ण सृष्टि के लिए प्रेरणा का पुंज है। महान् वेदों, पुराणों, उपनिषदों के रचयिता इसी भारतभूमि में रचे बसे हैं। किसी भी धर्म की बात कह ली जाए, पर मानवता का धर्म सबसे बड़ा धर्म है और इसी समानता का उपदेश देने वाले संतों महापुरुषों की देन से यह भूमि इतनी समृद्ध और शक्तिशाली बन पाई है कि सम्पूर्ण विश्व के लिए एक उदाहरण बन गई। राम और कृष्ण जैसे अवतारों ने भी अपनी लीलाओं का लिए इसी देश की पावन धरा को चुना और गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु गोबिंद सिंह जी ने भी अपने महान् कार्यों, सुधारों और कुर्बानियों के लिए इसी भूमि को अपनी पहचान बनाया।

क्या खूब लिखा गया है –

"रघुकुल रीत सदा चली आई
प्राण जाए पर वचन न जाई।।"

दया, करुणा, प्रेम, मानवता व निरूस्वार्थ सेवा के सर्वोच्च प्राणदाता श्री गुरु तेग बहादुर जी, जिन्होंने कश्मीरी पंडितों के प्राणों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की कुर्बानी देने में जरा भी देर नहीं लगाई, उन्हें संपूर्ण भारतवर्ष में 'हिंद की चादर' के नाम से विभूषित किया जाता है। स्वयं सिख धर्म का नेतृत्व करने वाले गुरु तेग बहादुर जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। वास्तव में यह संदेश मानवता के धर्म की रक्षा का था। सत्य यह है कि श्री गुरु तेग बहादुर जी के बलिदान का कोई सानी नहीं।

मानवता की रक्षा करने के लिए उन्होंने सदैव अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता का समर्थन किया। गुरु तेग बहादुर जी ने मानवीय दशा के दोनों पक्षों का भली–भांति निरूपण किया है – बंधन का और मुक्ति का। सच तो यह है कि उन्होंने अपनी वाणी में वास्तविकता की बजाय उसके बन्धनों पर अधिक विचार किया है और उस मनुष्य की मुक्ति की संभावनाओं पर अपेक्षाकृत और भी ज्यादा बल दिया है। एक के बाद दूसरे पद की रचना में तथा एक श्लोक के बाद दूसरे गंभीर श्लोक में श्री गुरु तेग बहादुर जी ने नैतिक पतन के मानवीय कर्मों में परमार्थ के पूर्ण अभाव की अज्ञानता के, आध्यात्मिक अंधेपन के, व्यापक जीवन मूल्यों के अंधेपन के तथा आत्मा

की जड़ता के चित्र पेश किए हैं जो मानवीय अवस्थाओं के चारित्रिक चरित्र भी हैं। उन्होंने बेहद स्पष्ट विवरण दिया है जो मनुष्य को नैतिक पतन की गहराइयों में नीचे धकेलता है।

''कहा मन बिखिआ सिउ लपटाही।।

या जग मैं कोऊ रहनु न पावै इक आवहि इक जाहि।।''(1)

काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का सूक्ष्म चित्रण करते हुए उन्होंने संकट के आसान से लक्षणों का ही विवरण नहीं किया बल्कि बताया कि यह सभी विकार स्वयं संकट के उद्‌गम स्रोत हैं। गुरु तेग बहादुर जी की दृष्टि में वास्तविक संकट बाहरी अवस्थाओं का न होकर आंतरिक विकारों का है। मनुष्य के बंधन उसकी गुलामी की परिस्थितियों से इतना अग्रसारित नहीं होते जितना कि मनुष्य द्वारा उस अवस्था को अंतिम और परिवर्तनशील मान लिया जाता है।

गुरु जी की वाणी में विनम्रता, दया, करुणा और निस्वार्थ सेवा का भाव दृष्टिगोचर होता है। जो आज के समय में भी अत्यंत आवश्यक व प्रासंगिक है। समन्वयात्मकता भारतीय संस्कृति का मेरुदंड है यही समन्वय चेतना का मूल आधार है। इसे हमने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी कमजोरी का एक लक्षण मान लिया है। अपनी पराजय में भी हम सक्षमता को ढूंढने लगते हैं परंतु सत्य वास्तव में इसके विपरीत होता है। भारतीय संस्कृति का दूसरा विभाज्य अंग है – स्वतंत्र चेतना। दास्तां सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में ही बुरी नहीं है, चिंतन और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में कहीं ज्यादा हानिकारक है। इसी हेतु भारतीय संस्कृति को रूढ़ियों और परंपराओं का एक आवश्यक समुदाय मात्र समझ लेना भ्रामक होगा। इसी संगम में आध्यात्मिकता आदि अन्य सभी मूल्य मिल जाते हैं। गुरु तेग बहादुर जी के व्यक्तित्व में एक साथ उन समस्त गुणों का समावेश मिल जाता है जो गुण मानव को उसकी चरम सत्य उपलब्धि तक ले जाने की क्षमता रखते हैं। ईश्वर–निष्ठा, निवृत्ति एवं प्रवृत्ति में समदृष्टि लोकधर्मिता हेतु आत्म–बलिदान की भावना, सामाजिक अभ्युदय के लिए निर्भीकता, दलितों एवं शोषण के प्रति करुणा, सहिष्णुता, भौतिक पदार्थों के प्रति उदासीनता, सर्वभूत हित आकांक्षा, ब्रह्म में लीनता तथा अत्याचार के समक्ष न झुक कर सच्चाई के लिए मर मिटना आदि गुण उनमें व्याप्त थे।

डॉ. समीर सिंह ने लिखा है –

"शस्त्र और शास्त्र का, संघर्ष और वैराग्य का, लौकिकता और अलौकिकता का, रणनीति और आचार्य नीति का, राजनीति और कूटनीति का, संग्रह और त्याग का, आत्मलीनता और विश्व के प्रति समर्पण का, ऐसा सहयोग मध्य युगीन साहित्य एवं इतिहास में बिरला है। यही कारण है कि गुरु तेग बहादुर जी के गौरव और उनकी बहादुरी की एक साथ रक्षा करने में सफल है।"(2)

गुरुजी ने मनुष्य को सांसारिक सुखों के पीछे भागने की बजाय नाम सिमरन, ईश्वर की भक्ति पर ध्यान देने और परोपकार को अपने जीवन का उद्देश्य बनाने की शिक्षा दी। सभी महानुभावों की भांति गुरु जी ने भी ईश्वरीय मार्ग से भटके हुए अथवा समाज का भला न चाह कर अपनी ही स्वार्थ सिद्धि में लगे हुए स्व–केंद्रित व्यक्ति को नीच माना है और सबके भले में अपना भला देखने वाले व्यक्ति को साधु कहा है। उनके समय में मुल्लाओं और ब्राह्मणों के बहकाने पर नीच और सब की गलत रूपरेखा समझने वाले लोगों की कमी नहीं थी।

"हरि के नाम बिना दुखु पावै।।

भगति बिना सहसा नह चूकै गुर इह भेदु बतावै।।

कहा भइओ तीरथ व्रत कीए राम सरनि नहीं आवै।।
जोग जग निहफल तिह मानउ जो प्रभ जसु बिसरावै।।
मान मोह दोनी कउ परहरि गोबिन्द के गुन गावै।।
कहु नानक इह बिधि को प्रानी जीवन मुकति कहावै।।[3]

धार्मिक विधि विधानों की पालना को ही ईश्वर भक्ति समझने वाले लोग तो यही मानते थे कि तीर्थ स्थान या हज न करने वाला व्यक्ति, पितरों का श्राद्ध न करने वाला अथवा पूर्वजों की कब्र पर दिया ना जलाने वाला, किसी विशेष धर्म ग्रंथ का पठन–पाठन न करने वाला या किसी निश्चित विधि विधान के अनुसार ईश्वर उपासना न करने वाला व्यक्ति नीच है। परन्तु गुरु तेग बहादुर जी ने अपनी वाणी में धर्म और मजहब के इन बाहरी तत्वों को महत्व न देते हुए सामाजिक तत्वों को महत्व दिया है और पापी अधर्मी उस व्यक्ति को माना है जो समाज के प्रति घातक कार्य करता है।

कबीर जी ने लिखा है –

''सूरा सो पहचानिए जो लड़े दिन के हेत
पुर्जा पुर्जा कट मरे कबहु न छाड़े खेत।।''

अर्थात् शूरवीर वह होता है जो धर्म के लिए लड़ता है चाहे उसका पुर्जा–पुर्जा ही क्यों ना काट दिया जाए वह रणक्षेत्र से कभी पीछे नहीं हटता। गुरु तेग बहादुर जी भी शूरवीर, बहादुर, योद्धा और धर्म के लिए लड़ने वाले संत व वीर थे। उनका जीवन संसार के जीवों के कल्याण के लिए हुआ था, अतः उन्होंने मानवता की रक्षा के लिए एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में शस्त्र धारण किया। उनके पिता श्री गुरु हरगोबिंद सिंह जी गुरु परंपरा का अनुसरण करते हुए मानवता की घातक राजशक्ति से अपने शास्त्र के साथ शस्त्र के बल पर मुकाबला करना उचित समझा। श्री गुरु हरगोबिंद सिंह जी ने शासक वर्ग के अत्याचारों से रक्षा हेतु मीरी पीरी नाम की दो तलवारें धरण की थी। गुरु परंपरा में उन्हें मान्यता मिलने की पश्चात् गुरु तेग बहादुर जी ने भी इसी विचारधारा का अनुसरण करके तलवार को धारण किया। अत्याचार व अन्याय के सामने कभी न झुकने का संदेश देने वाले श्री गुरु तेग बहादुर जी की वाणी का मूल मंत्र है –

"भै काहू कउ देत नाहिं
नाहिं भै मानत आन।।
कहो नानक सुन रे मन ज्ञानि ताहि बखान।।[4]

गुरु जी का संपूर्ण जीवन और उनकी वाणी मनुष्य को सच्ची वीरता, धर्म की रक्षा और निडर होकर अन्याय के विरुद्ध लड़ना सिखाती है। गुरु तेग बहादुर जी लोक रक्षक क्षमाशील होने के साथ–साथ माया से मुक्त भी थे। गुरु जी ने जीवन पर्यंत स्थान–स्थान पर लोक हितों की रक्षा को प्रमुख माना तथा स्वयं अंतिम समय में भी लोक रक्षा हेतु आत्म–बलिदान दे दिया। आप क्षमाशील थे। क्षमा आपके स्वभाव का एक विशिष्ट महत्वपूर्ण तथा अभिन्न लक्षण था। आपके व्यक्तित्व में से एक क्रांतिकारी और दृढ़ निश्चय व्यक्ति प्रकट होता है।

गुरुजी दृढ़ निश्चयी अर्थात् पक्के इरादे के स्वामी थे। औरंगजेब के जब्र–जुल्म के वातावरण में अपने एक बागी और क्रांतिकारी की तरह निडर भाव से देशाटन किया और संपूर्ण भारत का भ्रमण किया। आपके मन में औरंगजेब का कोई भय नहीं था। आपने लोगों को भी उसके जुल्म से आतंकित न होने का उपदेश दिया।

"पापी हीए मै कामु बसाइ।।
मनु चंचलु, याते गहियो न जाइ।।
जोगी जंगम अरु संनिआस।।
सभ ही परि डारी इह फास।।
जिहि जिहि हरि को नामु सम्हारि।।
ते भव सागर उतरे पारि।।
जन नानक हरि की सरनाइ।।
दीजै नाम रहै गुन गाइ।।[5]

जब आपको बंदी बनाकर औरंगजेब के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो औरंगजेब ने आपको धर्म परिवर्तित करके मुस्लिम धर्म अपनाने के लिए अनेक प्रलोभन दिए तथा साथ ही कई प्रकार की यातनाएं भी दी, परंतु आपने दृढ़ निश्चयी होने का प्रमाण देते हुए उसे साफ मना कर दिया। आपने कहा कि हम ना तो अपना धर्म छोड़ेंगे और ना ही कोई करामात दिखाएंगे, तुम जो चाहे करो, हम तैयार हैं। इसके बाद आप औरंगजेब के अनीतिपूर्ण शोषण के विरुद्ध सच्चे क्रांतिकारी तथा दृढ़ निश्चय की तरह डटे रहे और शहीद हो गए।

आज का वैश्विक पटल कितना बदल चुका है। अन्याय, अत्याचार, निरंकुशता के समय में दया, करुणा, प्रेम, सहनशीलता की प्राण वायु की आवश्यकता आज फिर से अनुभव हो रही है। तीसरे विश्व युद्ध की गुंझलदार परिस्थितियों के बीच आज विश्व शांति की कामना की जा रही है। स्थिति ऐसी भयावह हो सकती है कि परमाणु बम, एटम बम की चपेट में आकर पूरा विश्व मिट्टी की ढेरी बन सकता है। ऐसे समय में श्री गुरु तेग बहादुर जी का जीवन दर्शन, दृष्टिकोण और उनकी वाणी से प्रेरणा लेने की पुनः आवश्यकता है।

"मन रे साचा गहो बिचारा।।
राम नाम बिनु मिथिआ मानो सगरो इहु संसारा।।"[6]

आज के युवा, आज के युग, देश के प्रतिनिधियों को और हर वर्ग के लोगों को गुरु तेग बहादुर जी के जीवन से गहन शिक्षा लेकर साहस, निष्ठा, निस्वार्थ भाव से सेवा का अनुसरण करना होगा। गुरु जी ने सदैव अपने सिद्धांतों के प्रति अटूट प्रतिबद्धता का उदाहरण दिया है। अत्याचार और उत्पीड़न के विरुद्ध मजबूरी के साथ खड़े रहने का संदेश दिया है। उनका जीवन और कार्य पंथ व धर्म की स्वतंत्रता के लिए उनके बलिदान, मानव अधिकार और व्यक्तिगत विश्वास के अधिकार की रक्षा के महत्व को रेखांकित करता है जो आज के युग की विविधतापूर्ण और विभाजित दुनिया में एक महत्वपूर्ण सबक है। ध्यान और आत्म–परीक्षण के क्षेत्र में गुरु जी की शिक्षाएं आज के हर वर्ग को जीवन की चुनौतियों के बीच आंतरिक शांति और लचीलेपन को खोजने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करती है। आज के भौतिकतावाद के युग में नैतिक मूल्यों व विचारों का ह्रास हो रहा है परंतु इस अंधकारमय वातावरण में गुरु जी का जीवन एक प्रकाश स्तंभ के रूप में खड़ा है जो आज के प्रतिनिधियों को सहानुभूति के साथ नेतृत्व करने, न्याय को बनाए रखने, विपरीत परिस्थितियों में भी अपने मूल्यों पर दृढ़ रहने के लिए मार्गदर्शक का काम कर रहा है। उनके जीवन, विचारों और साहित्यिक अवदान से प्रतिनिधियों को सही के लिए खड़े रहना, एकता और अखंडता की भावना को बढ़ावा देने और उद्देश्यपूर्ण तथा मानवता भाव का जीवन जीने के महत्व की सीख देता है। श्री गुरु तेग बहादुर जी केवल सिख समुदाय या भारत

के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के मानवाधिकारों के महानायक हैं।

संदर्भ विवरण :-

- वाणी, गुरु तेग बहादुर, पृष्ठ –21
- नवम गुरु पर बारह निबंध, संपादक – रमेश कुंतल मेघ, पृष्ठ संख्या – 65
- वाणी, गुरु तेग बहादुर, पृष्ठ – 16
- वाणी, गुरु तेग बहादुर, पृष्ठ – 28
- वाणी, गुरु तेग बहादुर, पृष्ठ – 19
- वाणी, गुरु तेग बहादुर, पृष्ठ – 13

संदर्भ ग्रंथ विवरण -

- वाणी गुरु तेग बहादुर, संपादक – प्यारा सिंह पद्म, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, 1970
- नवम गुरु पर बारह निबंध, संपादक – रमेश कुंतल मेघ, प्रकाशक – हिंदी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, 1982
- गुरु तेग बहादुर जी की वाणी रू संदर्भ और विश्लेषण, डॉ. सुखविंदर कौर बाठ, अमर प्रकाशन गाजियाबाद, 2003.
- गुरु तेग बहादुर : व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. देवेंद्र कुमार, दिव्यांश प्रकाशन, अमृतसर, 2005.

ई मेल – tajinderyadav.ty21@gmail.com

मोबाइल न. 7888314258

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 53–57
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. पंचानन महतो
सहायक प्राध्यापक, ए. आर. एस. बी. एड. कॉलेज, बोकारो, झारखंड।

हिंदी साहित्य में कृष्णा सोबती का लेखन अपने विशिष्ट जीवन–बोध, सशक्त भाषा और गहरे सामाजिक सरोकारों के कारण एक अलग पहचान रखता है। उनके उपन्यास केवल कथात्मक रचनाएँ नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय समाज की बहुआयामी संरचना का जीवंत दस्तावेज प्रतीत होते हैं। विशेषतः ग्रामीण और शहरी जीवन के विविध रूपों को जिस संवेदनशीलता और यथार्थपरक दृष्टि से उन्होंने चित्रित किया है, वह उन्हें समकालीन कथा–साहित्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

भारतीय जीवन का मूल स्वर लंबे समय तक गाँवों में निहित रहा है, जहाँ परंपरा, सामूहिकता और सांस्कृतिक निरंतरता का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। इसके विपरीत, शहरी जीवन आधुनिकता, परिवर्तनशीलता और व्यक्तिकेंद्रित दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। इन दोनों जीवन–प्रणालियों के बीच केवल भौगोलिक अंतर ही नहीं, बल्कि मानसिकता, संबंधों, मूल्यों और जीवन–दृष्टि का भी स्पष्ट भेद दिखाई देता है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में यही द्वंद्व, संवाद और अंतर्संबंध अत्यंत स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। उनकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन केवल पृष्ठभूमि भर नहीं है, बल्कि वह अपने पूरे सामाजिक–सांस्कृतिक विस्तार के साथ उपस्थित होता है। जिंदगीनामा जैसे उपन्यास में गाँव का जीवन अपनी परंपराओं, रीति–रिवाजों, सामूहिक संबंधों और ऐतिहासिक चेतना के साथ सजीव हो उठता है। यहाँ जीवन की गति धीमी है, परंतु उसमें एक स्थायित्व और सामूहिकता का भाव निहित है। दूसरी ओर, मित्रो मरजानी और ऐ लड़की जैसे उपन्यासों में शहरी परिवेश के बदलते संबंध, व्यक्तिवादी चेतना और आधुनिक जीवन की जटिलताएँ उभरकर सामने आती हैं। यहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व, स्वतंत्रता और आत्मबोध के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है।

कृष्णा सोबती का विशेष योगदान इस बात में है कि उन्होंने इन दोनों परिवेशों को किसी पूर्वाग्रह के साथ नहीं, बल्कि एक संतुलित और यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उनके यहाँ गाँव केवल आदर्श या रोमानी स्थल नहीं है, बल्कि वहाँ भी सामाजिक बंधन, रूढ़ियाँ और संघर्ष विद्यमान हैं। इसी प्रकार शहर केवल प्रगति और स्वतंत्रता का प्रतीक नहीं, बल्कि वहाँ अकेलापन, विखंडन और संबंधों की जटिलता भी है। इस प्रकार उनके उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच एक गहरा अंतर्द्वंद्व और अंतःसंवाद दिखाई देता है।

उनकी भाषा और शिल्प भी इस चित्रण को और अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। लोकभाषा, बोलियों और

संवादों के माध्यम से वे ग्रामीण जीवन को जीवंत बनाती हैं, वहीं शहरी परिवेश में भाषा की एक अलग लय और संरचना देखने को मिलती है। यह भाषिक विविधता न केवल उनके साहित्य की विशेषता है, बल्कि यह भी दर्शाती है कि वे जीवन के प्रत्येक स्तर को उसकी अपनी संवेदना और अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने में सक्षम हैं।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन केवल दो अलग–अलग परिवेश नहीं, बल्कि भारतीय समाज के दो ऐसे आयाम हैं, जो निरंतर एक–दूसरे को प्रभावित करते हुए एक व्यापक सामाजिक यथार्थ की रचना करते हैं। उनके लेखन में यह स्पष्ट होता है कि परिवर्तन की प्रक्रिया में जहाँ गाँव शहर की ओर अग्रसर है, वहीं शहर भी अपनी जड़ों की ओर लौटने की आकांक्षा से जुड़ा हुआ है।

कृष्णा सोबती का कथा–साहित्य ग्रामीण और शहरी जीवन के तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यंत उपयुक्त और समृद्ध आधार प्रदान करता है। उनके उपन्यासों के माध्यम से हम न केवल इन दोनों जीवन–शैलियों के भेद और संबंधों को समझ सकते हैं, बल्कि भारतीय समाज के बदलते स्वरूप और उसकी अंतर्निहित जटिलताओं को भी गहराई से अनुभव कर सकते हैं।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण अत्यंत सजीव, व्यापक और बहुआयामी रूप में सामने आता है। उनके यहाँ गाँव केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक संसार है, जहाँ जीवन की लय, संबंधों की संरचना और मानवीय संवेदनाएँ एक विशिष्ट रूप ग्रहण करती हैं। वे ग्रामीण जीवन को किसी रोमानी दृष्टि से नहीं, बल्कि उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं, जहाँ सुख–दुःख, परंपरा और परिवर्तन, सामूहिकता और संघर्ष एक साथ विद्यमान हैं।

कृष्णा सोबती के उपन्यास जिंदगीनामा में ग्रामीण जीवन का अत्यंत विस्तृत और जीवंत चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में गाँव केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि स्वयं एक केंद्रीय पात्र की तरह उपस्थित है। यहाँ का जीवन प्रकृति के साथ गहरे संबंध में विकसित होता है – खेती, ऋतु–चक्र, त्योहार, और लोक–परंपराएँ ग्रामीण जीवन की धड़कन बनकर उभरती हैं। इस परिवेश में सामूहिकता का भाव अत्यंत प्रबल है। लोग एक–दूसरे के सुख–दुःख में सहभागी होते हैं, जिससे सामाजिक संबंधों में आत्मीयता और निकटता बनी रहती है।

ग्रामीण समाज की संरचना को सोबती ने अत्यंत सूक्ष्मता से उकेरा है। परिवार यहाँ सामाजिक इकाई का केंद्र है, जहाँ संयुक्त परिवार की परंपरा, आपसी निर्भरता और सामाजिक मर्यादाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। साथ ही जातिगत संरचना, सामाजिक पदानुक्रम और परंपरागत मान्यताएँ भी ग्रामीण जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। सोबती इन तत्वों को न तो छिपाती हैं और न ही उनका अतिशयोक्ति करती हैं, बल्कि उन्हें उनके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करती हैं, जिससे ग्रामीण जीवन की जटिलता स्पष्ट होती है। ग्रामीण जीवन की आर्थिक स्थिति भी उनके उपन्यासों में यथार्थपरक ढंग से चित्रित हुई है। कृषि पर आधारित जीवन–शैली में श्रम का महत्व सर्वोपरि है, जहाँ मेहनत, संघर्ष और प्रकृति पर निर्भरता जीवन की अनिवार्य सच्चाई बन जाती है। आर्थिक सीमाएँ होने के बावजूद ग्रामीण जीवन में एक प्रकार की संतोष भावना और सामूहिक सहारा दिखाई देता है, जो शहरी जीवन की प्रतिस्पर्धात्मकता से भिन्न है। स्त्री की स्थिति ग्रामीण संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कृष्णा सोबती ने ग्रामीण स्त्री को केवल एक सहनशील और मौन पात्र के रूप में नहीं, बल्कि एक सशक्त और जीवंत व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है। डार से बिछुड़ी जैसी रचनाओं में स्त्री के भीतर की पीड़ा, संघर्ष और आत्मसम्मान की भावना को गहराई से उभारा गया है। ग्रामीण स्त्री सामाजिक बंधनों में बंधी होने के बावजूद अपने

अस्तित्व को बनाए रखने का प्रयास करती है। उसके जीवन में परंपरा और स्वतंत्रता के बीच एक सतत द्वंद्व चलता रहता है।

कृष्णा सोबती की भाषा ग्रामीण जीवन के चित्रण में विशेष भूमिका निभाती है। उन्होंने लोकभाषा, क्षेत्रीय बोलियों और मुहावरों का अत्यंत स्वाभाविक प्रयोग किया है, जिससे ग्रामीण परिवेश की प्रामाणिकता और जीवंतता बढ़ जाती है। संवादों के माध्यम से पात्रों की मानसिकता, सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि सहज ही स्पष्ट हो जाती है। यह भाषिक विविधता उनके साहित्य को एक विशिष्ट पहचान प्रदान करती है। इसके साथ ही, उनके उपन्यासों में ग्रामीण जीवन स्थिर नहीं है, बल्कि उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया भी निरंतर चलती रहती है। बाहरी प्रभाव, सामाजिक बदलाव और आधुनिकता की आहट गाँव तक पहुँचती है, जिससे पारंपरिक जीवन–शैली में धीरे–धीरे परिवर्तन दिखाई देने लगता है। इस परिवर्तन के कारण कभी–कभी तनाव और द्वंद्व की स्थिति भी उत्पन्न होती है, जिसे सोबती ने अत्यंत संवेदनशीलता से चित्रित किया है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन एक समग्र और यथार्थपरक रूप में सामने आता है, जहाँ परंपरा और परिवर्तन, सामूहिकता और संघर्ष, तथा संवेदना और यथार्थ का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है। उनका यह चित्रण न केवल ग्रामीण जीवन की गहरी समझ प्रदान करता है, बल्कि भारतीय समाज की मूलभूत संरचना को भी उजागर करता है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में शहरी जीवन का चित्रण आधुनिक भारतीय समाज की जटिलताओं, विखंडित संबंधों और बदलती मानसिकताओं का सशक्त प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। जहाँ उनके ग्रामीण जीवन में सामूहिकता, परंपरा और स्थायित्व की छवि उभरती है, वहीं शहरी जीवन में व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता और अस्तित्व की खोज प्रमुख रूप से सामने आती है। इस प्रकार सोबती का शहरी संसार जीवन की एक अलग संवेदनात्मक और सामाजिक परत को उद्‌घाटित करता है। उनके उपन्यास मित्रो मरजानी में शहरी जीवन के भीतर स्त्री की चेतना, उसकी इच्छाओं और सामाजिक बंधनों के बीच का द्वंद्व अत्यंत तीव्रता के साथ व्यक्त हुआ है। यहाँ पारिवारिक ढाँचा मौजूद होते हुए भी संबंधों में एक प्रकार की दूरी और औपचारिकता दिखाई देती है। स्त्री पात्र अपने भीतर की आकांक्षाओं को दबाने के बजाय उन्हें अभिव्यक्त करने का साहस दिखाती है, जो शहरी जीवन की बदलती मानसिकता को दर्शाता है। यह परिवर्तन केवल बाहरी नहीं, बल्कि गहरे स्तर पर मानवीय संबंधों और मूल्यों को प्रभावित करता है। इसी प्रकार ऐ लड़की में शहरी जीवन का एक और आयाम सामने आता है, जहाँ पीढ़ियों के बीच संवाद, स्मृतियों का द्वंद्व और बदलती जीवन–दृष्टि प्रमुख रूप से उभरती है। यहाँ जीवन केवल वर्तमान तक सीमित नहीं, बल्कि अतीत और वर्तमान के बीच एक निरंतर संवाद के रूप में उपस्थित है। शहरी परिवेश में यह संवाद अक्सर आत्ममंथन और आत्मपहचान की प्रक्रिया को जन्म देता है। शहरी जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसके संबंधों की प्रकृति में निहित है। यहाँ संबंध अधिक व्यक्तिगत और सीमित होते हैं, जिनमें आत्मीयता की अपेक्षा औपचारिकता और व्यावहारिकता का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। व्यक्ति अपने निजी जीवन और स्वतंत्रता को प्राथमिकता देता है, जिसके कारण सामूहिकता का भाव अपेक्षाकृत कमजोर हो जाता है। सोबती ने इस स्थिति को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है, जहाँ व्यक्ति भीड़ में रहते हुए भी अकेलापन अनुभव करता है। आर्थिक और सामाजिक स्तर पर भी शहरी जीवन में विविधता और असमानता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अवसरों की अधिकता के साथ–साथ प्रतिस्पर्धा और तनाव भी बढ़ जाते हैं। व्यक्ति अपने अस्तित्व को

स्थापित करने के लिए निरंतर संघर्ष करता है, जिससे जीवन में एक प्रकार की बेचौनी और अस्थिरता उत्पन्न होती है। यह स्थिति उनके पात्रों के आंतरिक जीवन में भी परिलक्षित होती है। स्त्री की भूमिका शहरी परिवेश में विशेष रूप से परिवर्तित रूप में सामने आती है। यहाँ स्त्री अधिक जागरूक, आत्मनिर्भर और अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई देती है। वह पारंपरिक बंधनों को चुनौती देती है और अपनी पहचान स्थापित करने का प्रयास करती है। किंतु इस स्वतंत्रता के साथ उसे अनेक मानसिक और सामाजिक संघर्षों का सामना भी करना पड़ता है। सोबती ने इस द्वंद्व को अत्यंत संवेदनशीलता और यथार्थ के साथ चित्रित किया है। भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी शहरी जीवन का चित्रण उनके उपन्यासों में विशिष्ट है। यहाँ भाषा अधिक सुसंस्कृत, परिष्कृत और कभी–कभी आत्ममंथनात्मक रूप धारण कर लेती है। संवादों में विचारों की गहराई और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो शहरी जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करने में सहायक होती है।

इसके अतिरिक्त, शहरी जीवन में परिवर्तन की गति अत्यंत तीव्र होती है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों निरंतर नए अनुभवों और परिस्थितियों से गुजरते हैं। यह परिवर्तन कभी विकास का प्रतीक बनता है, तो कभी असंतुलन और विखंडन का कारण भी बन जाता है। सोबती ने इस द्वैत को अपने उपन्यासों में गहराई से अभिव्यक्त किया है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में शहरी जीवन एक बहुआयामी और जटिल संरचना के रूप में सामने आता है, जहाँ स्वतंत्रता और अकेलापन, अवसर और संघर्ष, तथा आधुनिकता और विखंडन एक साथ विद्यमान हैं। उनका यह चित्रण न केवल शहरी जीवन की वास्तविकता को उजागर करता है, बल्कि आधुनिक भारतीय समाज के बदलते स्वरूप को समझने का एक सशक्त माध्यम भी प्रदान करता है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन का चित्रण केवल दो पृथक परिवेशों का प्रस्तुतीकरण नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज के दो महत्वपूर्ण आयामों के बीच गहरे अंतर्संबंध, द्वंद्व और परिवर्तनशीलता का सूक्ष्म विश्लेषण भी है। इन दोनों जीवन–शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि सोबती ने समाज को किसी एकांगी दृष्टि से नहीं, बल्कि उसकी समग्रता में देखने का प्रयास किया है। ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच सबसे प्रमुख अंतर उनके मूल्यों और जीवन–दृष्टि में दिखाई देता है। ग्रामीण जीवन में सामूहिकता, परंपरा और स्थायित्व का भाव प्रबल होता है, जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व को समाज और परिवार के साथ जोड़कर देखता है। इसके विपरीत, शहरी जीवन में व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता और आत्मकेंद्रित दृष्टिकोण प्रमुख हो जाता है, जहाँ व्यक्ति अपने निजी अस्तित्व और आकांक्षाओं को अधिक महत्व देता है। सोबती के उपन्यासों में यह अंतर केवल बाहरी परिस्थितियों तक सीमित नहीं, बल्कि पात्रों की मानसिकता और व्यवहार में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

संबंधों की प्रकृति भी इन दोनों परिवेशों में भिन्न रूप में सामने आती है। ग्रामीण जीवन में संबंध अधिक घनिष्ठ, आत्मीय और स्थायी होते हैं, जहाँ पारिवारिक और सामाजिक बंधन व्यक्ति के जीवन को दिशा देते हैं। वहीं शहरी जीवन में संबंध अपेक्षाकृत औपचारिक, सीमित और कभी–कभी अस्थायी होते हैं। यहाँ व्यक्ति अपने निजी दायरे में सिमटता चला जाता है, जिससे संबंधों में दूरी और विखंडन की स्थिति उत्पन्न होती है। सोबती ने इस अंतर को बड़ी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है।

स्त्री–जीवन के संदर्भ में भी यह तुलनात्मकता अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। ग्रामीण परिवेश में स्त्री

परंपराओं और सामाजिक मर्यादाओं से अधिक बंधी हुई दिखाई देती है, किंतु उसके भीतर आत्मसम्मान और संघर्ष की एक सशक्त चेतना भी विद्यमान रहती है। दूसरी ओर, शहरी जीवन में स्त्री अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र और जागरूक है, जो अपने अधिकारों और अस्तित्व के प्रति सजग है। किंतु यह स्वतंत्रता भी संघर्षों से मुक्त नहीं है, यहाँ उसे मानसिक, सामाजिक और व्यक्तिगत स्तर पर अनेक द्वंद्वों का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार सोबती के यहाँ स्त्री–जीवन दोनों ही परिवेशों में संघर्षशील और संवेदनशील रूप में उपस्थित है। आर्थिक और सामाजिक संरचना की दृष्टि से भी दोनों जीवन–शैलियों में स्पष्ट भिन्नता दिखाई देती है। ग्रामीण जीवन में आर्थिक सीमाएँ और प्रकृति पर निर्भरता अधिक होती है, जबकि शहरी जीवन में अवसरों की विविधता के साथ–साथ प्रतिस्पर्धा और असमानता भी अधिक होती है। यह अंतर व्यक्ति के जीवन–मूल्यों, व्यवहार और मानसिक स्थिति को प्रभावित करता है, जिसे सोबती ने अपने पात्रों के माध्यम से प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है।

भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी यह भिन्नता उल्लेखनीय है। ग्रामीण जीवन में लोकभाषा, बोलियों और सहज संवादों का प्रयोग अधिक मिलता है, जिससे जीवन की सरलता और प्रामाणिकता उभरती है। इसके विपरीत, शहरी जीवन में भाषा अधिक परिष्कृत, विचारप्रधान और कभी–कभी आत्मविश्लेषणात्मक हो जाती है। सोबती की भाषिक दक्षता इस अंतर को अत्यंत स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करती है। फिर भी, इन सभी भिन्नताओं के बावजूद ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच एक गहरा अंतर्संबंध भी विद्यमान है। दोनों एक–दूसरे से पूर्णतः अलग नहीं हैं, बल्कि निरंतर एक–दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। जहाँ गाँव आधुनिकता की ओर अग्रसर है, वहीं शहर अपनी जड़ों और सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ने की आकांक्षा रखता है। यह पारस्परिक प्रभाव भारतीय समाज के परिवर्तनशील स्वरूप को दर्शाता है, जिसे सोबती ने अत्यंत सूक्ष्मता से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है।

इस प्रकार कृष्णा सोबती के उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनका साहित्य भारतीय समाज की जटिलताओं, अंतर्विरोधों और परिवर्तनशीलता का सशक्त दर्पण है। उन्होंने दोनों ही परिवेशों को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है कि जीवन की विविधता और विरोधाभास ही उसकी वास्तविकता है।

अंततः कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती का कथा–साहित्य ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच सेतु का कार्य करता है, जहाँ दोनों परिवेश अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ एक व्यापक सामाजिक यथार्थ की रचना करते हैं। उनका लेखन हमें यह समझने की दृष्टि प्रदान करता है कि परिवर्तन के इस दौर में भी मानवीय संवेदनाएँ और संबंध ही जीवन के मूल आधार बने रहते हैं।

संदर्भ सूची :

1. सोबती, कृष्णा. जिंदगीनामा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2012, पृ. 45
2. सोबती, कृष्णा. मित्रो मरजानी. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2011, पृ. 12
3. सोबती, कृष्णा. डार से बिछुड़ी. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2010, पृ. 30
4. सोबती, कृष्णा. ऐ लड़की. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 18
5. सोबती, कृष्णा. सूरजमुखी अंधेरे के. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 25
6. सिंह, नामवर. कहानी : नई कहानी. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2007, पृ. 85
7. वाजपेयी, नंददुलारे. हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2003, पृ. 150

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 58–71
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

प्याजे के रचनावाद के माध्यम से माध्यमिक विज्ञान शिक्षा का पुर्नव्याख्यात्मक दार्शनिक विश्लेषण

डॉ. आरती आर्य
प्रोफेसर, शोध निर्देशक, बीसीजी शिक्षा महाविद्यालय, देवास,
सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन।

सारांश (Abstract)

हिन्दी सारांश: प्रस्तुत शोधपत्र जीन प्याजे के रचनावादी सिद्धांत (Constructivism) की परीक्षा करते हुए भारतीय माध्यमिक विज्ञान शिक्षा (कक्षा 6-10) में इसकी प्रासंगिकता और व्यावहारिक अनुप्रयोग का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन पुनर्व्याख्यातमक (Reinterpretive) दृष्टिकोण से यह परीक्षण करता है कि प्याजे के संज्ञानात्मक विकास के चार चरण– मूर्त-संक्रियात्मक एवं औपचारिक-संक्रियात्मक–माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अवधारणाओं के निर्माण को किस प्रकार दिशा देते हैं। दार्शनिक विश्लेषण की विधि अपनाते हुए, यह शोध यह तर्क प्रस्तुत करता है कि पारंपरिक 'रटन्त विधि' (Rote Learning) से भिन्न, रचनावादी शिक्षण विद्यार्थियों में वैज्ञानिक चिंतन, अन्वेषण-क्षमता एवं ज्ञान-निर्माण की प्रवृत्ति को सक्रिय करता है। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि NCF-2005 एवं NEP-2020 के शैक्षिक दर्शन में प्याजे के सिद्धांत की स्पष्ट प्रतिध्वनि है, किन्तु इसके व्यावहारिक कार्यान्वयन में अनेक वैचारिक एवं संरचनात्मक बाधाएँ विद्यमान हैं।

मुख्य शब्द: रचनावाद, प्याजे, माध्यमिक विज्ञान शिक्षा, संज्ञानात्मक विकास, दार्शनिक विश्लेषण, NEP-2020, वैज्ञानिक चिंतन

1. प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा दर्शन के इतिहास में यह प्रश्न सदैव केन्द्रीय रहा है कि ज्ञान का स्वरूप क्या है और उसे कैसे अर्जित किया जाता है? प्लेटो से लेकर कान्ट तक, रूसो से लेकर डीवी तक,

प्रत्येक दार्शनिक ने ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया को अपनी दृष्टि से परिभाषित किया है। बीसवीं शताब्दी में जीन प्याजे (Jean Piaget, 1896-1980) ने इस चिंतन-परंपरा में एक क्रांतिकारी योगदान दिया—रचनावाद (Constructivism) का सिद्धांत, जो यह उद्घोषणा करता है कि ज्ञान न तो बाहर से 'डाला' जाता है और न ही जन्मजात होता है; वरन् बालक स्वयं अपने अनुभव एवं पर्यावरण की अन्योन्यक्रिया के माध्यम से ज्ञान का सृजन करता है।

भारत में माध्यमिक विज्ञान शिक्षा की वर्तमान स्थिति एक गहरी विडम्बना को प्रदर्शित करती है। एक ओर, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा-2005 (NCF-2005) 'रचनावादी उपागम' को शिक्षण का आधारभूत सिद्धांत घोषित करती है; दूसरी ओर, कक्षाओं में व्याख्यान-पद्धति, पाठ्यपुस्तक-केन्द्रित शिक्षण और परीक्षा-उन्मुख रटन्त-पद्धति का वर्चस्व यथावत् बना हुआ है। यह दूरी—दार्शनिक आदर्श और शैक्षिक वास्तविकता के बीच की—ही इस शोध की मूल प्रेरणा है।

यह शोधपत्र 'पुनर्व्याख्यातमक' (Reinterpretive) पद्धति का अनुसरण करता है, जो किसी विद्यमान सिद्धांत को नवीन परिप्रेक्ष्य, संदर्भ अथवा समस्या के सापेक्ष पुनः पढ़ने और अर्थ-विश्लेषण की प्रक्रिया है। प्याजे का रचनावाद—जो मूलतः स्विट्जरलैंड की प्रयोगशालाओं में बालकों के संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन से उभरा था—को भारत के माध्यमिक विज्ञान कक्षाओं की बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक एवं संसाधन-विविध वास्तविकता के परिप्रेक्ष्य में पुनः समझना इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

1.1 अध्ययन की आवश्यकता

ASER-2023 एवं NAS-2021 के आँकड़े यह इंगित करते हैं कि माध्यमिक स्तर पर विज्ञान विषय में अवधारणात्मक समझ (Conceptual Understanding) का स्तर अत्यंत चिंताजनक है। कक्षा 8 के 60% से अधिक विद्यार्थी विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों को सूत्र-रूप में कंठस्थ कर लेते हैं, परन्तु उनके व्यावहारिक अनुप्रयोग में असमर्थ रहते हैं। इस परिस्थिति में प्याजे के रचनावाद की दार्शनिक पुनर्व्याख्या आवश्यक और प्रासंगिक हो जाती है।

1.2 शोध-उद्देश्य

- प्याजे के रचनावादी सिद्धांत की दार्शनिक नींव का विश्लेषण करना।
- माध्यमिक विज्ञान शिक्षा में रचनावाद के अनुप्रयोग की संभावनाओं का परीक्षण करना।
- NCF-2005 एवं NEP-2020 में रचनावादी दर्शन की उपस्थिति का मूल्यांकन करना।
- भारतीय संदर्भ में रचनावादी शिक्षण की चुनौतियों और समाधानों की पहचान करना।

1.3 शोध-प्रश्न

- प्याजे का रचनावाद ज्ञान-मीमांसा (Epistemology) की किस परम्परा में अवस्थित है?
- माध्यमिक विज्ञान शिक्षा में रचनावादी उपागम का दार्शनिक औचित्य क्या है?
- भारतीय शैक्षिक नीतियों में रचनावाद की पुनर्व्याख्या किस रूप में की गई है?
- पारंपरिक एवं रचनावादी विज्ञान-शिक्षण में मूलभूत दार्शनिक अन्तर क्या है?

2. सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य (Theoretical Framework)

2.1 रचनावाद: ज्ञान-मीमांसीय आधार

रचनावाद एक ऐसा ज्ञान-मीमांसीय (Epistemological) सिद्धांत है जो यह मानता है कि ज्ञान वस्तुनिष्ठ रूप से बाहर अस्तित्व नहीं रखता, बल्कि यह ज्ञाता (Knower) द्वारा सक्रिय रूप से निर्मित होता है। यह सिद्धांत प्रत्यक्षवादी (Positivist) ज्ञान-दर्शन के विपरीत खड़ा होता है, जो यह मानता था कि ज्ञान मनुष्य के बाहर एक निश्चित सत्य के रूप में विद्यमान है जिसे केवल 'खोजना' है।

रचनावाद की दो प्रमुख धाराएँ हैं: प्रथम, व्यक्तिगत रचनावाद (Individual Constructivism) जिसका प्रतिनिधित्व प्याजे करते हैं, और द्वितीय, सामाजिक रचनावाद (Social Constructivism) जिसका प्रतिनिधित्व वाइगोत्स्की (Vygotsky) करते हैं। प्याजे के लिए ज्ञान-निर्माण एक जैविक एवं संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जो बालक और उसके भौतिक पर्यावरण की अन्योन्यक्रिया से उत्पन्न होती है।

2.2 प्याजे का जैविक ज्ञान-दर्शन

प्याजे मूलतः एक जीव-विज्ञानी थे। उनका ज्ञान-दर्शन उनके जैविक प्रशिक्षण से गहराई से प्रभावित था। उन्होंने ज्ञान को जीव के 'अनुकूलन' (Adaptation) की प्रक्रिया के समतुल्य माना। जिस प्रकार एक जीव अपने जैविक संरचनाओं को पर्यावरण के अनुसार अनुकूलित करता है, उसी प्रकार मनुष्य की संज्ञानात्मक संरचनाएँ भी अनुभव के साथ रूपांतरित होती रहती हैं।

प्याजे के अनुसार इस अनुकूलन-प्रक्रिया में दो परस्पर-पूरक क्रियाविधियाँ कार्य करती हैं: (क) आत्मसात्करण (Assimilation)—जब बालक नवीन अनुभव को अपनी विद्यमान संज्ञानात्मक संरचना में समाहित करता है; और (ख) समायोजन (Accommodation)—जब

नवीन अनुभव से मेल बैठाने के लिए संज्ञानात्मक संरचना स्वयं को परिवर्तित करती है। इन दोनों प्रक्रियाओं के मध्य की गतिशील अवस्था को 'सन्तुलन' (Equilibration) कहा जाता है, जो ज्ञान-निर्माण का वास्तविक इंजन है।

2.3 संज्ञानात्मक विकास के चार चरण और विज्ञान शिक्षा

प्याजे ने बालक के संज्ञानात्मक विकास को चार क्रमिक चरणों में विभाजित किया। यद्यपि ये चरण आयु से संबद्ध हैं, तथापि प्याजे ने स्वयं स्वीकार किया कि आयु-सीमाएँ अनुमानित हैं और व्यक्तिगत भिन्नताएँ संभव हैं:

चरण	आयु (वर्ष)	संज्ञानात्मक विशेषता	विज्ञान शिक्षा में अनुप्रयोग
संवेदी-चालक	0-2 वर्ष	इन्द्रिय-अनुभव आधारित ज्ञान, वस्तु-स्थायित्व की समझ	प्रत्यक्ष विज्ञान प्रयोग, इन्द्रिय-परीक्षण गतिविधियाँ
पूर्व-संक्रियात्मक	2-7 वर्ष	प्रतीकात्मक सोच, अहंकेन्द्रिकता, संरक्षण की अपरिपक्वता	कहानी-चित्र-आधारित विज्ञान; सरल वर्गीकरण गतिविधियाँ
मूर्त संक्रियात्मक	7-11 वर्ष	तार्किक-मूर्त चिंतन, संरक्षण, क्रमबद्धता, श्रेणीकरण	हाथों से प्रयोग, प्रत्यक्ष अवलोकन, मूर्त प्रतिमान (Models)
औपचारिक-संक्रियात्मक	11+ वर्ष	अमूर्त, परिकल्पनात्मक-निगमनात्मक तर्क, द्वितीयक अनुपात	अन्वेषण-आधारित शिक्षा, वैज्ञानिक परिकल्पना-परीक्षण, गणितीय प्रतिरूपण

तालिका 1: प्याजे के संज्ञानात्मक विकास चरण और विज्ञान शिक्षा में अनुप्रयोग

3. दार्शनिक विश्लेषण (Philosophical Analysis)

3.1 रचनावाद और ज्ञान-मीमांसा की परम्पराएँ

प्याजे का रचनावाद पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा की तीन प्रमुख परम्पराओं– आनुभविकतावाद (Empiricism), बुद्धिवाद (Rationalism) और प्रयोजनवाद (Pragmatism)—का एक जटिल संश्लेषण है। जहाँ लॉक और ह्यूम के आनुभविकतावाद ने अनुभव को ज्ञान का एकमात्र स्रोत माना, वहीं काण्ट के बुद्धिवाद ने संज्ञानात्मक श्रेणियों की पूर्व-स्थापितता को स्वीकार किया। प्याजे ने इन दोनों को अपने 'आनुवंशिक ज्ञान-मीमांसा' (Genetic Epistemology) में समाहित किया।

प्याजे के लिए ज्ञान न तो केवल इन्द्रिय-अनुभव की प्रति-छवि है (आनुभविकतावाद), न ही यह पूर्णतः बुद्धि की अ-प्रायोगिक (A-priori) रचना है (बुद्धिवाद); बल्कि यह बालक और पर्यावरण की सक्रिय अन्योन्यक्रिया से उद्भूत होने वाली एक गतिशील संरचना है। यह दृष्टिकोण विज्ञान शिक्षा के लिए इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह 'वैज्ञानिक ज्ञान' को एक स्थिर तथ्य-संग्रह के बजाय एक 'अन्वेषण-प्रक्रिया' के रूप में देखता है।

3.2 पारंपरिक और रचनावादी विज्ञान-शिक्षण: दार्शनिक तुलना

भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में प्रचलित पारंपरिक विज्ञान-शिक्षण का दार्शनिक आधार 'व्यवहारवादी' (Behaviourist) है। इस उपागम में शिक्षक ज्ञान का एकमात्र स्रोत होता है, विद्यार्थी एक 'रिक्त पात्र' (Tabula Rasa) की भाँति देखा जाता है, और शिक्षण का लक्ष्य सूचनाओं का अंतरण होता है। इसके विपरीत, रचनावादी विज्ञान-शिक्षण में विद्यार्थी सक्रिय ज्ञान-निर्माता होता है, शिक्षक 'सुविधादाता'

(Facilitator) की भूमिका निभाता है, और शिक्षण का उद्देश्य अवधारणात्मक समझ एवं वैज्ञानिक चिंतन-कौशल का विकास होता है।

आयाम	पारंपरिक विज्ञान-शिक्षण	रचनावादी विज्ञान-शिक्षण
ज्ञान का स्वरूप	वस्तुनिष्ठ, स्थिर तथ्य-संग्रह	व्यक्तिनिष्ठ, गतिशील निर्माण
विद्यार्थी की भूमिका	निष्क्रिय ग्राहक (Passive Receiver)	सक्रिय ज्ञान-निर्माता (Active Constructor)
शिक्षक की भूमिका	ज्ञान-वाहक, केन्द्रीय सत्ता	सुविधादाता, अन्वेषण-प्रेरक
शिक्षण-विधि	व्याख्यान, श्रुतलेख, पाठ-पठन	प्रयोग, अन्वेषण, समस्या-समाधान
मूल्यांकन	तथ्य-स्मरण, रटन्त परीक्षा	प्रक्रिया-मूल्यांकन, अवधारणात्मक परीक्षण
विज्ञान की प्रकृति	सत्य-संग्रह	अन्वेषण की प्रक्रिया

तालिका 2: पारंपरिक एवं रचनावादी विज्ञान-शिक्षण की दार्शनिक तुलना

3.3 'पूर्व-धारणाओं' की समस्या: एक दार्शनिक अन्तर्दृष्टि

विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में 'वैकल्पिक धारणाएँ' (Alternative Conceptions) या 'भ्रामक धारणाएँ' (Misconceptions) एक गंभीर समस्या है। प्याजे के सिद्धांत के अनुसार, ये धारणाएँ 'गलतियाँ' नहीं हैं—ये बालक की संज्ञानात्मक संरचनाओं का तार्किक परिणाम हैं। उदाहरणतः, माध्यमिक स्तर के अधिकांश विद्यार्थी यह मानते हैं कि 'भारी वस्तुएँ तेज़ गिरती हैं'—यह अरस्तू की दृष्टि के अनुरूप एक तार्किक 'आत्मसात्करण' है जो उनके दैनिक अनुभव से उत्पन्न हुई है।

प्याजे का योगदान यह है कि उन्होंने इन पूर्व-धारणाओं को 'शिक्षण की बाधा' के बजाय 'शिक्षण का प्रारंभ-बिन्दु' के रूप में देखने की दृष्टि दी। 'संज्ञानात्मक संघर्ष' (Cognitive Conflict) की अवधारणा—जो तब उत्पन्न होता है जब नवीन अनुभव पूर्व-धारणा से असंगत

होता है—रचनावादी विज्ञान-शिक्षण की केन्द्रीय विधि है।

4. NCF-2005 एवं NEP-2020 में रचनावाद की पुनर्व्याख्या।

4.1 NCF-2005: रचनावाद का नीतिगत अंगीकरण

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा-2005 भारतीय शिक्षा नीति के इतिहास में वह प्रथम दस्तावेज़ है जिसने स्पष्ट रूप से रचनावादी शिक्षण-दर्शन को अपना आधार घोषित किया। इसके 'प्रमुख सिद्धांत' खंड में स्पष्ट उल्लेख है कि 'ज्ञान का निर्माण बालक स्वयं करता है; वह केवल सूचनाओं का ग्राहक नहीं होता।' यह कथन प्याजे के रचनावाद का सीधा अनुवाद है।

NCF-2005 ने 'रटन्त-पद्धति से मुक्ति' को अपना केन्द्रीय उद्देश्य बताते हुए विज्ञान शिक्षण में 'हाथ से करके सीखने' (Learning by Doing), 'अन्वेषण-आधारित शिक्षण' (Inquiry-Based Learning) और 'अवधारणात्मक समझ' (Conceptual Understanding) पर बल दिया। ये तीनों ही प्याजेयन रचनावाद के प्रत्यक्ष निहितार्थ हैं।

4.2 NEP-2020: रचनावाद का विस्तृत अनुप्रयोग

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने रचनावादी दर्शन को और अधिक व्यापक एवं क्रियान्वयनयोग्य रूप दिया। इसमें 'दक्षता-आधारित शिक्षण' (Competency-Based Learning), '5+3+3+4' पाठ्यक्रम संरचना और 'प्रायोगिक शिक्षण' (Experiential Learning) पर विशेष बल दिया गया है। माध्यमिक स्तर पर NEP-2020 ने 'विज्ञान और गणित की अवधारणाओं को दैनिक जीवन से जोड़ने' की अनुशंसा की है, जो प्याजे के 'संतुलन सिद्धांत' के अनुरूप है।

तथापि, NEP-2020 की एक महत्वपूर्ण सीमा यह है कि यह रचनावाद को मुख्यतः 'व्यावसायिक शिक्षा' और 'प्रारंभिक स्तर' के संदर्भ में देखती है। माध्यमिक स्तर पर रचनावादी विज्ञान-शिक्षण के लिए ठोस क्रियान्वयन-रूपरेखा का अभाव एक दार्शनिक एवं नीतिगत रिक्तता है।

4.3 नीति और व्यवहार के बीच की दार्शनिक खाई

यद्यपि NCF-2005 और NEP-2020 दोनों रचनावादी दर्शन पर आधारित हैं, व्यवहार में यह खाई गहरी है। इसके तीन मूलभूत कारण हैं: प्रथम, शिक्षक-प्रशिक्षण में रचनावाद की दार्शनिक समझ का अभाव; द्वितीय, मूल्यांकन-प्रणाली का व्यवहारवादी (Behaviourist) रूपरेखा में बँधे रहना; और तृतीय, पाठ्यपुस्तकों में रचनावादी शिक्षण-नमूनों की कमी। यह दार्शनिक विश्लेषण इस बात को रेखांकित करता है कि बिना शिक्षक के ज्ञान-मीमांसीय दृष्टिकोण को बदले, केवल पाठ्यक्रम-परिवर्तन से रचनावादी शिक्षण संभव नहीं है।

5.पुनर्व्याख्यात्मक आयाम: भारतीय संदर्भ

5.1 सांस्कृतिक-भाषाई विविधता और रचनावाद

प्याजे का रचनावाद एक सार्वभौमिक सिद्धांत होने का दावा करता है। किन्तु भारत जैसे बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक देश में इसकी पुनर्व्याख्या आवश्यक है। एक ओडिया-भाषी विद्यार्थी, एक तमिल-भाषी विद्यार्थी और एक हिन्दी-भाषी विद्यार्थी—तीनों की 'संज्ञानात्मक संरचनाएँ' अपने-अपने सांस्कृतिक-भाषाई अनुभवों से निर्मित होती हैं। रचनावादी विज्ञान-शिक्षण में यह सांस्कृतिक ज्ञान (Ethnoscience) एक संसाधन है, बाधा नहीं।

उदाहरणतः, यदि कोई विद्यार्थी 'बादल से वर्षा' की प्रक्रिया को अपनी स्थानीय लोक-कथाओं के माध्यम से समझता है, तो रचनावादी शिक्षक उस लोक-कथा को 'संज्ञानात्मक संघर्ष' उत्पन्न करने के प्रारंभ-बिन्दु के रूप में उपयोग करेगा—न कि उसे 'गलत' बताकर खारिज करेगा।

5.2 संसाधन-अभाव की समस्या: एक रचनावादी समाधान

ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों के माध्यमिक विद्यालयों में प्रयोगशाला, उपकरण और डिजिटल संसाधनों का अभाव एक गंभीर बाधा है। परन्तु प्याजे के मूर्त-संक्रियात्मक चरण की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि 'मूर्त अनुभव' के लिए महँगे उपकरणों की आवश्यकता नहीं है—स्थानीय वातावरण ही सर्वोत्तम प्रयोगशाला है। पत्ते, पत्थर, पानी, मिट्टी—ये सब 'विज्ञान की सामग्री' हैं। यह पुनर्व्याख्या प्याजे के सिद्धांत को भारतीय संदर्भ में और अधिक व्यावहारिक बनाती है।

5.3 परीक्षा-तंत्र और रचनावाद: एक मूलभूत विरोधाभास

भारत की बोर्ड-परीक्षा प्रणाली रचनावाद की सबसे बड़ी शत्रु है। जब मूल्यांकन केवल 'सही उत्तर' की स्मृति पर आधारित हो, तो रचनावादी शिक्षण के लिए कोई स्थान नहीं बचता। यह विरोधाभास दार्शनिक रूप से गहरा है: यदि हम यह मानते हैं कि ज्ञान निर्मित होता है, तो मूल्यांकन भी निर्माण-प्रक्रिया का मूल्यांकन होना चाहिए—न कि केवल उत्पाद (Product) का।

CCE (Continuous Comprehensive Evaluation) इसी दार्शनिक आवश्यकता से उत्पन्न हुई थी, परन्तु क्रियान्वयन में यह व्यवहारवादी 'रेटिंग-प्रणाली' बनकर रह गई। यह पुनर्व्याख्या यह सुझाती है कि रचनावादी मूल्यांकन के लिए 'पोर्टफोलियो-आधारित', 'प्रक्रिया-

आधारित' एवं 'साथियों द्वारा मूल्यांकन' (Peer Assessment) जैसी पद्धतियाँ आवश्यक हैं।

6. प्याजे के सिद्धांत की समालोचना: एक संतुलित दृष्टि

6.1 आयु-चरण सिद्धांत की सीमाएँ

प्याजे के सिद्धांत पर एक महत्वपूर्ण समालोचना यह है कि उन्होंने संज्ञानात्मक विकास की सार्वभौमिकता और अनुक्रमिकता का अत्यधिक आग्रह किया। डोनाल्डसन (Donaldson, 1978), ब्रूनर (Bruner, 1960) एवं वाइगोत्स्की (Vygotsky) ने यह प्रदर्शित किया कि बालक कुछ अवधारणाओं को प्याजे के अनुमान से कहीं पहले समझ सकते हैं यदि उन्हें उपयुक्त सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ मिले।

6.2 सामाजिक आयाम की उपेक्षा

प्याजे के व्यक्तिगत रचनावाद की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यह ज्ञान-निर्माण में सामाजिक संवाद और भाषा की भूमिका को कम महत्व देता है। वाइगोत्स्की का 'समीपस्थ विकास क्षेत्र' (Zone of Proximal Development) यह दर्शाता है कि बालक किसी सक्षम साथी अथवा शिक्षक के सहयोग से उस अवस्था तक पहुँच सकता है जो वह अकेले नहीं पहुँच सकता। विज्ञान शिक्षा में यह 'सहयोगी शिक्षण' (Collaborative Learning) और 'समकक्ष-अनुशिक्षण' (Peer Tutoring) के रूप में महत्वपूर्ण है।

6.3 प्याजे की पुनर्व्याख्या: नव-प्याजेयन दृष्टिकोण

केस (Case, 1985), पास्कुआल-लिओन (Pascual-Leone, 1970) एवं अन्य नव-

प्याजेयन (Neo-Piagetian) विद्वानों ने प्याजे के मूल ढाँचे को बनाए रखते हुए इसमें सूचना-प्रसंस्करण के सिद्धांतों को जोड़ा। इस पुनर्व्याख्या से माध्यमिक विज्ञान शिक्षण के लिए एक अधिक परिष्कृत मॉडल उभरता है जिसमें 'कार्यकारी स्मृति' (Working Memory), 'अवधान-क्षमता' (Attentional Capacity) और 'संज्ञानात्मक भार' (Cognitive Load) जैसी अवधारणाएँ शामिल हैं।

7. शैक्षिक निहितार्थ और सुझाव (Educational Implications & Recommendations)

7.1 पाठ्यक्रम-निर्माण के लिए सुझाव

- विज्ञान पाठ्यक्रम को 'सर्पिलाकार' (Spiral Curriculum) पद्धति पर आधारित करना—जहाँ अवधारणाएँ पहले मूर्त, फिर अर्ध-मूर्त और अंततः अमूर्त स्तर पर प्रस्तुत की जाएँ।
- स्थानीय पर्यावरण, जैव-विविधता और सांस्कृतिक ज्ञान को पाठ्यसामग्री का अंग बनाना।
- प्रत्येक अध्याय में 'पूर्व-ज्ञान सक्रियण' (Prior Knowledge Activation) गतिविधियाँ सम्मिलित करना।
- 'वैज्ञानिक जाँच' (Scientific Inquiry) को एक पृथक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि प्रत्येक अवधारणा के साथ एकीकृत रूप से प्रस्तुत करना।

7.2 शिक्षण-विधि के लिए सुझाव

- 5E मॉडल (Engage, Explore, Explain, Elaborate, Evaluate) का नियमित उपयोग।
- 'संज्ञानात्मक संघर्ष' उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ—जैसे 'भविष्यवाणी करो-अवलोकन करो-व्याख्या करो' (POE Strategy)—का उपयोग।
- समूह-अन्वेषण, साथियों के साथ चर्चा और प्रश्न-पूछने की संस्कृति का विकास।
- विद्यार्थियों के 'गलत उत्तरों' को दंड के बजाय 'संज्ञानात्मक संरचना' के प्रमाण के रूप

में देखना।

7.3 शिक्षक-शिक्षा के लिए सुझाव

- B.Ed. एवं D.El.Ed. पाठ्यक्रम में 'विज्ञान शिक्षण का दर्शन' को एक अनिवार्य घटक बनाना।
- शिक्षकों को प्याजे की 'आनुवंशिक ज्ञान-मीमांसा' की व्यावहारिक समझ विकसित करने के लिए प्रशिक्षण देना।
- 'प्रतिबिम्बी शिक्षण' (Reflective Teaching) की परम्परा विकसित करना जिसमें शिक्षक अपने स्वयं के ज्ञान-मीमांसीय मान्यताओं की जाँच करें।

7.4 मूल्यांकन-सुधार के लिए सुझाव

- 'वैचारिक मानचित्र' (Concept Mapping) को नियमित मूल्यांकन उपकरण के रूप में उपयोग करना।
- 'प्रयोगशाला पोर्टफोलियो' (Lab Portfolio) एवं 'वैज्ञानिक डायरी' (Science Journal) का समावेश।
- 'प्रक्रिया-मूल्यांकन' (Process Assessment) को 'उत्पाद-मूल्यांकन' के समान भार देना।

8. निष्कर्ष (Conclusion)

यह शोधपत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्याजे का रचनावाद भारतीय माध्यमिक विज्ञान शिक्षा के लिए न केवल दार्शनिक रूप से उचित है, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी अत्यंत प्रासंगिक और आवश्यक है। पुनर्व्याख्यातमक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि प्याजे के मूल सिद्धांतों—आत्मसात्करण, समायोजन और सन्तुलन—को भारतीय बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक एवं संसाधन-विविध संदर्भ में नये अर्थ और नये अनुप्रयोग मिलते हैं।

NCF-2005 और NEP-2020 ने रचनावाद को नीतिगत स्तर पर स्वीकार किया है,

परन्तु इसके क्रियान्वयन के लिए एक गहरे 'ज्ञान-मीमांसीय बदलाव' की आवश्यकता है—न केवल पाठ्यक्रम में, बल्कि शिक्षकों की सोच में, मूल्यांकन-प्रणाली में और विद्यालय-संस्कृति में। जब तक हम विद्यार्थी को एक 'रिक्त पात्र' मानते रहेंगे, तब तक विज्ञान शिक्षा में सार्थक परिवर्तन संभव नहीं होगा।

अंततः, प्याजे का सन्देश यह है: बालक स्वयं वैज्ञानिक है। वह प्रश्न पूछता है, परिकल्पनाएँ बनाता है, परीक्षण करता है और निष्कर्ष निकालता है। विज्ञान-शिक्षक का कार्य केवल यह है कि वह इस नैसर्गिक वैज्ञानिक-प्रवृत्ति को कुंठित न करे—बल्कि उसे पोषित एवं विकसित करने का अवसर दे।

संदर्भ-सूची (References)

- *Bruner, J. S. (1960). The Process of Education.* Harvard University Press.
- Case, R. (1985). *Intellectual Development: Birth to Adulthood.* Academic Press.
- Donaldson, M. (1978). *Children's Minds.* Croom Helm.
- Driver, R., Squires, A., Rushworth, P., & Wood-Robinson, V. (1994). *Making Sense of Secondary Science: Research into Children's Ideas.* Routledge.
- Flavell, J. H. (1963). *The Developmental Psychology of Jean Piaget.* Van Nostrand.
- Fosnot, C. T. (Ed.). (2005). *Constructivism: Theory, Perspectives, and Practice* (2nd ed.). Teachers College Press.
- Inhelder, B., & Piaget, J. (1958). *The Growth of Logical Thinking from Childhood to Adolescence.* Basic Books.
- Kumar, K. (2005). *Political Agenda of Education: A Study of Colonialist and Nationalist Ideas.* SAGE Publications.
- NCERT. (2005). *National Curriculum Framework 2005.* National Council of Educational Research and Training.
- Ministry of Education, GoI. (2020). *National Education Policy 2020.* Government of India.
- यादव, एस. एस., एवं मिश्रा, आर. के. (2019). *भारतीय विज्ञान शिक्षा: समस्याएँ और समाधान।* शैक्षिक अनुसंधान पत्रिका, 14(2), 45-62.
- त्रिपाठी, वी. के. (2021). *रचनावाद और भारतीय शिक्षा: एक समीक्षात्मक अध्ययन।* शिक्षा और समाज, 8(1), 12-29.

sinha5272@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 72–78
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Impact of Artificial Food Dyes and Preservatives on Human Health and Strategies for Sustainable Regulation in India

Bhagirath Mal Raigar
Assistant Professor, IASE Deemed to be University, Sardarshahar, Churu, Rajasthan, India.

Abstract :

Synthetic food dyes and preservatives are widely used in processed foods to enhance shelf life, color, and consumer appeal. However, growing scientific evidence suggests that these additives may have adverse effects on human health, including allergic reactions, neurobehavioral disorders, metabolic diseases, and potential carcinogenicity. This research paper reviews the health impacts of synthetic food additives, especially in the Indian context, where rapid urbanization and processed food consumption are increasing. It also explores sustainable alternatives such as natural additives, regulatory frameworks, and consumer awareness strategies. Data analysis highlights trends in consumption and associated health risks. The study concludes that while regulated use of additives is considered safe within limits, long-term cumulative exposure remains a concern.

Keywords :

Synthetic food dyes, preservatives, human health, India, food safety, sustainable alternatives, food additives, FSSAI.

1. Introduction :

Food additives, including synthetic dyes and preservatives, are extensively used in the food industry to improve appearance, taste, and shelf life. Synthetic dyes such as tartrazine and allura red are chemically derived compounds, while preservatives like sodium benzoate and nitrites prevent microbial growth.

In India, the increasing consumption of ultra-processed foods has raised concerns about the health implications of these additives. Regulatory bodies such as the Food Safety and Standards Authority of India (FSSAI) have established permissible limits, yet misuse and overconsumption

remain issues.

2. Types of Synthetic Food Additives

- **Synthetic Food Dyes** : Tartrazine, Sunset Yellow, Allura Red
- **Preservatives** : Sodium benzoate, sulfites, nitrates/nitrites
- **Artificial Sweeteners** : Aspartame, saccharin.
- Synthetic dyes are preferred due to low cost, stability, and high coloring intensity .

2.1 Health Effects of Synthetic Food Dyes

2.1..1 Allergic Reactions and Toxicity :

- Skin rashes, asthma, and hypersensitivity reactions
- Some dyes linked to toxicity in long-term exposure

2.1.2 Neurobehavioral Effects :

- Hyperactivity and ADHD in children
- Behavioral disturbances reported in multiple studies

2.1.3 Carcinogenic and Genetic Risks :

- Certain dyes banned due to cancer risk in animal studies
- Oxidative stress and DNA damage observed

2.2 Health Effects of Food Preservatives

2.2.1 Metabolic Disorders

- Increased risk of obesity and diabetes
- High preservative intake linked to metabolic imbalance

2.2.2 Cancer Risk

- Nitrites and nitrates form carcinogenic nitrosamines
- Studies show association with cancer risk

2.2.3 Hormonal and Developmental Effects

- Some additives interfere with endocrine function
- Higher risk in children and pregnant women

2.3 Indian Scenario

- 31% of food samples in some studies contained non-permitted colors
- Increased consumption of packaged foods in urban areas
- Weak enforcement in small-scale food sectors

3. Data Analysis :

Graph 3.1 : Growth of Processed Food Consumption in India

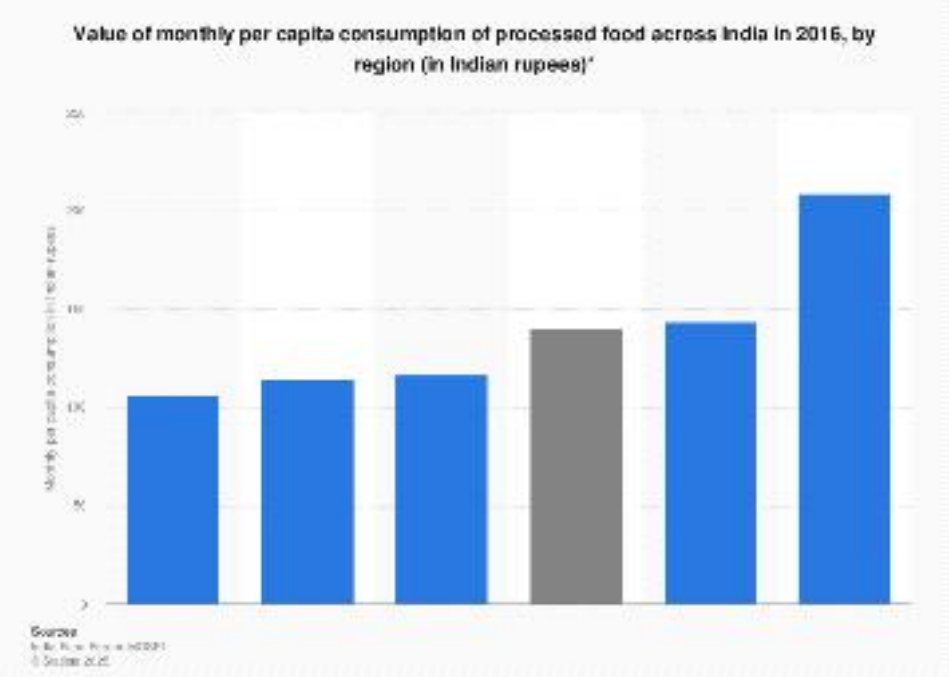

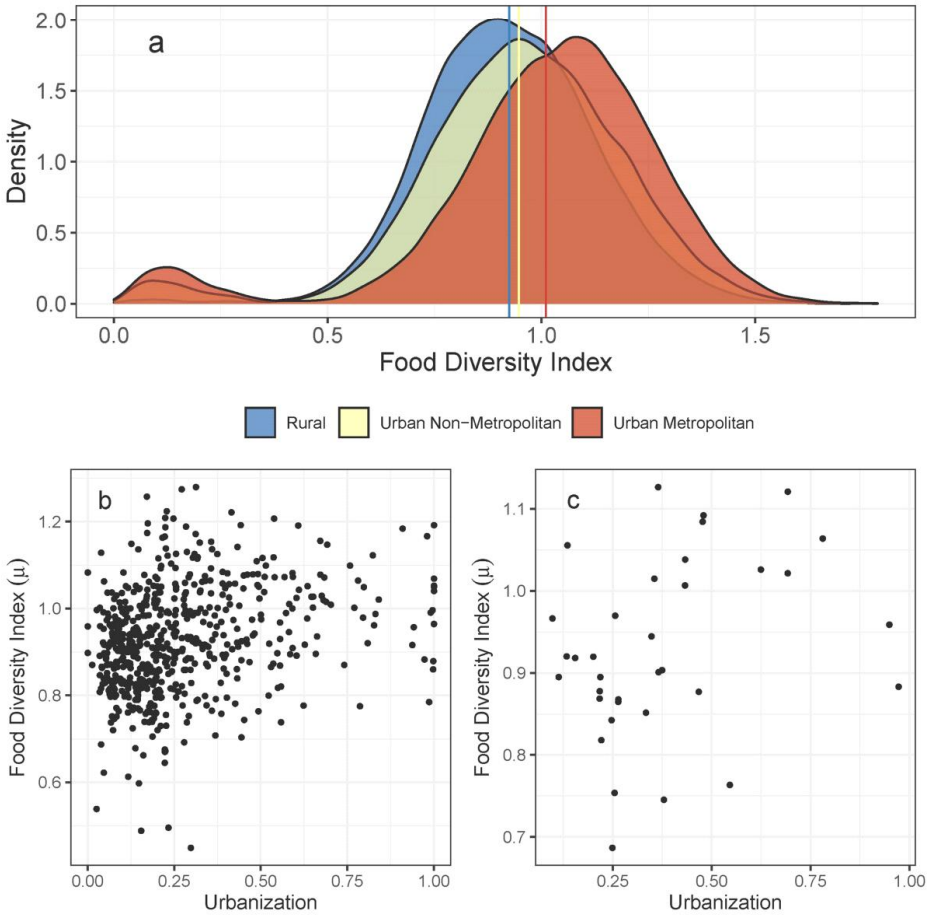

Interpretation :

There is a steady increase in processed food consumption in India due to urbanization and lifestyle changes. This correlates with higher exposure to food additives

Graph 3.2 : Health Effects Associated with Food Additives

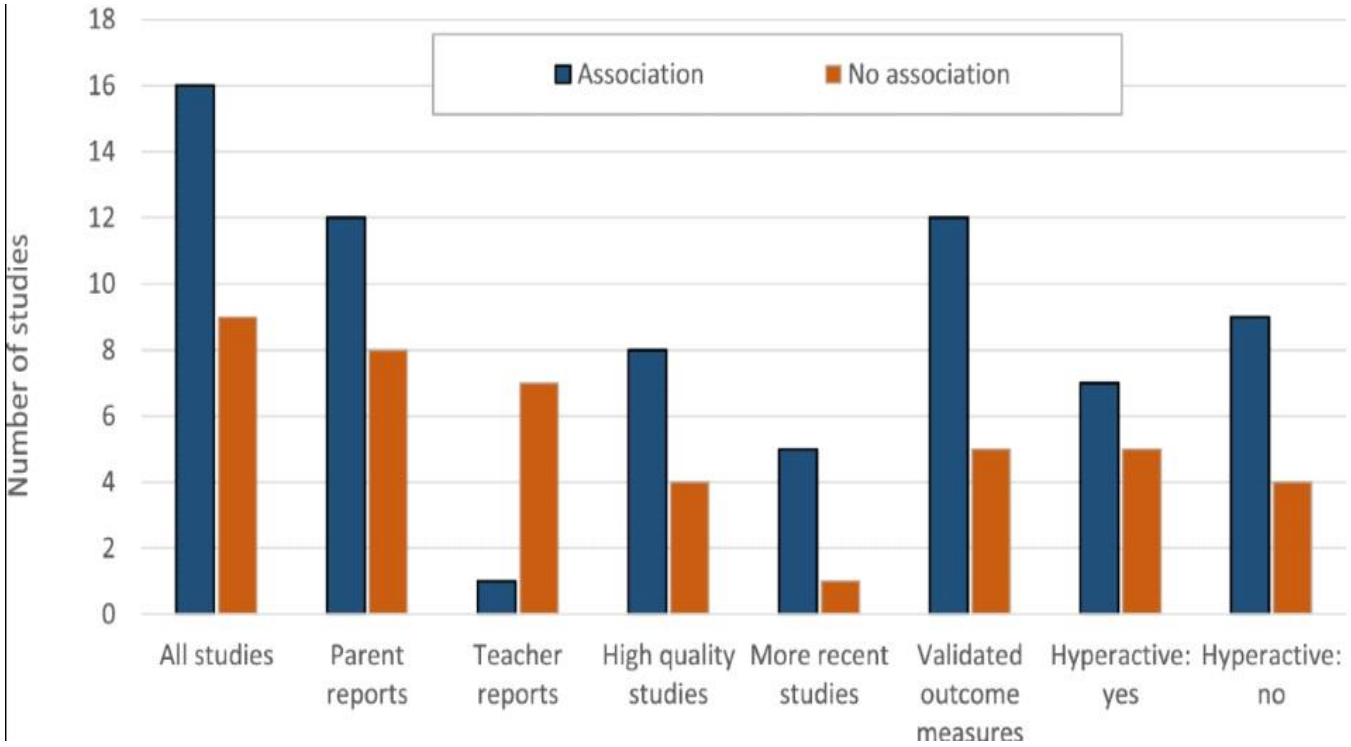

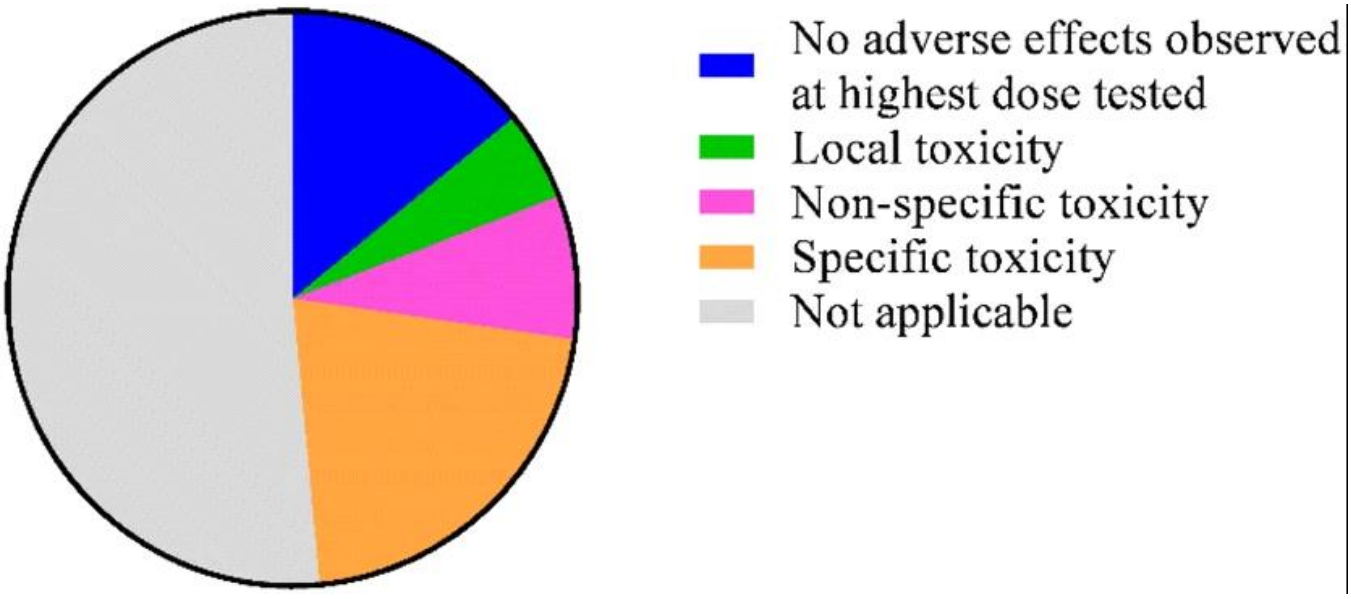

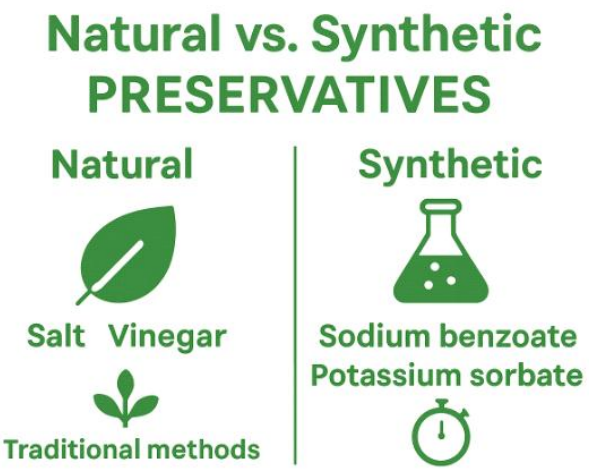

Interpretation :

Major health issues include :

- Hyperactivity (children)
- Allergies
- Obesity and metabolic disorders
- Cancer risks (long-term exposure)

Graph 3.3 Consumer Awareness Level in India

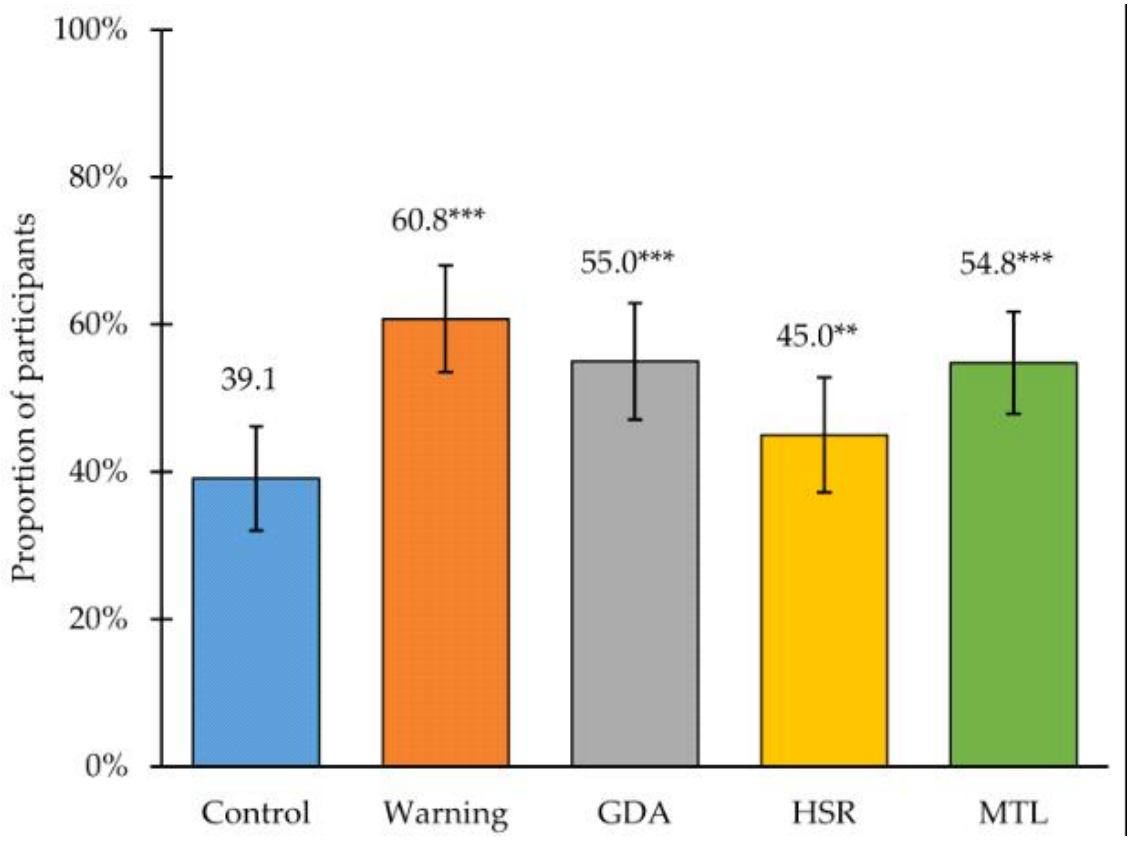

Interpretation: Consumer awareness is improving but still limited in rural and semi-urban areas.

4. Discussion

The findings indicate that while regulatory bodies such as WHO and FSSAI define acceptable daily intake (ADI), real-world exposure often involves multiple additives simultaneously, leading to cumulative and synergistic effects .

In India :

- Lack of strict monitoring leads to misuse
- Children are more vulnerable due to higher intake of colored foods
- Public awareness remains insufficient

Sustainable approaches are urgently needed to mitigate these risks.

5. Sustainable Approaches to Control

5.1 Use of Natural Alternatives

- Turmeric (curcumin), beetroot, carotenoids
- Safer and environmentally friendly

5.2 Regulatory Strengthening

- Strict enforcement of FSSAI guidelines
- Regular monitoring and labeling transparency

5.3 Consumer Awareness :

- Education campaigns.
- Label reading practices.

5.4 Industry Innovations :

- Clean-label products
- Reduction of unnecessary additives

6. Conclusion :

Synthetic food dyes and preservatives play a significant role in modern food systems but pose potential health risks when consumed excessively. Evidence suggests associations with neurobehavioral disorders, metabolic diseases, and cancer. In India, increasing processed food consumption exacerbates these risks. Sustainable solutions, including natural alternatives, stronger regulations, and improved consumer awareness, are essential for ensuring public health safety.

7. References Books :-

- Amchova, P., Siska, F., & Ruda-Kucerova, J. (2024). *Food safety and health concerns of synthetic food colors*. Toxics.
- Sharma, A., et al. (2022). *Toxicological effects of food additives*. PMC.
- Sudhakaran, G. (2023). *Artificial food dyes and neurobehavioral effects in children*. Brain Spine.
- Upadhyay, D., et al. (2023). *Impact of synthetic food colouring agents on human health*.
- EFSA & JECFA Reports on Food Additives Safety
- Indian Food Control Study (2007). *Use of synthetic colours in India*.
- Trends in Food Science & Technology (2025). *Artificial dyes and health risks*.
- The Guardian (2026). *Food preservatives and disease risk*.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 79-85
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध : भारतीय परिप्रेक्ष्य में फिलिप्स वक्र का अध्ययन

राकेश कुमार वर्मा
सहायक आचार्य, राजकीय स्नातक महाविद्यालय, नकुड़, सहारनपुर।

सारांश :

यह शोध पत्र भारत में मुद्रास्फीति (Inflation) और बेरोजगारी (Unemployment) के बीच संबंध का विश्लेषण करता है, विशेष रूप से फिलिप्स वक्र (Phillips Curve) के सिद्धांत के संदर्भ में। पारंपरिक आर्थिक सिद्धांत के अनुसार अल्पकाल में इन दोनों के बीच विपरीत संबंध पाया जाता है, अर्थात् मुद्रास्फीति बढ़ने पर बेरोजगारी घटती है और इसके विपरीत। हालांकि, भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक विशेषताएँ इस संबंध को जटिल बनाती हैं।

इस अध्ययन में 2015 से 2023 तक के आंकड़ों का उपयोग किया गया है, जिनके आधार पर यह पाया गया कि भारत में फिलिप्स वक्र का संबंध स्थिर और स्पष्ट रूप से लागू नहीं होता। कुछ वर्षों में यह सिद्धांत लागू होता दिखाई देता है, जबकि अन्य वर्षों में इसमें विचलन देखा जाता है। विशेष रूप से वैश्विक आर्थिक परिस्थितियाँ, कोविड–19 जैसी आपदाएँ, तथा नीतिगत हस्तक्षेप इस संबंध को प्रभावित करते हैं। अतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध को समझने के लिए व्यापक विश्लेषण आवश्यक है।

मुख्य बिन्दु – मुद्रास्फीति, बेरोजगारी एवं फिलिप्स वक्र।

प्रस्तावना –

मुद्रास्फीति और बेरोजगारी किसी भी अर्थव्यवस्था के दो अत्यंत महत्वपूर्ण सूचकांक माने जाते हैं, जो आर्थिक स्थिति और विकास के स्तर को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मुद्रास्फीति उस स्थिति को दर्शाती है जब वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य मूल्य स्तर में निरंतर वृद्धि होती है, जिससे लोगों की क्रय शक्ति (purchasing power) कम हो जाती है। दूसरी ओर, बेरोजगारी उस अवस्था को व्यक्त करती है जब कोई व्यक्ति कार्य करने की इच्छा और योग्यता रखने के बावजूद भी उपयुक्त रोजगार प्राप्त नहीं कर पाता। ये दोनों संकेतक न केवल आर्थिक असंतुलन को दर्शाते हैं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव भी उत्पन्न करते हैं।

फिलिप्स वक्र का सिद्धांत, जिसे 1958 में ए.डब्ल्यू. फिलिप्स द्वारा प्रस्तुत किया गया था, अर्थशास्त्र में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। इस सिद्धांत के अनुसार, अल्पकाल में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच एक विपरीत (inverse) संबंध पाया जाता है। इसका अर्थ यह है कि जब अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी दर कम होती है, तब श्रम

की मांग बढ़ने के कारण मजदूरी में वृद्धि होती है, जिससे उत्पादन लागत बढ़ती है और अंततः मुद्रास्फीति में वृद्धि होती है। इसके विपरीत, जब बेरोजगारी अधिक होती है, तब मजदूरी पर दबाव कम होता है और मुद्रास्फीति घट सकती है।

हालांकि, भारतीय अर्थव्यवस्था की विशिष्ट संरचनात्मक विशेषताएँ इस संबंध को जटिल बना देती हैं। भारत में अनौपचारिक क्षेत्र का व्यापक विस्तार, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, कौशल असंतुलन, तथा क्षेत्रीय विषमताएँ जैसे कारक इस पारंपरिक संबंध को कमजोर कर देते हैं। इसके अतिरिक्त, वैश्विक आर्थिक प्रभाव, सरकारी नीतियाँ और बाहरी झटके भी इस संबंध को प्रभावित करते हैं, जिससे फिलिप्स वक्र का व्यवहार भारत में स्थिर और स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देता।

उद्देश्य –

- भारत में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध का विश्लेषण करना।
- फिलिप्स वक्र की प्रासंगिकता का परीक्षण करना।
- नीति निर्माण में इसके महत्व को समझना।

शोध पद्धति –

यह अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। आंकड़े RBI, आर्थिक सर्वेक्षण और विश्व बैंक से लिए गए हैं। अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग किया गया है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि –

फिलिप्स वक्र एक महत्वपूर्ण आर्थिक अवधारणा है जो मुद्रास्फीति (Inflation) और बेरोजगारी (Unemployment) के बीच एक नकारात्मक (inverse) संबंध को दर्शाता है। इस सिद्धांत के अनुसार, जब अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी का स्तर कम होता है, तब श्रम की मांग बढ़ जाती है, जिससे मजदूरी दर में वृद्धि होती है और अंततः वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में वृद्धि होती है, जिसे हम मुद्रास्फीति के रूप में देखते हैं। इसके विपरीत, जब बेरोजगारी अधिक होती है, तब मजदूरी पर दबाव कम होता है, जिससे कीमतों में वृद्धि की गति धीमी पड़ जाती है।

अल्पकाल (Short Run) में फिलिप्स वक्र नीचे की ओर झुका हुआ (downward sloping) होता है, जो यह संकेत देता है कि नीति निर्माता एक स्तर तक मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संतुलन स्थापित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि सरकार विस्तारवादी मौद्रिक या राजकोषीय नीति अपनाती है, तो बेरोजगारी को कम किया जा सकता है, लेकिन इसके परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति बढ़ सकती है।

हालांकि, दीर्घकाल (Long Run) में यह संबंध स्थिर नहीं रहता। अर्थशास्त्री जैसे मिल्टन फ्रीडमैन और एडमंड फेल्प्स के अनुसार, दीर्घकाल में फिलिप्स वक्र ऊर्ध्वाधर (vertical) हो जाता है, क्योंकि लोग मुद्रास्फीति की अपेक्षाओं (inflation expectations) को समायोजित कर लेते हैं। इस स्थिति में बेरोजगारी एक प्राकृतिक दर (natural rate of unemployment) पर स्थिर हो जाती है, और मुद्रास्फीति का उस पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता।

इस प्रकार, फिलिप्स वक्र न केवल अल्पकालीन नीति निर्माण में सहायक है, बल्कि यह यह भी दर्शाता है कि दीर्घकाल में केवल मुद्रास्फीति बढ़ाकर बेरोजगारी को नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

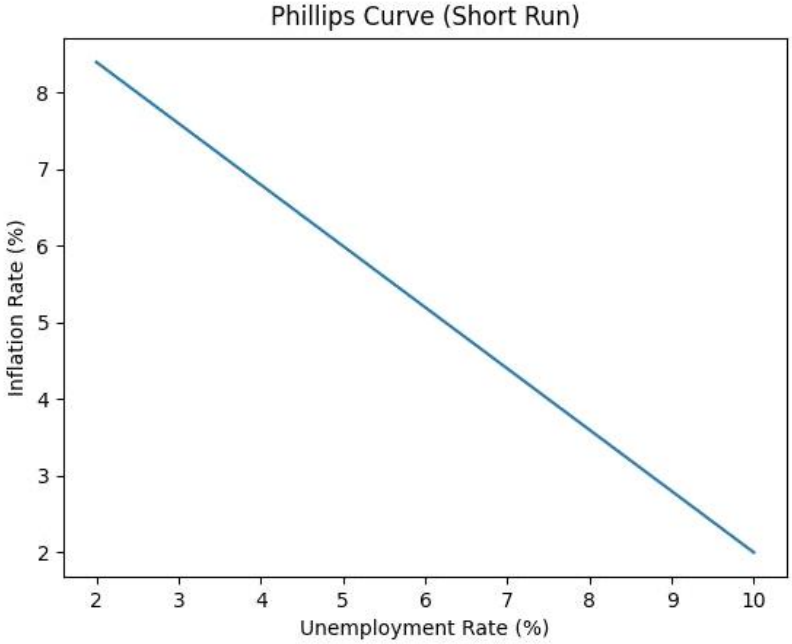

आंकड़े और विश्लेषण–

तालिका 1 : भारत में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी दर (2015–2023)

वर्ष	मुद्रास्फीति (%)	बेरोजगारी (%)
2015	4.9	5.0
2016	4.5	5.1
2017	3.6	5.4
2018	3.4	5.3
2019	4.8	5.8
2020	6.2	8.0
2021	5.5	7.2
2022	6.7	6.8
2023	5.9	6.5

यहाँ मुद्रास्फीति (Y-axis) और बेरोजगारी (X-axis) के आधार पर फिलिप्स वक्र को दर्शाया जा सकता है। यदि दिए गए वर्षों (2015–2023) के आंकड़ों को ग्राफ पर प्लॉट किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि बिंदु एक व्यवस्थित, नीचे की ओर झुके हुए वक्र का निर्माण नहीं करते हैं, जैसा कि पारंपरिक फिलिप्स वक्र सिद्धांत में अपेक्षित होता है।

वास्तव में, कुछ वर्षों में मुद्रास्फीति बढ़ने के साथ बेरोजगारी घटती हुई दिखाई देती है, जो इस सिद्धांत का समर्थन करती है। उदाहरण के लिए 2016–2018 के बीच यह प्रवृत्ति आंशिक रूप से देखी जा सकती है। लेकिन अन्य वर्षों, विशेष रूप से 2020 (COVID–19 अवधि) में, मुद्रास्फीति और बेरोजगारी दोनों में एक साथ

वृद्धि देखी गई, जो इस सिद्धांत के विपरीत है।

ग्राफ का विश्लेषण यह दर्शाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में फिलिप्स वक्र स्थिर या स्पष्ट नहीं है, बल्कि यह बिखरे हुए बिंदुओं (scatter pattern) के रूप में दिखाई देता है। यह इस बात का संकेत है कि मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध कई अन्य कारकों 'जैसे वैश्विक आर्थिक झटके, सरकारी नीतियाँ, आपूर्ति–पक्ष बाधाएँ, तथा श्रम बाजार की संरचना' से प्रभावित होता है।

इस प्रकार, भारतीय संदर्भ में फिलिप्स वक्र को एक सख्त नियम के रूप में नहीं, बल्कि एक सामान्य प्रवृत्ति के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।

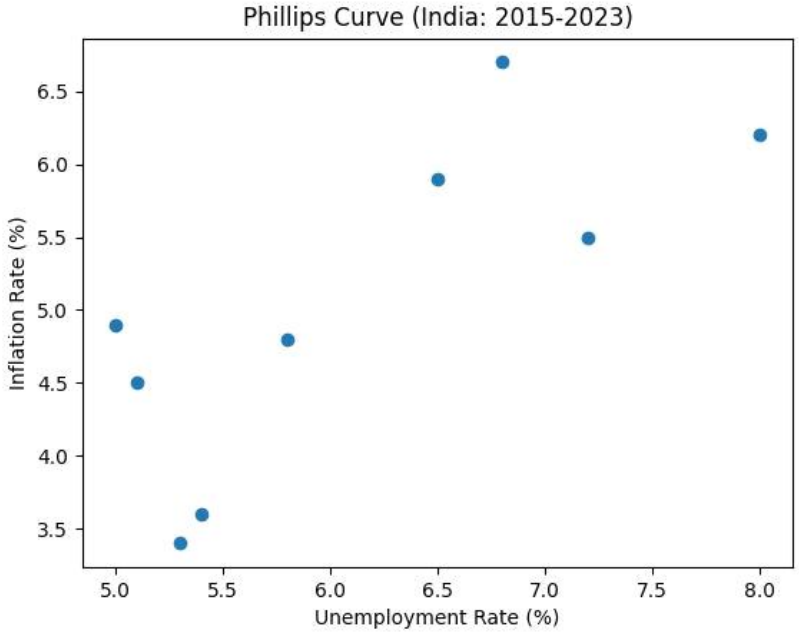

विश्लेषण –

2015 से 2018 के दौरान उपलब्ध आंकड़ों का विश्लेषण करने पर यह देखा जाता है कि फिलिप्स वक्र का आंशिक समर्थन मिलता है। इस अवधि में मुद्रास्फीति दर में क्रमिक कमी आई, जबकि बेरोजगारी दर में हल्की वृद्धि दर्ज की गई। यह प्रवृत्ति पारंपरिक फिलिप्स वक्र के सिद्धांत के अनुरूप प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच विपरीत संबंध दिखाई देता है। हालांकि यह संबंध बहुत अधिक मजबूत या स्पष्ट नहीं है, फिर भी यह संकेत देता है कि अल्पकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था में मांग और आपूर्ति के कुछ पहलू इस सिद्धांत के अनुसार कार्य कर रहे थे।

इसके विपरीत, वर्ष 2020 में स्थिति पूरी तरह बदल गई, जब वैश्विक स्तर पर फैली कोविड–19 महामारी ने अर्थव्यवस्था को गंभीर रूप से प्रभावित किया। इस दौरान न केवल बेरोजगारी दर में तीव्र वृद्धि हुई, बल्कि मुद्रास्फीति दर भी बढ़ गई। यह स्थिति फिलिप्स वक्र के पारंपरिक सिद्धांत के विपरीत है, क्योंकि सिद्धांत के अनुसार एक के बढ़ने पर दूसरे में कमी आनी चाहिए थी। महामारी के कारण आपूर्ति श्रृंखला में बाधाएँ, उत्पादन में गिरावट, लॉकडाउन के चलते आर्थिक गतिविधियों का ठप होना, तथा श्रम बाजार में अस्थिरता जैसे कई कारकों ने एक साथ प्रभाव डाला। परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था में "stagflation" जैसी स्थिति देखने को मिली, जहाँ उच्च मुद्रास्फीति और उच्च बेरोजगारी दोनों साथ–साथ मौजूद थे।

इस प्रकार, 2020 का अनुभव यह स्पष्ट करता है कि वास्तविक जीवन में आर्थिक संबंध केवल सैद्धांतिक मॉडलों तक सीमित नहीं होते, बल्कि वे बाहरी झटकों, नीतिगत हस्तक्षेपों और वैश्विक परिस्थितियों से भी प्रभावित होते हैं। इसलिए भारतीय संदर्भ में फिलिप्स वक्र का उपयोग करते समय इन जटिलताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

चर्चा –

भारतीय अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारणों को निम्न प्रकार से विस्तृत रूप में समझा जा सकता है :

1. **संरचनात्मक बेरोजगारी** – भारत में बेरोजगारी का एक बड़ा हिस्सा संरचनात्मक प्रकृति का है, जिसका अर्थ है कि श्रमिकों के कौशल (skills) और उपलब्ध रोजगार के बीच असंतुलन होता है। उदाहरण के लिए, तकनीकी क्षेत्र में कुशल श्रमिकों की मांग अधिक होती है, जबकि बड़ी संख्या में श्रमिक पारंपरिक या अकुशल कार्यों में संलग्न होते हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी केवल मांग और आपूर्ति में बदलाव से तुरंत समाप्त नहीं होती, बल्कि इसके लिए दीर्घकालिक उपाय जैसे शिक्षा, प्रशिक्षण और कौशल विकास आवश्यक होते हैं। परिणामस्वरूप, मुद्रास्फीति बढ़ने या घटने का इस पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता, जिससे फिलिप्स वक्र का पारंपरिक संबंध कमजोर हो जाता है।

2. **अनौपचारिक क्षेत्र का प्रभुत्व** – भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा अनौपचारिक (informal) क्षेत्र में कार्य करता है, जहाँ न तो नियमित वेतन संरचना होती है और न ही रोजगार की स्थिरता। इस क्षेत्र में कार्यरत लोग अक्सर बेरोजगारी के आधिकारिक आंकड़ों में पूरी तरह से शामिल नहीं होते। इसके कारण वास्तविक बेरोजगारी दर और मुद्रास्फीति के बीच संबंध को सही ढंग से मापना कठिन हो जाता है। साथ ही, अनौपचारिक क्षेत्र में मजदूरी का निर्धारण भी बाजार की औपचारिक शक्तियों से अलग होता है, जिससे फिलिप्स वक्र की अवधारणा स्पष्ट रूप से लागू नहीं हो पाती।

3. **वैश्विक आर्थिक झटके** – भारत एक खुली अर्थव्यवस्था (open economy) है, जो वैश्विक आर्थिक परिस्थितियों से गहराई से प्रभावित होती है। कच्चे तेल की कीमतों में उतार–चढ़ाव, वैश्विक मंदी, अंतरराष्ट्रीय व्यापार में बदलाव, और महामारी जैसी घटनाएँ (जैसे COVID–19) मुद्रास्फीति और रोजगार दोनों को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, तेल की कीमतों में वृद्धि से उत्पादन लागत बढ़ती है, जिससे मुद्रास्फीति बढ़ती है, जबकि उसी समय उद्योगों में मंदी के कारण रोजगार घट सकता है। इस प्रकार दोनों संकेतकों में एक साथ वृद्धि या कमी हो सकती है, जो फिलिप्स वक्र के पारंपरिक विपरीत संबंध के विपरीत है।

4. **नीतिगत हस्तक्षेप (Policy Interventions)** – सरकार और केंद्रीय बैंक (जैसे भारतीय रिजर्व बैंक) समय–समय पर विभिन्न नीतियों के माध्यम से मुद्रास्फीति और बेरोजगारी को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं। मौद्रिक नीति (जैसे ब्याज दरों में परिवर्तन) और राजकोषीय नीति (जैसे सरकारी व्यय और कर नीति) का इन दोनों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार रोजगार बढ़ाने के लिए सार्वजनिक व्यय बढ़ाती है, तो इससे मुद्रास्फीति भी बढ़ सकती है। इसी प्रकार, मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए ब्याज दर बढ़ाने से निवेश और रोजगार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इन नीतिगत हस्तक्षेपों के कारण दोनों के बीच संबंध स्थिर नहीं रहता और समय–समय पर बदलता रहता है।

उपरोक्त सभी कारक मिलकर यह दर्शाते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध सरल और रैखिक (linear) नहीं है, बल्कि यह बहुआयामी और परिस्थितिनिष्ठ (context-dependent) है। इसलिए फिलिप्स वक्र का सिद्धांत भारत में केवल आंशिक रूप से ही लागू होता है।

नीति निहितार्थ –

इस अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित विस्तृत नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं :

- **रोजगार सृजन पर विशेष ध्यान आवश्यक :** सरकार को ऐसे क्षेत्रों में निवेश बढ़ाना चाहिए जो अधिक रोजगार उत्पन्न करते हैं, जैसे कि विनिर्माण, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग (MSME), तथा सेवा क्षेत्र। साथ ही, श्रम–प्रधान उद्योगों को प्रोत्साहन देने से बेरोजगारी दर में कमी लाई जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में मनरेगा जैसी योजनाओं को और प्रभावी बनाकर रोजगार के अवसरों को बढ़ाया जा सकता है।
- **मुद्रास्फीति नियंत्रण के साथ संतुलन बनाए रखना :** केवल मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने पर अत्यधिक ध्यान देने से आर्थिक विकास और रोजगार सृजन प्रभावित हो सकते हैं। इसलिए मौद्रिक नीति (Monetary Policy) और राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) के बीच संतुलन आवश्यक है, ताकि मूल्य स्थिरता के साथ–साथ आर्थिक विकास भी सुनिश्चित किया जा सके।
- **कौशल विकास कार्यक्रमों को सुदृढ़ बनाना :** भारत में बेरोजगारी का एक बड़ा कारण कौशल की कमी है। इसलिए सरकार को स्किल डेवलपमेंट प्रोग्राम्स, व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Training) तथा डिजिटल कौशल प्रशिक्षण को बढ़ावा देना चाहिए, जिससे युवा वर्ग रोजगार के लिए अधिक सक्षम बन सके।
- **अनौपचारिक क्षेत्र का औपचारिकीकरण :** भारत में बड़ी संख्या में लोग अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हैं, जहाँ रोजगार की स्थिरता और सुरक्षा कम होती है। इस क्षेत्र को औपचारिक अर्थव्यवस्था में शामिल करने से रोजगार की गुणवत्ता और आंकड़ों की विश्वसनीयता दोनों में सुधार होगा।
- **क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना :** विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में असमानता पाई जाती है। संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए पिछड़े क्षेत्रों में निवेश और बुनियादी ढांचे का विकास आवश्यक है।

निष्कर्ष –

- भारत में फिलिप्स वक्र स्थिर रूप में लागू नहीं होता, क्योंकि यहाँ की अर्थव्यवस्था अनेक जटिल और विविध कारकों से प्रभावित होती है।
- मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच पारंपरिक नकारात्मक संबंध हमेशा स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देता। कभी–कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जब दोनों ही एक साथ बढ़ते या घटते हैं। विशेष रूप से वैश्विक आर्थिक संकट और महामारी जैसे समय में यह संबंध कमजोर पड़ जाता है।
- भारत में संरचनात्मक बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या है, जो इस संबंध को प्रभावित करती है।
- अनौपचारिक क्षेत्र की अधिकता के कारण वास्तविक रोजगार के आँकड़े भी पूरी तरह सटीक नहीं होते।
- सरकारी नीतियाँ और मौद्रिक हस्तक्षेप भी इस संबंध को समय–समय पर बदलते रहते हैं।
- इसके अतिरिक्त, अंतरराष्ट्रीय बाजारों में उतार–चढ़ाव का भी भारतीय मुद्रास्फीति पर प्रभाव पड़ता है।
- कृषि क्षेत्र पर निर्भरता और मौसमी बदलाव भी रोजगार और कीमतों को प्रभावित करते हैं।
- इस कारण फिलिप्स वक्र का पारंपरिक सिद्धांत भारतीय संदर्भ में सीमित रूप से ही लागू होता है।

- अल्पकाल में कुछ हद तक इसका प्रभाव देखा जा सकता है, लेकिन दीर्घकाल में यह स्थिर नहीं रहता।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारत में मुद्रास्फीति और बेरोजगारी का संबंध गतिशील, परिवर्तनशील और परिस्थितिनिर्भर है।

संदर्भ सूची :

- Reserve Bank of India. (2023). Annual Report.
- Ministry of Finance. (2022). Economic Survey.
- Phillips, A. W. (1958). Economica.
- Friedman, M. (1968). American Economic Review.
- World Bank. (2023). World Development Indicators.

gauravsharma0302@gmail.com
Rakesh Kumar Verma
8090300424, 9335290302

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 86-89
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

पन्नाधाय का त्याग, बलिदान व राजधर्म

डॉ. उर्मिला शर्मा
व्याख्याता, हतिहास विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, मंडावरी, दौसा।

सारांश- भारतीय इतिहास अनेक वीरांगनाओं के साहस बलिदान व त्याग से भरा हुआ है। राजस्थान को वीरों की भूमि कहा जाता है । इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनके कारण राजस्थान को वीरांगनाओं की भूमि कहा जाए तो भी अतिश्योक्ति नहीं होगी । राजस्थान में मेवाड़ की धरती वीरों की ही नहीं, वीरागनाओ की कथाओं से भरी पड़ी है । उनमें से एक नाम आता है, पन्नाधाय का । पन्नाधाय ने मातृत्व से ज्यादा राजधर्म निभाया । पन्नाधाय राणा सांगा के पुत्र उदय सिंह की धाय मां थी । जिसने बप्पारावल, राणा सांगा, व महाराणा प्रताप जैसे वीरों की भूमि में जन्म लिया । राणा सांगा की मृत्यु के बाद रतन सिंह शासक बने । रतन सिंह की मृत्यु के बाद विक्रमादित्य को अल्पायु में राजा बनाया व शासन की बागडोर उनकी माता कर्णावती के हाथों में थी। जब गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह ने आक्रमण किया तब अपनी रक्षा के लिए कर्णावती ने शाका किया । विक्रमादित्य के समय राजमहल षडयंत्रों का केंद्र बन गया था । तभी मेवाड़ के एक सरदार बनवीर ने सिंहासन हड़पने की योजना बनाई । बनवीर ने विक्रमादित्य की हत्या कर, उदय सिंह को भी मारना चाहता था, तभी मेवाड़ की एक वीर माता पन्नाधाय ने अपने पुत्र चंदन का बलिदान देकर उदय सिंह की रक्षा की।

मुख्यशब्दावली :- धाय माँ- राजकुमार व राजकुमारियो को संभालने वाली संरक्षिका, दाई माँ

साका :- राजा द्वारा केसरिया करने के बाद रानियों द्वारा सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राण न्योछावर करना ।

बलिदान :- राष्ट्र,समाज की रक्षा के लिए किया जाने वाला त्याग ।

प्रस्तावना :- राजस्थान में जन्म लेने वाली अनके वीरांगनाएं हैं- जैसे नायिका देवी,कर्णावती,मीराबाई जो अपने विशिष्ट कार्य त्याग, बलिदान, भक्ति व कर्तव्य परायणता के लिए जानी जाती है । इनमें से एक नाम और आता है,पन्नाधाय का । पन्नाधाय मेवाड़ के राजा उदयसिंह की धाय माँ थी । जिसने जीवन भर उदय सिंह की रक्षा की । पन्नाधाय चित्तौड़ के पास में रहने वाली एक ग्रामीण महिला थी । जिसने कर्णावती को दिये गये वचन की रक्षा की । मेवाड़ (चित्तौड़), गुजरात व मालवा के बीच आने से सामरिक व व्यापारिक महत्व रखता था । जब 1535 में गुजरात के शासक बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया । रानी कर्णावती ने दिल्ली के शासक हुमायूँ से सहायता मांगी (राखी भेजी)। बहादुर शाह ने हुमायूँ को सहायता के लिए मना कर दिया । इतिहासकारों का यह भी मानना है हुमायूँ सहायता पहुंचने में देरी कर दी। हुमायूँ की तरफ से कर्णावती को कोई भी सहायता नहीं मिली । वह चित्तौड़ पर बहादुरशाह का अधिकार हो गया । रानी कर्णावती ने जौहर किया । कर्णावती ने जौहर से पूर्व पन्नाधाय से उदय सिंह की रक्षा किया वचन लिया जिसे पन्नाधाय ने अंतिम सांस तक निभाया । जब बनवीर ने विक्रमादित्य की हत्या ने कर दी । उसके बाद कुछ समय के लिए बनवीर चित्तौड़ का प्रशासक बना । बनवीर उदय सिंह की भी हत्या करना चाहता था । बनवीर उदय सिंह की हत्या करने के उद्देश्य से चित्तौड़ दुर्ग में आया, तो पन्नाधाय ने उसे समझाया । वह नहीं माना तो,पन्नाधाय ने अपने मातृत्व से ज्यादा राज धर्म को ऊपर रखते हुए अपने पुत्र चंदन को उदय सिंह बता दिया ।

बनवीर ने उदय सिंह के स्थान पर पन्नाधाय के पुत्र चंदन की हत्या कर दी । उसके बाद पन्नाधाय उदय सिंह को लेकर टोड़ा व डूंगरपुर गई, वहां शरण ना मिलने के कारण चित्तौड़ की आपातकालीन राजधानी कुंभलगढ़ दुर्ग में गई । वहां आशा देवपुरा के यहां शरण लेकर उदय सिंह के शासक बनने तक रक्षा की।

प्रारंभिक जीवन:- पन्नाधाय का वास्तविक नाम पन्ना गुर्जरी था जो चित्तौड़ के पास के एक गांव माताजी की पाण्डोली की रहने वाली महिला थी । उनके पिता हरचंद जी हाकला थे । पन्नाधाय का विवाह कामेडी गांव के चौहान वंशीय गुर्जर सूरजमल से हुआ । उनके चंदन नामक पुत्र हुआ पन्नाधाय को उदय सिंह की धाय माँ नियुक्ति किया गया ।कर्णावती ने जब जोहर किया तब पन्नाधाय से उदय सिंह की रक्षा का वचन लिया जिसे पन्नाधाय ने पूरी उम्र निभाया ।

व्यक्तित्व:- पन्नाधाय का व्यक्तित्व इतिहास में त्याग में बलिदान के लिए जाना जाता है आज भी त्याग व बलिदान की बात आती है तो, कहा जाता है बलिदान कैसा हो, पन्नाधाय जैसा हो । पन्नाधाय एक वीरांगना थी, जिसने विपरीत परिस्थितियों में मेवाड़ राजवंश की रक्षा की । देशभक्ति व कर्तव्य निष्ठता के कारण अपने पुत्र की बलि दे दी । मेवाड़ में पन्नाधाय की कहानी एक-एक व्यक्ति के द्वारा सुनी वह सुनाई जाती है ।

कृतित्व:- पन्नाधाय का जन्म व कर्म क्षेत्र दोनों ही मेवाड़ रहा है । चित्तौड़ के पास के गांव की महिला जो धाय माँ के नाम से अपने कर्मों के द्वारा जानी जाती है । राणा सांगा की मृत्यु के बाद उनके पुत्रों विक्रमादित्य व उदय सिंह को ननिहाल बूंदी में भेज दिया गए थे । कर्णावती की मृत्यु के बाद जब दोनों पुत्र चित्तौड़ आए तब बनवीर द्वारा विक्रमादित्य हत्या किये जाने के बाद, उदय सिंह को भी मरना चाहता था । तब पन्नाधाय द्वारा कर्णावती को दिये वचनों के कारण उदय सिंह की रक्षा की । आवश्यकता पड़ने पर पन्नाधाय ने अपने पुत्र चंदन सिंह की बलि दे दी । उदय सिंह के पालन पोषण के लिए पन्नाधाय कुंभलगढ़ में शरण लेने गई, वहां भी आशा देवपुरा ने बनवीर के डर से शरण देने को मना कर दिया । तब आशा देवपुरा की माँ के कहने पर पन्नाधाय को शरण दी गई । इस तरह पन्नाधाय द्वारा उदय सिंह की रक्षा की गई । वह अपने पुत्र का बलिदान इतिहास में अनोखी मिसाल है । ऐसा बलिदान इतिहास में ना कहीं हुआ है, ना कहीं होगा ।

उपसंहार:- पन्नाधाय का यह त्याग,बलिदान,कर्तव्य निष्ठाता व देशभक्ति हमें सिखाती है, कि देश रक्षा के लिए अपनों का बलिदान देना ही त्याग है । पन्नाधाय केवल धाय मां थी, जिसने मेवाड़ राजवंश को बचाया । देशभक्ति के लिए किसी पद व शक्ति की आवश्यकता नहीं होती । सामान्य व्यक्ति भी देश समाज के लिए कुछ भी कर सकता है । राजस्थान में वीरों के साथ वीरांगनाओं का भी अपना एक विचित्र अनुपम इतिहास है, जिसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता । राजस्थान की महिलाओं ने आवश्यकता पड़ने पर श्रेष्ठ रानी, संरक्षिका, दासी व शिक्षिका की श्रेष्ठ भूमिका निभाई है ।

टॉड, कर्नल जेम्स- राजस्थान का इतिहास

पंथ, गोविंद बल्लभ- राजमुकुट (नाटक)

डॉक्टर वर्मा, राजकुमार- दीपदान (एकांकी)

दास,श्यामल- वीर विनोद

सोमानी, आर. वी.- मेवाड़ के इतिहास

सतीश चंद्र - मध्य कालीन भारत का इतिहास

शर्मा, गोपीनाथ - राजस्थान का इतिहास

शर्मा एंड व्यास - राजस्थान का इतिहास

https://rajasthanhistory.com/

https://en.wikipedia.org/wiki/Main

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 90–94
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Socioeconomic Status and Academic Achievement : Systemic Barriers in Education

Dr. Manish Rathore
Principal M.L.D T.T College Banswara

Abstract :

Socioeconomic status (SES) remains one of the most significant determinants of academic achievement, shaping students' access to educational resources, learning environments, and opportunities for advancement. This study examines the systemic barriers that students from low-SES backgrounds face within educational systems. Factors such as inadequate school funding, limited access to qualified teachers, lack of technological resources, and constrained learning support at home contribute to persistent achievement gaps. Additionally, social and cultural capital differences influence students' academic engagement and aspirations.

The paper highlights how structural inequalities, including residential segregation and policy disparities, reinforce cycles of disadvantage across generations. It also explores the psychological impacts of poverty, such as stress and reduced motivation, which further hinder academic performance. By analyzing existing research and case studies, the study underscores the need for inclusive educational policies and targeted interventions.

The findings suggest that addressing these disparities requires a multifaceted approach, including equitable resource allocation, community support programs, and reforms in curriculum and assessment practices. Ultimately, the paper argues that reducing socioeconomic barriers is essential not only for improving individual academic outcomes but also for promoting social mobility and achieving a more equitable and just education system.

Keywords :

Socioeconomic Status (SES), Academic Achievement, Educational Inequality, Systemic Barriers , Resource Disparity, Social Capital, Cultural Capital, Educational Policy, Achievement Gap and Social Mobility.

Preface :

Education is widely regarded as the cornerstone of individual growth and societal progress. It serves as a powerful tool for empowerment, enabling individuals to develop critical thinking, acquire skills, and contribute meaningfully to the economy and community. However, access to quality education and the ability to succeed within educational systems are not equally distributed. One of the most influential factors shaping educational outcomes is socioeconomic status (SES). The relationship between socioeconomic background and academic achievement has long been a subject of academic inquiry, policy debate, and social concern. This study, titled *"Socioeconomic Status and Academic Achievement: Systemic Barriers in Education,"* seeks to explore this complex relationship and highlight the structural inequalities that persist within educational systems.

Socioeconomic status, typically measured through indicators such as income, education level of parents, and occupational status, plays a crucial role in determining a student's educational journey. Students from higher socioeconomic backgrounds often benefit from access to better schools, enriched learning environments, private tutoring, and supportive networks. In contrast, those from lower socioeconomic backgrounds frequently encounter numerous obstacles that hinder their academic progress. These disparities are not merely individual challenges but are deeply rooted in systemic issues that perpetuate inequality across generations.

The purpose of this study is to examine how systemic barriers within education contribute to the persistent gap in academic achievement between students of different socioeconomic backgrounds. Rather than viewing academic success solely as a product of individual effort or ability, this work emphasizes the broader social, economic, and institutional factors that shape educational outcomes. By doing so, it challenges the notion of meritocracy in education and calls attention to the need for structural reforms.

One of the primary barriers faced by students from low-SES backgrounds is the inequitable distribution of resources. Schools located in economically disadvantaged areas often suffer from underfunding, inadequate infrastructure, and limited access to educational materials. These schools may lack modern technology, well-equipped laboratories, and libraries, which are essential for a comprehensive learning experience. Additionally, they may struggle to attract and retain qualified teachers, further compromising the quality of education provided. As a result, students in these environments are at a significant disadvantage compared to their peers in more affluent schools.

Another critical aspect explored in this study is the role of the home environment in shaping academic achievement. Students from higher SES families are more likely to have access to educational support at home, including books, internet access, and parental guidance. Their parents often possess

higher levels of education and are better equipped to assist with homework, monitor academic progress, and encourage intellectual curiosity. Conversely, students from lower SES backgrounds may lack these advantages. Financial constraints, time limitations, and lower levels of parental education can restrict the support available at home, impacting students' ability to perform academically.

Furthermore, this study delves into the concept of social and cultural capital and its influence on education. Social capital refers to the networks and relationships that provide individuals with support and opportunities, while cultural capital encompasses the knowledge, skills, and behaviors valued by the educational system. Students from higher SES backgrounds typically possess greater cultural capital, enabling them to navigate the education system more effectively. They are more familiar with academic expectations, communication styles, and institutional norms, giving them an advantage in both academic performance and access to opportunities. In contrast, students from lower SES backgrounds may struggle to align with these expectations, leading to misunderstandings and reduced academic engagement.

In addition to material and social disadvantages, students from low-SES backgrounds often face psychological challenges that impact their academic performance. Economic hardship can lead to stress, anxiety, and a sense of insecurity, which can hinder concentration and motivation. The pressure of financial instability may also force students to take on additional responsibilities, such as part-time work or caregiving, leaving less time and energy for academic pursuits. These factors contribute to a cycle of disadvantage that is difficult to break without external support and intervention. The study also examines the role of educational policies and institutional practices in perpetuating inequality. Policies related to school funding, curriculum design, standardized testing, and teacher allocation can either mitigate or exacerbate disparities. For instance, reliance on standardized testing as a primary measure of academic achievement may disadvantage students who lack access to test preparation resources. Similarly, rigid curricula that do not account for diverse learning needs can hinder the progress of students from different backgrounds. By analyzing these systemic factors, this work aims to shed light on the ways in which educational systems can unintentionally reinforce existing inequalities.

Another important dimension discussed in this preface is the impact of residential segregation on educational opportunities. In many regions, socioeconomic status is closely linked to geographic location, resulting in unequal access to quality schools. Students living in affluent neighborhoods often attend well-funded schools with abundant resources, while those in economically disadvantaged areas are limited to under-resourced institutions. This geographic disparity further entrenches educational inequality and limits social mobility.

Despite the challenges outlined, this study also recognizes the potential for change and improvement. Various interventions and policy initiatives have been implemented to address educational disparities, including scholarship programs, community-based support initiatives, and reforms aimed at equitable resource allocation. While these efforts have shown promise, there is still a need for more comprehensive and sustained action. This work emphasizes the importance of adopting a holistic approach that addresses not only the symptoms but also the root causes of inequality.

The significance of this study lies in its contribution to the ongoing discourse on educational equity. By highlighting the systemic barriers faced by students from different socioeconomic backgrounds, it aims to raise awareness among educators, policymakers, and the broader community. Understanding these challenges is the first step toward creating an education system that is truly inclusive and equitable. The findings of this study can inform policy decisions, guide educational practices, and inspire further research in this critical area.

Moreover, this work underscores the broader societal implications of educational inequality. Education is not only a means of personal development but also a key driver of economic growth and social stability. When large segments of the population are denied equal educational opportunities, it limits the potential of the workforce and exacerbates social disparities. Addressing socioeconomic barriers in education is therefore essential not only for individual success but also for the overall well-being of society.

In conclusion, *"Socioeconomic Status and Academic Achievement: Systemic Barriers in Education"* seeks to provide a comprehensive understanding of the factors that contribute to educational inequality. By examining the interplay between socioeconomic status and academic outcomes, it highlights the need for systemic change and collective action. The preface sets the stage for a detailed exploration of these issues, emphasizing the importance of equity, inclusivity, and social justice in education. It is hoped that this work will contribute to meaningful discussions and inspire efforts to create a more just and equitable educational landscape for all learners.

Conclusion :

In conclusion, the relationship between socioeconomic status and academic achievement highlights the deep-rooted inequalities embedded within educational systems. Students from lower socioeconomic backgrounds continue to face systemic barriers such as inadequate resources, limited institutional support, and unfavorable learning environments, all of which significantly hinder their academic progress. These challenges are further intensified by disparities in social and cultural capital, as well as psychological stress arising from economic instability.

This study emphasizes that academic success cannot be viewed solely as a result of individual

effort or ability. Instead, it is shaped by broader structural and societal factors that influence access to opportunities. The persistence of these inequalities not only affects individual learners but also restricts social mobility and perpetuates cycles of poverty across generations.

Addressing these issues requires a comprehensive and inclusive approach. Policymakers, educators, and communities must work collaboratively to ensure equitable distribution of resources, implement supportive educational policies, and create inclusive learning environments that cater to diverse needs.

Ultimately, reducing socioeconomic disparities in education is essential for building a fair and just society, where every student, regardless of background, has the opportunity to achieve their full potential and contribute meaningfully to society.

References

- https://www.researchgate.net/publication/333123996_A_Review_of_the_Literature_on_Socioeconomic_Status_and_Educational_Achievement
- https://jmk.datatablets.com/index.php/j/article/view/6
- https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S1747938X18302744
- https://journals.ekb.eg/article_424111_0.html
- https://www.frontiersin.org/journals/education/articles/10.3389/feduc.2021.731634/full
- https://www.ijarmt.com/index.php/j/article/view/436

sinha5272@gmail.com

E-mail – manish11045@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 95–98
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

From Rote to Critical Thinking : Curriculum Reform in Secondary Education

Dr Priyanka Singh

ABSTRACT :

The shift from rote memorization to critical thinking represents a crucial transformation in secondary education aimed at preparing students for complex, real-world challenges. Traditional curricula have long emphasized the reproduction of information, often limiting students' ability to analyze, evaluate, and apply knowledge in meaningful contexts. This paper explores the need for curriculum reform that prioritizes higher-order thinking skills, problem-solving, creativity, and independent learning. It highlights how integrating inquiry-based learning, interdisciplinary approaches, and experiential activities can foster deeper understanding and intellectual engagement among students.

Furthermore, the study examines the role of teachers as facilitators of learning rather than mere transmitters of knowledge, emphasizing the importance of professional development and pedagogical innovation. Assessment practices are also reconsidered, advocating for methods that evaluate analytical and reflective abilities instead of mere factual recall. The challenges of implementing such reforms, including resistance to change, lack of resources, and systemic constraints, are discussed.

Ultimately, this paper argues that transforming secondary education curricula is essential for nurturing critical thinkers who can adapt to rapidly evolving societal and technological landscapes, thereby contributing effectively to personal growth and national development.

Keywords :

Curriculum Reform, Rote Learning, Critical Thinking, Secondary Education, Student-Centred Learning, Teaching Methodologies, Assessment Practices, Inquiry-Based Learning, Educational Innovation and Lifelong Learning

Preface :

Education has always been regarded as the cornerstone of societal development, shaping not

only individual futures but also the collective progress of nations. Over time, however, the purpose and methods of education have undergone significant transformation. In many traditional systems, particularly at the secondary level, learning has largely been driven by rote memorization, where students are encouraged to recall information rather than truly understand or apply it. While this approach may have served earlier needs of standardized knowledge dissemination, it increasingly falls short in addressing the demands of the modern world. Today's rapidly evolving global landscape requires individuals who are capable of critical thinking, problem-solving, creativity, and adaptability—skills that cannot be cultivated through memorization alone.

This project, titled *"From Rote to Critical Thinking: Curriculum Reform in Secondary Education,"* seeks to explore the pressing need for a paradigm shift in the way education is designed and delivered. The focus of this study is to examine how secondary education curricula can move beyond traditional practices and embrace methodologies that foster deeper intellectual engagement. It highlights the importance of encouraging students to question, analyze, interpret, and innovate, rather than simply reproduce information. Such a transformation is essential not only for academic excellence but also for preparing students to navigate the complexities of real-life situations.

The motivation behind choosing this topic stems from the growing recognition that current educational practices often do not align with the skills required in the 21st century. In many classrooms, students are still evaluated based on their ability to memorize textbooks and reproduce answers in examinations. This often leads to superficial learning, where knowledge is quickly forgotten and seldom applied. Moreover, such an approach can hinder curiosity and discourage independent thinking. By contrast, a curriculum that emphasizes critical thinking empowers students to become active participants in their learning process, fostering a sense of inquiry and lifelong learning.

In this context, curriculum reform becomes a vital step toward educational improvement. Reform is not merely about changing textbooks or introducing new subjects; it involves a comprehensive rethinking of teaching methodologies, learning objectives, and assessment strategies. It requires educators to adopt innovative approaches such as inquiry-based learning, project-based learning, collaborative activities, and real-world problem-solving tasks. These methods encourage students to engage with content more meaningfully, develop analytical skills, and build confidence in expressing their ideas.

Another important aspect addressed in this project is the role of teachers in facilitating this transition. Teachers are at the heart of any educational reform, as they directly influence how curriculum changes are implemented in classrooms. Moving from a teacher-centered approach to a student-centered one demands a shift in mindset, where teachers act as guides and mentors rather

than mere transmitters of information. This, in turn, necessitates adequate training, support, and professional development opportunities to equip educators with the skills required to foster critical thinking among students.

Assessment practices also play a crucial role in shaping learning outcomes. Traditional examinations often prioritize factual recall, which reinforces rote learning habits. Therefore, reforming assessment methods is essential to ensure alignment with the goals of critical thinking. Alternative forms of evaluation, such as open-ended questions, case studies, presentations, and project work, can provide a more comprehensive understanding of a student's abilities. By assessing analytical and reflective skills, educators can encourage students to think deeply and apply their knowledge effectively.

Despite the clear benefits of shifting toward critical thinking, the process of curriculum reform is not without challenges. Resistance to change, limited resources, large class sizes, and rigid examination systems can hinder the implementation of new approaches. Additionally, there may be societal and institutional expectations that continue to prioritize high exam scores over meaningful learning. This project acknowledges these challenges and emphasizes the need for a collaborative effort involving policymakers, educators, students, and parents to bring about sustainable change.

The significance of this study lies in its attempt to bridge the gap between traditional educational practices and the evolving needs of society. By highlighting the limitations of rote learning and the advantages of critical thinking, it aims to contribute to ongoing discussions on educational reform. The insights presented in this project are intended to inspire educators and stakeholders to reconsider existing approaches and work toward creating a more dynamic and effective learning environment.

Furthermore, this project underscores the broader impact of education on personal and societal development. Students who are trained to think critically are better equipped to make informed decisions, solve complex problems, and contribute positively to their communities. They become independent learners who can adapt to changing circumstances and embrace new challenges with confidence. In this way, curriculum reform not only enhances academic outcomes but also plays a crucial role in shaping responsible and capable citizens.

In conclusion, the transition from rote memorization to critical thinking represents a necessary and timely evolution in secondary education. As the world continues to change at an unprecedented pace, the need for innovative and forward-thinking educational practices becomes increasingly evident. This project serves as a step toward understanding and advocating for such change, emphasizing that education must go beyond the mere accumulation of knowledge to the development of meaningful skills and perspectives. It is hoped that the ideas explored in this study will contribute to a more

thoughtful and effective approach to education, ultimately benefiting both individuals and society as a whole.

Conclusion :

In conclusion, the transition from rote memorization to critical thinking in secondary education is both necessary and transformative. Traditional learning methods, while useful for building foundational knowledge, are no longer sufficient in preparing students for the complexities of the modern world. Emphasizing critical thinking enables learners to analyze information, solve problems, and make informed decisions, thereby fostering intellectual independence and lifelong learning.

Curriculum reform plays a central role in this shift by promoting student-centered approaches, innovative teaching strategies, and meaningful assessment practices. It encourages educators to move beyond textbook-based instruction and create engaging learning environments where students actively participate and think deeply. However, the success of such reforms depends on overcoming challenges such as resistance to change, lack of resources, and rigid examination systems.

Ultimately, fostering critical thinking not only enhances academic performance but also prepares students to become responsible, adaptable, and creative individuals. By embracing this transformation, education systems can better align with the demands of the 21st century, ensuring that students are equipped with the skills needed to succeed in both personal and professional spheres.

References

- https://www.scrrjournal.com/index.php/14/article/view/310
- https://www.frontiersin.org/journals/education/articles/10.3389/feduc.2026.1689764/full
- https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S1871187121001103
- https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1747938X2500048X
- https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/09585176.2014.975733
- https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/13596748.2020.1846313

sinha5272@gmail.com

Priyanka2309@yahoo.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 99-103
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संतुलन : समकालीन राजनीतिक विमर्श

नरेश पाल
असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति शास्त्र,
पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, तिलहर, शाहजहांपुर।

सारांश :

मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा आधुनिक राजनीतिक विमर्श के दो महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। एक ओर मानवाधिकार व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और समानता की रक्षा करते हैं, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय सुरक्षा राज्य की संप्रभुता, स्थिरता और नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करती है। इन दोनों के बीच संतुलन बनाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, विशेषकर आतंकवाद, साइबर अपराध, और वैश्विक अस्थिरता के दौर में। इस शोध पत्र में मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संबंध, संघर्ष, और संतुलन स्थापित करने के उपायों का विश्लेषण किया गया है।

इसके अतिरिक्त, लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में यह अपेक्षा की जाती है कि सरकारें सुरक्षा सुनिश्चित करते समय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का सम्मान करें। मानवाधिकार केवल नैतिक सिद्धांत ही नहीं, बल्कि संवैधानिक और अंतरराष्ट्रीय कानूनों द्वारा संरक्षित अधिकार हैं। इसलिए, राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर इन अधिकारों का अंधाधुंध सीमित किया जाना न केवल लोकतंत्र को कमजोर करता है, बल्कि नागरिकों के विश्वास को भी कम करता है। दूसरी ओर, यदि सुरक्षा उपायों में ढील दी जाती है, तो राज्य की स्थिरता और नागरिकों की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

मुख्य बिंदु – मानवाधिकार, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं समकालीन राजनीति।

परिचय –

मानवाधिकार वे मूलभूत अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल मानव होने के नाते स्वतः प्राप्त होते हैं। ये अधिकार व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता, समानता और न्याय को सुनिश्चित करते हैं तथा किसी भी सभ्य समाज की आधारशिला माने जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1948 में पारित मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (UDHR) इस दिशा में एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण कदम था, जिसने वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों की स्वीकृति और संरक्षण के लिए एक मानक स्थापित किया। इस घोषणा ने यह स्पष्ट किया कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान गरिमा तथा अधिकारों के अधिकारी हैं, और किसी भी प्रकार का भेदभाव अस्वीकार्य है।

दूसरी ओर, राष्ट्रीय सुरक्षा का तात्पर्य राज्य की संप्रभुता, अखंडता और स्थिरता की रक्षा करना तथा नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करना है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में आतंकवाद, उग्रवाद, सीमा विवाद, आंतरिक अशांति और साइबर खतरों जैसी चुनौतियों ने राष्ट्रीय सुरक्षा को अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। इन खतरों से निपटने के लिए सरकारें कठोर नीतियाँ और कानून अपनाती हैं, जिनमें निगरानी, आपातकालीन प्रावधान और सुरक्षा एजेंसियों को विशेष अधिकार देना शामिल होता है।

हालाँकि, इन सुरक्षा उपायों के कारण कई बार मानवाधिकारों पर प्रतिबंध लगाने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निजता का अधिकार और निष्पक्ष न्याय जैसी मूलभूत स्वतंत्रताओं पर सीमाएँ लगाई जा सकती हैं। इस प्रकार, मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच एक संवेदनशील संतुलन बनाए रखना आज के समय की सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। आवश्यक है कि सुरक्षा सुनिश्चित करते समय मानवाधिकारों का सम्मान भी बरकरार रखा जाए, ताकि एक न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज की स्थापना संभव हो सके।

मानवाधिकार की अवधारणा –

मानवाधिकारों का मूल उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा की रक्षा करना है, ताकि वह सम्मानजनक और सुरक्षित जीवन जी सके। ये अधिकार इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं और उन्हें किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना अपने अधिकारों का पूर्ण उपयोग करने का अवसर मिलना चाहिए। मानवाधिकारों में नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार शामिल होते हैं, जो व्यक्ति के समग्र विकास और समाज में उसकी सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करते हैं।

नागरिक और राजनीतिक अधिकार व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मतदान का अधिकार, न्याय पाने का अधिकार तथा जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा प्रदान करते हैं। वहीं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार व्यक्ति को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, उचित जीवन स्तर तथा सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने का अधिकार देते हैं। इन सभी अधिकारों का उद्देश्य केवल व्यक्ति की सुरक्षा करना ही नहीं, बल्कि उसे समाज में सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए आवश्यक अवसर और संसाधन उपलब्ध कराना भी है।

भारतीय संविधान भी मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है। संविधान में निहित मौलिक अधिकार नागरिकों को समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार तथा संवैधानिक उपचार का अधिकार प्रदान करते हैं। ये अधिकार न केवल व्यक्ति को राज्य के अनुचित हस्तक्षेप से बचाते हैं, बल्कि उसे न्याय पाने का साधन भी उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार, मानवाधिकार और भारतीय संविधान मिलकर एक ऐसे न्यायपूर्ण, समतामूलक और लोकतांत्रिक समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता का सम्मान किया जाता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा –

राष्ट्रीय सुरक्षा का अर्थ केवल बाहरी आक्रमण से सुरक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक और बहुआयामी अवधारणा है जिसमें देश की आंतरिक स्थिरता, प्रभावी कानून व्यवस्था, और सुदृढ़ आर्थिक संरचना भी शामिल होती है। किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा तभी सुनिश्चित मानी जाती है जब उसके नागरिक सुरक्षित महसूस

करें, सामाजिक सद्भाव बना रहे और राजनीतिक संस्थाएँ स्थिर एवं उत्तरदायी हों। आंतरिक अशांति, आतंकवाद, नक्सलवाद, सांप्रदायिक तनाव और संगठित अपराध जैसी चुनौतियाँ राष्ट्रीय सुरक्षा को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं, इसलिए इनका प्रभावी नियंत्रण आवश्यक है।

इसके साथ ही, आर्थिक सुरक्षा भी राष्ट्रीय सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण आधार बन गई है, क्योंकि आर्थिक अस्थिरता देश की समग्र शक्ति को कमजोर कर सकती है। बेरोजगारी, गरीबी, महंगाई और संसाधनों का असमान वितरण सामाजिक असंतोष को जन्म देते हैं, जो अंततः सुरक्षा के लिए खतरा बन सकते हैं। आधुनिक वैश्विक परिदृश्य में, साइबर सुरक्षा और जैविक सुरक्षा जैसे नए आयाम भी तेजी से उभरकर सामने आए हैं। साइबर हमले, डेटा चोरी, और डिजिटल अवसंरचना पर खतरे किसी भी देश की संप्रभुता और गोपनीयता को प्रभावित कर सकते हैं, वहीं जैविक सुरक्षा में महामारी, जैविक हथियारों और सार्वजनिक स्वास्थ्य संकटों से निपटने की क्षमता शामिल होती है।

इस प्रकार, राष्ट्रीय सुरक्षा एक समग्र अवधारणा है जो केवल सैन्य शक्ति पर निर्भर नहीं करती, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी और स्वास्थ्य संबंधी सभी पहलुओं के संतुलित विकास और संरक्षण पर आधारित होती है।

मानवाधिकार बनाम राष्ट्रीय सुरक्षा : संघर्ष के आयाम –

अक्सर राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर सरकारें नागरिक स्वतंत्रताओं को सीमित कर देती हैं। उदाहरण के लिए, आतंकवाद विरोधी कानूनों में गिरफ्तारी, हिरासत और निगरानी के अधिकार बढ़ा दिए जाते हैं, जिससे मानवाधिकारों का उल्लंघन हो सकता है। कई बार इन कानूनों के अंतर्गत बिना पर्याप्त साक्ष्य के भी व्यक्तियों को लंबे समय तक हिरासत में रखा जाता है, जिससे न्यायिक प्रक्रिया की पारदर्शिता और निष्पक्षता पर प्रश्न उठते हैं। इसके अतिरिक्त, व्यापक निगरानी तंत्र नागरिकों की निजता के अधिकार का हनन करता है और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

ऐसी परिस्थितियों में यह चिंता और भी बढ़ जाती है कि सुरक्षा के नाम पर बनाए गए ये प्रावधान कहीं सत्ता के दुरुपयोग का साधन न बन जाएँ। कई बार राजनीतिक विरोधियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं या पत्रकारों को भी इन कड़े कानूनों के दायरे में लाकर उनके अधिकारों को सीमित किया जाता है। इससे लोकतांत्रिक मूल्यों, जैसे कि स्वतंत्रता, समानता और न्याय, पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय सुरक्षा और नागरिक स्वतंत्रताओं के बीच एक संतुलन स्थापित किया जाए, ताकि देश की सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए लोकतांत्रिक अधिकारों की भी रक्षा की जा सके।

समकालीन परिप्रेक्ष्य –

21वीं सदी में आतंकवाद और वैश्विक संघर्षों ने इस बहस को और अधिक प्रासंगिक बना दिया है। विशेष रूप से 11 सितम्बर 2001 के आतंकी हमले के बाद विश्वभर में सुरक्षा नीतियों में व्यापक परिवर्तन देखने को मिला। कई देशों ने राष्ट्रीय सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए कठोर कानूनों और निगरानी व्यवस्थाओं को लागू किया। इन नीतियों के तहत व्यापक स्तर पर डिजिटल निगरानी, संदिग्ध व्यक्तियों की गिरफ्तारी, और सीमा सुरक्षा को सख्त किया गया, जिससे नागरिक स्वतंत्रताओं पर प्रभाव पड़ा।

दूसरी ओर, मानवाधिकार संगठनों, जैसे एमनेस्टी इंटरनेशनल और ह्यूमन राइट्स वॉच, ने इन कठोर

उपायों पर गंभीर चिंता व्यक्त की है। उनका मानना है कि सुरक्षा के नाम पर अपनाई गई नीतियाँ कई बार मौलिक अधिकारों 'जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निजता का अधिकार और निष्पक्ष न्याय' का उल्लंघन करती हैं। इसके अलावा, कुछ मामलों में अल्पसंख्यक समुदायों को विशेष रूप से निशाना बनाए जाने के आरोप भी सामने आए हैं, जिससे सामाजिक असंतुलन और अविश्वास की स्थिति उत्पन्न होती है।

इस प्रकार, आधुनिक युग में आतंकवाद से निपटने की आवश्यकता और मानवाधिकारों की रक्षा के बीच संतुलन बनाना एक बड़ी चुनौती बन गई है। नीति–निर्माताओं के सामने यह प्रश्न खड़ा है कि वे किस प्रकार ऐसी रणनीतियाँ विकसित करें जो न केवल सुरक्षा सुनिश्चित करें, बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवाधिकारों की भी रक्षा करें।

संतुलन की आवश्यकता –

मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा दोनों ही किसी भी राष्ट्र के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण और संवेदनशील विषय हैं। मानवाधिकार प्रत्येक नागरिक को गरिमा, स्वतंत्रता और समानता के साथ जीवन जीने का अधिकार प्रदान करते हैं, जबकि राष्ट्रीय सुरक्षा देश की संप्रभुता, अखंडता और शांति बनाए रखने के लिए आवश्यक होती है। इन दोनों के बीच संतुलन बनाए रखना इसलिए आवश्यक है ताकि राज्य अपने नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित कर सके, साथ ही उनके मौलिक अधिकारों का सम्मान भी बना रहे।

यदि राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर मानवाधिकारों की अनदेखी की जाती है, तो इससे लोकतांत्रिक मूल्यों को नुकसान पहुँच सकता है और नागरिकों में असंतोष उत्पन्न हो सकता है। दूसरी ओर, यदि केवल मानवाधिकारों पर ही अत्यधिक जोर दिया जाए और सुरक्षा उपायों को कमजोर किया जाए, तो देश की आंतरिक और बाहरी सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। इसलिए आवश्यक है कि सरकार ऐसी नीतियाँ और कानून बनाए जो दोनों के बीच संतुलन स्थापित करें।

इस संतुलन के माध्यम से ही एक ऐसा समाज निर्मित किया जा सकता है जहाँ नागरिक सुरक्षित भी हों और स्वतंत्र भी। न्यायपालिका, मीडिया और नागरिक समाज की भूमिका भी इसमें महत्वपूर्ण होती है, जो यह सुनिश्चित करते हैं कि सुरक्षा उपायों के दौरान मानवाधिकारों का उल्लंघन न हो। अतः मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संतुलन बनाए रखना एक सतत प्रक्रिया है, जो एक सशक्त, लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण राष्ट्र के निर्माण की आधारशिला है।

नीतिगत उपाय –

1. **कानूनों का संतुलित निर्माण** – कानूनों का निर्माण करते समय समाज के सभी वर्गों के हितों को ध्यान में रखना आवश्यक है। संतुलित कानून न केवल अधिकारों की रक्षा करते हैं, बल्कि कर्तव्यों को भी स्पष्ट करते हैं। अत्यधिक कठोर या अत्यधिक उदार कानून दोनों ही सामाजिक असंतुलन पैदा कर सकते हैं। इसलिए कानून निर्माण में विशेषज्ञों, जनता और नीति–निर्माताओं की सहभागिता महत्वपूर्ण होती है।

2. **न्यायपालिका की स्वतंत्रता** – न्यायपालिका का स्वतंत्र होना लोकतंत्र की आधारशिला है।

यह सुनिश्चित करता है कि न्याय निष्पक्ष और बिना किसी राजनीतिक दबाव के दिया जाए।

स्वतंत्र न्यायपालिका नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करती है और सरकार की शक्तियों पर नियंत्रण रखती है। इससे कानून के शासन (Rule of Law) को मजबूती मिलती है।

3. **पारदर्शिता और जवाबदेही** – सरकारी कार्यों में पारदर्शिता से जनता का विश्वास बढ़ता है।
जवाबदेही यह सुनिश्चित करती है कि अधिकारी अपने कार्यों के लिए जिम्मेदार रहें।
सूचना का अधिकार (RTI) जैसे उपाय इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
पारदर्शिता और जवाबदेही से भ्रष्टाचार में कमी आती है और सुशासन स्थापित होता है।

4. **नागरिक समाज की भागीदारी** – नागरिक समाज की सक्रिय भागीदारी लोकतंत्र को मजबूत बनाती है। यह नीति–निर्माण में विविध दृष्टिकोणों को शामिल करने में सहायक होती है।
गैर–सरकारी संगठन (NGOs) और सामाजिक समूह जनहित के मुद्दों को उठाते हैं।
इससे सरकार और जनता के बीच संवाद बेहतर होता है और नीतियाँ अधिक प्रभावी बनती हैं।

निष्कर्ष –

मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संतुलन स्थापित करना एक सतत और जटिल प्रक्रिया है, जो बदलती परिस्थितियों के अनुसार निरंतर विकसित होती रहती है। इसके लिए लोकतांत्रिक मूल्यों, विधि के शासन (Rule of Law) और पारदर्शिता को बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा व्यवस्था तभी प्रभावी मानी जाती है, जब वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों का सम्मान करते हुए कार्य करे। सुरक्षा के नाम पर अधिकारों का अत्यधिक हनन लोकतंत्र को कमजोर कर सकता है और जनता के विश्वास को कम कर देता है। वहीं, अत्यधिक स्वतंत्रता भी कभी–कभी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए चुनौती बन सकती है, इसलिए संतुलित दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। सरकार, न्यायपालिका और नागरिक समाज के बीच समन्वय इस संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अंततः, एक सशक्त और उत्तरदायी शासन प्रणाली ही मानवाधिकारों और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच उचित संतुलन सुनिश्चित कर सकती है।

संदर्भ सूची :

1. United Nations. (1948). Universal Declaration of Human Rights.
2. Government of India. (1950). Constitution of India.
3. Amnesty International. (2020). Annual Report 2019–2020.
4. Human Rights Watch. (2021). World Report 2021.
5. भारतीय संविधान (दुर्गा दास बसु). (2018). भारतीय संविधान : एक परिचय. नई दिल्ली : लेक्सिसनेक्सिस.
6. राम आहूजा. (2016). सामाजिक समस्याएँ. जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स.
7. National Human Rights Commission. (2022). वार्षिक रिपोर्ट. नई दिल्ली.
8. UNESCO. (2019). Human Rights Education Report.
9. एम. लक्ष्मीकांत. (2020). भारतीय राजव्यवस्था. नई दिल्ली : मैकग्रा हिल.
10. Ministry of Law and Justice. (2021). भारतीय विधिक ढांचा और मानवाधिकार.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 104–109
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

कुइयाँजान उपन्यास में पारिस्थितिकीय विमर्श

डॉ कला ए.
सह प्राध्यापक,
भारत माता कॉलेज (स्वायत्त), त्रिक्काकरा, एरणाकुलम।

आमुख :

इक्कीसवीं सदी की प्रमुख चिंताओं में से एक है पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विचार। पारिस्थितिक प्रदूषण की समस्या वर्तमान संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त है। यह केवल भारत की समस्या नहीं है, बल्कि पूरे विश्व की समस्या है। ऐसे संदर्भ में पारिस्थितिकी एवं पर्यावरणीय शोध और उनका प्रभाव महत्वपूर्ण बन जाता है ताकि लोगों की जागरूकता से ही देश के पारिस्थितिकी को संतुलित बनाया जा सकता है। पारिस्थितिक अध्ययन में प्रकृति और पर्यावरण से संबंधित विचार भी शामिल है। वैज्ञानिकों की राय में प्रकृति समस्त प्रपंच को द्योतित करनेवाला शब्द है। इसमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी एवं सभी ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र गण आदि शामिल है। पारिस्थितिकी में संपूर्ण पृथ्वी का चिंतन है। पर्यावरण समस्त जीवों के चारों ओर विद्यमान आवरण है, जिसमें सभी प्रकार के चेतन और अचेतन घटक उपस्थित है।

आलेख सार :–

कुइयाँजान उपन्यास में आज के समय में चल रही पानी की समस्याओं को उजागर किया है जिसमें भूमिगत जल के दोहन के विषय में उन्होंने लिखा कि हमने धरती से पानी तो खूब लिया मगर उसे जो देना था वह नहीं दिया। उपन्यास में सर्वत्र जनसंख्या वृद्धि, अधिक संपन्नता, जल के परंपरागत स्रोतों के प्रति हमारी उपेक्षा, जंतु और जमीन के प्रति क्रूर व्यवहार की चर्चा है। लेखिका जल प्रबंध में उत्पन्न दोष और पर्यावरण के असंतुलन की सारी जिम्मेदारी नीति नियामकों पर ही नहीं डालती, हमारी अपनी भूलों की ओर भी संकेत कर हमें आत्ममंथन की चेतावनी भी देती हैं। ऐसा लगता है कि लेखिका अपने पात्रों के साथ अपना खुद का जीवन जीता है। कुइयाँजान में लेखिका जल संकट को आम जन जीवन के नित्य कार्यों जन्म, मृत्यु, विवाह इत्यादि से जोड़कर इस रूप में प्रस्तुत करती है कि पाठक को स्वयं अपने अनुभव लगते हैं। राजस्थान को कथा का आधार बनाया है। बीकनेर, जैसेलमेर, बाड़मेर, नागौर, चुरू जैसे जिलों में नागरिक अपने दैनिक जीवन में इन अभावों से रूबरू होते ही है। मनुष्य के जीवन का अस्तित्व प्रकृति के साथ जुड़ा है।

इस आलेख का मुख्य उद्देश्य यह है कि पर्यावरण और पारिस्थितिकी के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट करना। अगर हम ने इस पर ध्यान नहीं दिये तो सारे जीव–जंतु का अस्तित्व खत्म हो जाएगा।

बीज शब्द : पर्यावरण, पारिस्थितिकी, जल संकट, बाढ़, सूखा, जलवायु परिवर्तन, वर्षा आदि।

मूल आलेख :

'कुइयाँजान' उपन्यास का परिवेश इलाहाबाद के उन घने बसे मोहल्लों का है। उपन्यास की शुरुआत एक मौलवी की मृत्यु से होती है। मौलवी के पास बदलू नामक एक लड़का रहता है। दुनिया में मौलवी ही उसका सब कुछ है। मौलवी के अंतिम नहाने के लिए पानी नहीं मिल रहा है। वह उसकी अंतरात्मा की खुशी के लिए एक घर से दूसरे घर, दूसरे से तीसरे घर भागता है। अंत में एक महिला उसका दर्द समझकर उसकी इच्छानुसर पानी ले जाने की इजाजत दे देती है। बाद में बदलू उस घर में रहने लगता है। उस घर के लोग पानी के महत्व को जानने वाले थे।

नासिरा जी कुइयाँजन उपन्यास के माध्यम से मनुष्य की ही नहीं बल्कि अन्य जीवों की प्यास को भी यों दर्शाता है कि 'नल की टोंटी पर कई बार कौआ पानी की तलाश में आ बैठ उड चुका है। वहाँ एक बड़ा हौज बना हुआ है और बरसात के दिनों में वे इस हौज में पानी का संग्रह करती है और साल भर जरूरत के अनुसार उसे खर्च कर देता है। पानी न हो तो आदमी की जान एक एक बूँद पानी के लिए तरस जाती है। कुत्ते पानी की खोज में बेचैनी से घूम रहे थे। वे बार बार नाली के पास जाते वहाँ बहते हुए पानी को लालसा से देखते फिर सूंघते और अपना मुँह पीछे खींच लेते। नाली में बहता बहता पानी इतना प्रदूषित था कि उसमें पानी अलग कर पाना संभव नहीं था, जिसे वह सतह से चाटकर अपना प्यास बुझा सकते। चिड़ियाँ घर की मुंडेरे पर बैठकर हांफ रही थी। उनकी व्याकुल और छोटी आँखें आँगन, हौज और नल को निराशा से देख रही थी, जहां भी वे पानी की तलाश में उड़ सकती थी, वे उड़ चुकी थीं। मगर हर जगह सूखा ही सूखा था। उन्हें कहीं भी पानी की एक बूँद नहीं मिल रही थी। उनकी छोटी सी जीभ उनकी तालू से चिपकी हुई थीं।'[1]

देश में पानी के परंपरागत स्रोत, कम बारिश व बेतरतीब दोहन के कारण खत्म होते जा रहे हैं। इसके कारण भूजल स्तर घटता जा रहा है। भूजल स्तर घटने के कई कारण होते हैं। घटता भूजल स्तर किसी स्थान विशेष की समस्या न होकर पूरे देश की ज्वलंत समस्या है। पिछले कई दशकों से उद्योगों, खेती–बाड़ी, विकास कार्य या अन्य उपयोग में भूगर्भीय जल पर हमारी निर्भरता बढ़ती जा रही है। इस कारण भूमिगत जल के अंधाधुंध दोहन से भू–जल स्तर निरंतर घटता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने वार्षिक वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट में कहा है कि पानी के उपयोग के तरीकों और प्रबंधन में कमियों के कारण 2030 तक दुनिया को जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। हमारे देश में अधिकांश फसलें भूजल के भरोसे होते हैं। वर्तमान परिवेश में शहरीकरण, भूमंडलीकरण, कृषि मशीनीकरण, और वैज्ञानिक प्रगति की वजह से भूजल पर दबाव बढ़ता जा रहा है। भूमि में नमी की कमी होने के कारण भूजल का स्तर घटता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की कमी और उसके बदलते स्वरूप का भी भूजल स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। लेखिका कहती है कि कहीं कहीं पर नम भूमि, निम्न जल स्तर एवं तेज ढ़लान के कारण खेती करने में कठिनाई होती है।[2]

भूमिगत जल का अंधाधुंध दोहन से भूजल स्तर गिरता जा रहा है जिसके कारण कुआँ के पानी सूखना, सिंचाई की समस्या, जल की विषाक्तता, लवणीकरण और पम्पसैट लगाने में खर्च की वृद्धि जैसी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो रही है।

लेखिका कहती है कि "कई जिलों में पानी की जाँच से पता चला कि नल–कूप से आनेवाला पानी पीने लायक नहीं है। भोजपुर जिले में पानी में हारसेनी – एक प्रकार का विष है, की मात्रा बहुत अधिक पाई गई है,

जिसका सेवन स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक है। अब सारे नल–कूप सील कर दिए गए हैं। और इस इलाके में टैंकर की सहायता से जनता को सरकार जल उपलब्ध करवा रही है।" 383 रेडियो से आने वाले समाचार के रूप में लेखिक कहती है कि रासायनिक खादों का अत्यधिक प्रयोग इसका कारण है जिसने मिट्टी में नीचे तक अपनी पैठ बना ली है और धरती के अंदर के पानी में घुल–मिलकर पानी को जहरीली बना दिया है। यह भी शोध से पता चला कि अत्यधिक सिंचाई और एक वर्ष में तीन–तीन फसल उगाने की लालच के कारण मिट्टी में लवण की मात्रा बराबर बढ़ रही है और कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कल यह भूमि फसल उगाने के काबिल ही न रह जाए।

प्रस्तुत उपन्यस में लेखका जी कहती है कि हर कहीं पानी के चलते मार पीट भी हो रही है। लेखिका ने एक अखबार की संपादकीय द्वारा अपनी चिंता यों व्यक्त करती है कि पानी के कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तनाव पनपते हैं जैसे भारत और पकिस्तान, भारत और बंगलादेश, भारत और नेपाल, सीरिया और तुर्की के बीच, भारत में तमिलनाडु और कर्नटका के बीच कावेरी नदि को लेकर तनाव की स्थिति पनप चुकी है। लेख में आगे लिखा कि जोहनिसबर्ग शिखर सम्मेलन में इस मुद्दे पर हुई बातचीत में यह तय हुआ था कि सन् 2015 तक अधिक से अधिक लोगों तक स्वच्छ जल पहुँचाए जाए। उसी वर्ष जापान में आयोजित विश्व जल मंच में यह सोचा गया कि इस पर आनेवाला खर्च 80 अरब डॉलर से बढ़ाकर 150 अरब डॉलर कर देना चाहिए। मगर प्रश्न है कि इतना पैसा आएगा कहाँ से? क्या यह केवल फाइलों में बंद आँकड़े हैं जो केवल सम्मेलनों में चर्चा तक सीमित रहेंगे?[4]

लेखिका अपने उपन्यास के द्वारा यह चेतावनी देती है कि जल को लेकर प्रांतों के बीच युद्ध छिड़ेगा। ताज्जुब नहीं कि यह गृहयुद्ध विश्वमहायुद्ध में बदल जाएगा।[5]

लेखिका जी उपन्यास में नदियों के जोड़ने के बारे में अपने कुछ पात्रों द्वारा अपनी आशंका साझे करती है। मोहल्ले का चायखाना बूढ़े लोगों का अड्डा है जहाँ बैठकर वे समाचार बाँचा जाते हैं। कुछ जवान लोग भी वहाँ आकर बैठक लगाते हैं। एक बार सरकारी स्कूल के रिटेयर अध्यापक नदियों को आपस में मिलाने के विषय में भाषण देते हैं। बड़ी नदियों को आपस में क्यों जोड़ा जा सकता। सर आर्थर कॉटन जो पेशे में इंजिनियर था यह उन्हीं की जोरदार योजना थी। लेकिन लोगों की चिंता यह थी कि हर जगह पर्याप्त मात्रा में जल मिलेंगे या नहीं? पात्र खिलौनेवाला ने कहा कि हमको मास्टरजी की बात पर विश्वास नहीं हुआ। दुई नदियन के इ शहर मा पानी की किल्लत देखो।[6] यों नासिरा जी नदियों को जोड़ने के विषय से संबंधी अपनी व्याकुलताएँ व्यक्त करती है।

नल और वाटर वर्क्स से जोडने के बाद पानी का राशन शुरू होता है। अब पानी तो बिजली पर निर्भर है। गाँव में पानी और बिजली भी कभी कभी रुक जाते हैं। गाँव में बढ़ती जनसंख्या और जलस्रोतों की कमी के कारण पानी और बिजली की आपूर्ति में कमी आ सकती है।

धरती पर होने वाले अत्याचार के कारण लोग इस दुर्दशा पर पड़ जाती है। प्राकृतिक संतुलन के बिगड़ जाने पर लोगों को कई तरह की बीमारियों से भी जूझना पड़ती है। बच्चे भी गंदी और खतरनाक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। पात्र कुरेशी का कहना है "जिन बीमारियों का नाम नहीं सुना, वे देखने और सुनने में आ रही है।"[7] भविष्य को लेकर जवान भी परेशान है। प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए एक तरफ सरकार

वृक्षारोपण की बात करती है तो दूसरी तरफ अनैतिक रूप से जंगलों की कटाई की ओर से आँखें बंद करती है। एक वर्ष में कई तरह के फसल उगाकर किसान धनवान बनना चाहते है और बिना सोचे–स्मझे मिट्टी में कीटनाशक डालते हैं। इसलिए एक दिन की रखी तरकारियाँ और फल दूसरे दिन मुरझा जाते हैं।

उपन्यास का पात्र मास्टरजी सोचता है कि गरमी की सुबह ठंडे–ठंडे पानी से जी भर नहाना सबसे बड़ा सुख है।

लेखिका कहती है कि पानी एक मानवीय आवश्यकता है न कि मानवीय अधिकार है। यह षड़यंत्र समझ में आता है कि विश्व बैंक और मुद्रा कोष के समर्थन से कई बहुराष्ट्रीय निगमों ने कई देशों में जल की आपूर्ति और अपने जिम्मे ले लिया है। इस तरह मनमाने ढ़ग से उन्होंने पानी की कीमत बढ़ा दी है। इनका लक्ष्य मध्य वर्ग या उच्च वर्ग से धन उगाहना है। बच्चे और नौजवानों में पेप्सी, कोकोकोला आदि पेयजल अत्यंत लोकप्रिय बन चुके हैं। लेखिका कहती है कि अमेरिकी पत्रिका फॉर्च्यून के अनुसार पानी उद्योग से मिलने वाला मुनाफा तेल की मुनाफा की तुलना में 40 प्रतिशत हो गया है। इसलिए बहुराष्ट्रीय निगम पानी से मिलने वाले मुनाफे से संतुष्ट होकर बड़े पैमाने पर पाइप लाइनें बनाकर गरीब देशों का पानी अमीर देशों तक पहुँचाया जाएगा। विश्व बेंक इसकी आयात व्यवस्था पर जोर दे रहा है। यह नदियों के अस्तित्व को नष्ट कर देता है। इस तरह अपनी ही नदियाँ पराई लगने लगेगी। इसका तात्पर्य यह है कि बाजार के लिए हमारी सरकारें कुछ भी समझौता आपस में कर लेती है।

लेखिका मीठी पानी की कमी के कारण होने वाली समस्याओं का चित्रण पात्र मास्टर जी के द्वारा व्यक्त करती है। वे कई तरह के भयानक सपनों को देखने लगते हैं। नदियाँ एक दूसरे से मिलाई गई और इसके कारण गाँव, जंगल बस्तियाँ उजड़ रहे हैं। जंगलों की कटाई के कारण दूर–दूर तक मैदान ही दिखते हैं। कुछ स्थानों पर पानी ने दलदल बना दिये हैं और इसकी वजह से लोग बरबाद हो गए हैं। जल स्तर नीचे हो जाने के कारण प्रांतों के बीच पानी बराबर न पहुँचने से लोगों के बीच तनाव उत्पन्न हो गए हैं। नदियों का समुद्र में जाकर न मिलने से मीठे पानी की कमी से करोड़ो मझलियों एवं समुद्री जीवों एवं मछलियों का तड़प–तड़प कर मरना आरंभ हो गए हैं। नदि जो लवणों, विषैली पदार्थों अपने साथ ले जाकर समुद्र में डालती है, उसका कई जगह भराव और उससे बने बडे–बड़े टीले नजर आने लगा है। नदी सड़े–गले पदार्थों को समुद्री जीवों तक नहीं पहुँचा सके। धरती पर जीने वाले जीवों को ऑक्सीजन न पैदा कर सकने से दम घुट के मरने वालों की संख्या बढ़ गई है और इन सभी की वजह से प्रदूषण का संकट पैदा हो गए हैं। बादलों ने बरसना छोड़ दिया और चिड़ियों की चहचहाहट कहीं नहीं सुन पा रही है और कहीं कोई इंसान भी नहीं दिख रहा है। लेखिका इस तरह पात्र मास्टर जी की एक सपने के द्वारा स्वच्छ जल के अभाव से संबंधित आने वाली दूरगामी समस्याओं को दर्शाती है। पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ जाने से होने वाले आपदाओं का असर सिर्फ मनुष्य पर ही नहीं बल्कि सभी जीव–जंतुओं और प्रकृति पर भी पड़ती है।

उपन्यास का नायक कमाल एक डॉक्टर है। वे अपने हाथ में सिरिंच के साथ कलम भी लेते हैं। वे एक समाजसेवी भी हैं। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि तो इलाहाबाद है। कमाल के सामने एक सूखा वीरान भारत पड़ा है। वह एक हफ्ते–भर के लिए राजस्थान और बुंदेलखंड के दौर के लिए निकलता है। यात्रा के वक्त वे यह सोचते रहे कि पानी की समस्याओं को सरकार को पूरी तरह दोषी मानना उचित है या नहीं। उसे मालूम है कि

हर साल बढ़ती जनसंख्या को पर्याप्त जल उपलब्ध कराना सरल बात नहीं है। कुत्ते, बिल्ली की तरह बच्चे पैदा करने वाले माँ बाप को यह नहीं समझते हैं और परिवार नियोजन को स्वीकार करने में वे झिझकते हैं। पानी की कमी से मरीजों की देखभाल करना डॉक्टरों के संबंध में एक चुनौती है। अस्पताल की सफाई ठीक से न हो पाने के कारण मरीजों के लिए गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो सकता है। कमाल बीकानेर की यात्रा करते वक्त दूसरों की बातें सुनते रहे। किसी यात्री कहता है कि हमारे पास जल का अपार संपदा है लेकिन उसे व्यवस्थित ढ़ग से ठीक नहीं कर पा रहे हैं। नाशनल वाटर ब्रदरहुड ने जमीन से जुड़े लोगों को जल संरक्षण और जल संसाधनों की सुरक्षा और उसके प्रति जागरूकता बढ़ाने का प्रयास शुरू किया है। पानी की बॉटलिंग का धंधा भी यात्रियों के संवाद में एक समस्या के रूप में उभर आता है। उदाहरण के रूप में वे केरल के पालक्काड़ जिले के प्लाचिमडा गाँव में स्थित कोकोकोला कंपनी के बॉटलिंग संयंत्र के बारे में कहते हैं। कंपनी 300 से 600 फीट गहरे 30 बोरवेल खोदकर प्रतिदिन 15 लाख मीटर पानी जमीन से खींचने लगते हैं। इसके फलस्वरूप सारे पोखर, कुएँ, दो बड़े जलाशय और दो दान के खेत सूख जाते हैं। इससे गाँव के आदिवासियों पर नए संकट आ जाते हैं। लोगों का सवाल यह है कि वहाँ के पानी का अधिकार गाँव वालों का या बहुराष्ट्रीय कंपनी का है? इस समस्या के बारे में लोगों को जागरूप बनाने की आवश्यकता है। वरना एक दिन हमारे नदी का पानी दूध की तरह खरीदकर इस्तेमाल करना पड़ेगा।

बाढ़, सूखा योजनाओं में धन के अभाव के कारण काम मंद गति से चलता है और हर साल लोग मुसीबतें झेलते हैं। राजस्थान के कई जगह पर लोग सूखे की चपेट में आ चुके हैं। राजस्थान के कई जिलों में भूजल स्तर गिरा हुआ है। किसी यात्री कहता है कि सह्याद्री को बंजर बनाए जाने के कारण महाराष्ट्र के पुणे और औरंगाबाद सूखे के चपेट में आते हैं। कालाहंडी में भी वन का काट जाना सूखे का कारण बन जाता है। तमिलनाडु के रामनाथपुरम, बुनियादीपुरम में ताल, पोखरों की स्थिति भी समान है। लोगों को पानी की आवश्यकता है इसलिए वे वाइगइ नदी के किनारे गड़ढे बनाकर पीने का पानी उपलब्ध करवाती है। कुछ गाँवों में मीठे पानी से भरे हुए कुँआँ से दलित लोगों को तीन रुपए घडा पर वहाँ का आदमी पानी बेचता है। सूखा के बाद बारिश में जमा गंदगी से पनपी सम्स्याओं को भूगतता है शहर।

उपन्यास में पात्र कमाल सेमिनार में भाग लेने जाता है। सेमिनार के बहाने लेखिका सिंचाई प्रणाली की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। सेमिनार के पहले सत्र का विषय ङै मध्य बिहार में आहर–पइन सिंचाई प्रणाली। यह बिहार की पारंपरिक बाढ़ संचयन प्रणाली है। इसे बिहार के किसानों द्वारा सिंचाई के सबसे विश्वसनीय स्रोत माना जाता है।

निष्कर्ष :-

कह सकते हैं कि धरती के प्रत्येक प्राणी के जीवन में संतुलन लाना है। पारिस्थितिकी चिंतन वर्तमान समय में सिर्फ मनुष्य पर ही नहीं केन्द्रित करते हैं बल्कि समस्त जीव–जंतुओं के संरक्षण पर विचार करता है। प्राकृतिक संतुलन के बिगड जाने पर सभी जीव जंतुओं को भी इसके दुष्परिणामों से झेलनो पड़ता है। कुइयाँजान उपन्यास में जल संकट से आने वाली समस्याओं को दर्शाया गया है। लेखिका प्रस्तुत उपन्यास द्वारा बताया गया है कि भारत में जल संकट के मूल कारण कई कारकों के संयोजन में निहित है जिनमें भूजल का अत्यधिक दोहन, अपर्याप्त वर्षा जल संचयन, अव्यवस्थित जल संसाधनों का प्रयोग आदि शामिल है। पोखर, नल, जलाशयों

आदि का प्रदूषण और अकुशल कृषि सिंचाई विधियाँ समस्या को और बढ़ा देती हैं जिससे पानी की उपलब्धता और गुणवत्तता कम हो जाती है। जल संसाधनों के संरक्षण और प्रभावी समाधानों को लागू करने के लिए लोगों के बीच जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. नासिरा शर्मा – कुइयँजन – पृ. सं– 77 सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. वही 78
3. वही 85
4. वही 85
5. वही 89
6. वही 85
7. वही 93
8. पर्यावरण और विकास – सुभाष शर्मा – प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली।
9. नासिरा शर्मा – कुइयँजन – सामयिक प्रकाशन।
10. वाग्ङ्मय हिन्दी पत्रिका – 'जल की व्यथा कथा कुइयाँजान के संदर्भ में' – 5 नवंबर 2010
11. सेतु पत्रिका – इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यास में पर्यावरणीय विमर्श – दिसंबर 2018

डॉ कला ए, गिरिनगर –71, कडवंत्रा, एरणाकुलम, कोच्चि–682020

मोब. 9995467435

Kala.athmanandan@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 104–109
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

English Communication Skills and Employability in Non-Native English-Speaking Countries

Dr. S. Sudha,
Assistant Professor, Department of English, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Nava India, CBE-641 006, Tamilnadu, 9844724542
Dr. M. Mary Velanganni,
Assistant Professor, Department of English, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Nava India, CBE-641 006, Tamilnadu., 7373949192
Dr. Vijayalakshmi . S,
Assistant Professor, Department of English, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Nava India, CBE-641 006, Tamilnadu., 9677883210
Dr. B. Abirami,
Assistant Professor , Department of English, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Nava India , CBE-641 006, Tamilnadu., 7373066266
Mr. B. Manojkumar,
Assistant Professor, Department of English, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Nava India, CBE-641 006, Tamilnadu., 8883809258
Dr. K. Angel Vinoliya,
Assistant Professor , Department of English, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Nava India, CBE-641 006, Tamilnadu., 9942724542
Dr. S. Swarnalatha,
Associate Professor, Department of Hindi, Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Nava India, CBE-641 006, Tamilnadu., 9787601960

Introduction :

In the era of globalization, English has emerged as the dominant language of international communication, business, education, and technology. For individuals in non-native English-speaking countries, proficiency in English communication skills is no longer optional but essential for academic

success and professional advancement. Employability, defined as the ability to gain and maintain employment, is increasingly influenced by one's ability to communicate effectively in English.

English communication skills are crucial for employability in non-native speaking countries, transforming from a competitive edge to a necessity for career advancement, particularly in multinational industries. High proficiency in reading, writing, listening, and speaking increases job prospects, while poor skills often lead to unemployment.

Career Growth & Promotion : Excellent command of English provides opportunities for promotion and better job positions.

Challenges and Strategies for Improvement :

Limited Practice Environments : Non-native speakers often struggle to practice English in their daily lives.

Effective Techniques : Strategies such as strategic breathing to improve speech, and vlogging to practice everyday vocabulary can help improve proficiency.

Skill-Oriented Training : Educational institutions must focus on integrating English language training with practical skill development to address the employability gap.

Importance of English in the Global Job Market :

English functions as the global lingua franca across industries such as information technology, engineering, tourism, and international trade. Multinational corporations often adopt English as their official language, even in non-English-speaking countries.

Studies reveal that employees with strong English communication skills are more likely to secure jobs and perform effectively in the workplace.

Furthermore, engineers and professionals with good communication skills often have better employment prospects than those with only technical expertise.

English proficiency also correlates with economic development. Countries with higher levels of English proficiency tend to experience better integration into the global economy and improved economic outcomes.

Components of English Communication Skills :

English communication skills are multifaceted and include the following key components :

1. Listening Skills :

Listening is fundamental for understanding instructions, participating in meetings, and responding appropriately in workplace interactions.

2. Speaking Skills :

Effective spoken communication enhances confidence and enables individuals to present ideas

clearly, participate in discussions, and engage in negotiations.

3. Reading Skills :

Reading proficiency helps employees understand documents, emails, manuals, and technical materials.

4. Writing Skills :

Writing skills are crucial for drafting reports, emails, and professional documents. In many workplaces, written communication reflects professionalism and competence.

English Communication and Employability :

1. Increased Job Opportunities :

Individuals with strong English skills have access to a wider range of job opportunities, including positions in multinational companies and international organizations. Studies in Europe show that higher English proficiency increases employment probability significantly.

2. Workplace Performance :

English communication skills contribute to better workplace performance. Employees who communicate effectively can collaborate efficiently, avoid misunderstandings, and contribute to organizational success.

3. Career Advancement :

Professionals with strong communication skills are more likely to be promoted, as they can handle leadership roles, client interactions, and cross-cultural communication.

Challenges Faced by Non-Native English Speakers :

Despite its importance, non-native speakers face several challenges :

1. Linguistic Barriers :

Many learners struggle with pronunciation, grammar, and vocabulary, which can hinder effective communication.

2. Lack of Confidence :

Fear of making mistakes often prevents individuals from speaking confidently in professional settings.

3. Educational Inequality :

Access to quality English education varies significantly between urban and rural areas, affecting skill development.

4. Social and Psychological Factors :

Research highlights that personality traits, motivation, and social environment influence language acquisition and employability.

5. Workplace Discrimination :

Non-native speakers may face bias, especially in roles where native-like fluency is preferred, affecting hiring decisions.

Role of Education Systems :

Educational institutions play a crucial role in developing English communication skills :

- Integration of English as a medium of instruction
- Emphasis on practical communication rather than rote learning
- Inclusion of soft skills and personality development programs

In many Asian countries, reforms in English education have been introduced to improve graduate employability and meet global market demands.

Impact of Technology on English Learning :

Technological advancements have transformed language learning :

1. Online Learning Platforms :

Digital tools provide access to interactive courses, enabling self-paced learning.

2. Artificial Intelligence (AI) Tools :

AI-based systems help learners practice speaking, receive feedback, and improve pronunciation.

Recent research shows that AI tools can help reduce language barriers and improve communication skills among non-native speakers.

Strategies to Improve English Communication Skills :

1. Practice and Exposure :

Regular practice through conversations, reading, and writing enhances fluency.

2. Participation in Group Discussions :

Engaging in discussions improves speaking and listening skills.

3. Professional Training Programs :

Soft skills training programs can bridge the gap between academic learning and workplace requirements.

4. Use of Technology :

Language learning apps, online courses, and AI tools can support continuous improvement.

Case Studies and Global Perspectives :

India :

In India, English proficiency is considered a key factor in employability, especially in sectors like IT and business process outsourcing.

China :

Chinese universities emphasize cross-cultural communication skills to prepare students for global careers.

Future Trends :

The importance of English communication skills is expected to grow due to :

- Increasing globalization
- Expansion of remote work opportunities
- Growth of international education

At the same time, technological innovations such as AI translation tools may reduce language barriers, making communication more inclusive.

Conclusion :

English communication skills are a critical determinant of employability in non-native English-speaking countries. They not only enhance job opportunities but also improve workplace performance, career advancement, and cross-cultural interaction. However, challenges such as linguistic barriers, lack of confidence, and educational inequality must be addressed through effective policies and innovative teaching methods.

As globalization continues to shape the job market, individuals and institutions must prioritize the development of English communication skills to remain competitive in the global economy.

References Books :

- Crystal, D. (2003). *English as a Global Language*. Cambridge University Press.
- Graddol, D. (2006). *English Next*. British Council.
- Harmer, J. (2007). *How to Teach English*. Pearson Education.
- Richards, J. C., & Rodgers, T. S. (2014). *Approaches and Methods in Language Teaching*. Cambridge University Press.
- Brown, H. D. (2000). *Principles of Language Learning and Teaching*. Longman.

swarnalathar023@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 115–117
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

समसामायिक कला जगत में जयपुर की महिला कलाकारों के चित्रों एवं शिल्पों के माध्यम

अमनदीप कौर, शोधार्थी
डॉ. सोनिया रानी, Asst. Prof.
Faculty of Art & Craft Science
टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

किसी भी महिला कलाकार की कला शैली व माध्यम एकाएक निर्मित नहीं होते। इसके विकास में अनेक तत्वों का योगदान होता है। इन तत्वों में युगीन परिवेश अर्थात तत्कालीन युग की परिस्थितियां तथा परिवेश सर्वाधिक प्रभावित करती है। महिला कलाकार व समाज का गहन सम्बन्ध है। एक ओर तो समाज महिला कलाकारों को प्रभावित करता है तो दूसरी ओर महिला कलाकार भी अपने सृजन के माध्यम से समाज को अभिव्यक्त करती है। प्रत्येक महिला कलाकार अपने आस–पास के माहौल, घटनाओं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करना चाहती है। महिला कलाकार अमूल्य अनुभूतियों को आकार देने के लिये कई प्रकार के माध्यमों की खोज करती है, उनका प्रयोग करती है। कई बार तकनीक के अभाव में अनुभूतियों को साकार करना कठिन होता है। महिला कलाकार इन्हीं भावाभिव्यक्तियों के लिये अनेक सशक्त तकनीकों व माध्यमों का सफल प्रयोग करती रही है। इन्होंने कोई एक ही माध्यम या एक ही तकनीक में बंधकर रहना पसंद नहीं किया तथा जो स्वयं को अच्छा लगा वही नये–नये प्रयोग दिन–प्रतिदिन अपने सृजन में रूपायित किये हैं। अतः चित्र का मुख्य आधार और अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम रेखांकन होता है।

समसामायिक कला जगत में जयपुर की महिला चित्रकारों एवं शिल्पकारों ने अपने चित्रों एवं शिल्पों में सहज एवं सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने के लिये समर्थ प्रयास किये हैं। आज के युग में हर महिला कलाकार नये–नये माध्यमों का चुनाव करना पसंद करती है। ठीक उसी प्रकार जयपुर की इन महिला कलाकारों ने भी अलग–अलग माध्यमों में कार्य किया है। अतः हर चित्रकार व मूर्तिकार के चित्रों एवं शिल्पों की निर्माण विधियां भिन्न–भिन्न माध्यमों में पाई समसामयिक कला जगत में जयपुर की महिला चित्रकारों एवं शिल्पों के माध्यम कुछ महिला कलाकारों के चित्रों व मूर्तियों की तकनीक तो बिल्कुल ही अलग पाई गई है। नये–नये माध्यमों का प्रयोग किया गया है। ग्राफिक महिला कलाकारों के तकनीकी अनुभव में रंगीन लिथोग्राफी, सेरियोग्राफी, विस्कोसिटी और मिश्रित माध्यम जैसी नई तकनीकें भी जुड़ी हुई हैं। महिला चित्रकारों ने छापाचित्रकला की विभिन्न पद्धतियों– परिष्कृत रेखा से युक्त एचिंग और एंग्रेविंग चित्र, स्पष्ट रंगसंगति वाले लिथोग्राफ और उत्तम टेक्सचर से युक्त

वुडकट तथा लिनोकट चित्र में उत्कृष्ट तरीके के चित्र बनाये और ग्राफिक माध्यम की विविध संभावनाओं को उजागर किया। इन महिला कलाकारों की कृतियों में सामान्य से अत्यन्त परिष्कृत स्तर तक को देखा जा सकता है।

महिला चित्रकारों ने तैलचित्र, जलरंग चित्र, एक्रेलिक चित्र, कोलाज चित्र, रिलीफ चित्र, रेत से बने चित्र, चारकोल चित्र, छाया चित्र, सेरीयोग्राफी, फोटोलिथो, लिथोग्राफी, जिन्क प्रिन्ट, शैविंग फोम क्रीम प्रिन्ट, डिजीटल पेन्टिंग्स, लिनोकट, वुडकट, पेपर मैशी पेंन्टिंग्स, विस्वोसिटी मैथड़ के चित्र, कोलाज में डिजिटल चित्रण, म्यूरलस (भित्ति चित्र), सीमेन्ट कोन्क्रीट से बनाई गई मूर्तियाँ, मार्बल से बनी मूर्तियाँ, ब्रोन्ज की मूर्तियाँ, स्क्रेप मेटल से बनी मूर्तियाँ, लकड़ी की मूर्तियाँ व ग्राफिक महिला कलाकारों की तकनीकी अनुभव में सिल्क स्क्रीन, रंगीन लिथोग्राफी और मिश्रित माध्यम जैसी नई तकनीकों का प्रयोग इन महिला कलाकारों ने अपने चित्रों में किया और मृदमांड (पॉटरी), महिला कलाकार–शिल्पियों में सिरेमिक एक पसंदीदा माध्यम है। सिरेमिक, महिला कलाकारों की कलाकृतियों में कुछ अलग उभरे हुए माध्यम के रूप में प्रयोग में लिया गया है। सिरेमिक से रिलीफ चित्रों को भी नया रूप प्रदान किया गया है।

समसामयिक कला जगत में इन महिला कलाकारों ने अपनी कृतियों का निर्माण मनोभावों से किया है। कला के प्रति सम्पूर्ण आत्म समर्पण से अपनी कृति का निर्माण किया व कलाकृतियों में सूक्ष्मता एवं अरूपता की बाढ ही ला दी गई। ये महिला कलाकार मौलिकता, नवीनता, उपयोगिता के नाम पर ऐसी कलाकृतियों का निर्माण कर रही हैं जो कलाकृतियाँ स्वयं में सौन्दर्य की मूल भावना को समाहित किए होती हैं। सौन्दर्य, महिला कलाकार के सौन्दर्य बोध से युक्त होकर कलाकृति में सजीव हो उठता है। अतः जयपुर की किस महिला चित्रकार व मूर्तिकार ने किस–किस माध्यम से कार्य किया है विस्तार से जानते हैं।

प्रमुख माध्यम :

सीमेन्ट-कोन्क्रीट में मूर्तियाँ : सीमेन्ट कोन्क्रीट में मूर्तियाँ ऊषा रानी हूजा ने बनाई। इन मूर्तियों की लम्बई 16 फीट तक देखी जा सकती है व यह मूर्तियाँ जयपुर के कई स्क्रीज (चौंक) पर देखी जा सकती है। ऊषा पहली महिला मूर्तिकार थी जिसने सीमेन्ट कोन्क्रीट को अपनी मूर्तियों का माध्यम बनाया। अतः ऊषा रानी सब कार्य स्वयं करती थी कारीगरों की सहायता कभी नहीं ली।

ब्रोन्ज (धातु) की मूर्तियाँ : ब्रोन्ज (धातु) में सुमन गौड व ऊषा रानी हूजा ने कार्य किया व उनकी धातु से बनी मूर्तियों को देश–विदेश में अनेकों जगहों पर रखा गया है।

संगमरमर/मार्बल ने बनी मूर्तियाँ :- छेनी हथोडी उठाकर कार्य करना महिलाओं के लिए काफी मुश्किल है परन्तु सुमन गौड संगमरमर अपना माध्यम बनाए हुए है और मूर्तियों को सुन्दर आकारों में गढ रही है।

लकड़ी की मूर्तियाँ : सुमन गौड द्वारा बनाई लकडी की मूर्तियों को यूरोप के देशों में प्रदर्शित किया गया है।

म्यूरलस (भित्ती चित्र) :- भित्ती चित्रण में फ्रेस्को ब्रूनो, फ्रेस्को सेक्को, छोटी–छोटी टाइल्स बनाना, जयपुर फ्रेस्को, एनकास्टिक, मणिकुट्टिम आदि माध्यमों में डॉ. किरण सरना, डॉ. रीता प्रताप, डॉ. पुष्पा दुल्लर, इला यादव, इन्दू सिंह, डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, मंजू मिश्रा, डॉ. ममता चतुर्वेदी आदि ने कार्य किया है।

बाटिक कला :- बाटिक में डॉ. रीता प्रताप ने काफी मात्रा में चित्रण कार्य किया है व कई स्थानों पर इनके बाटीक चित्रों को संग्रहीत भी किया गया।

तैल रंगों में चित्रण :- तैल रंगों में कई महिला कलाकारों चित्र बनाए जिसमें सबसे प्रमुख रूप से रीता

प्रताप ने कार्य किया है। इनके अलावा डॉ. रेखा भटनागर, डॉ. कृष्णा महावर, संगीता जुनेजा, डॉ. किरण सरना, डॉ. पुष्पा दुर्लर, उमा शर्मा, मन्जू परिहार, डॉ. बीना जैन, आशा भार्गव, सारिका, रिता पान्डे आदि इन सब ने भी तैल रंगों को अलग–अलग तरीकों से चित्रों में प्रयोग लिया है।

एक्रेलिक रंगों में चित्रण :– अर्चना जोशी, डॉ. किरण सरना, डॉ. पुष्पा दुर्लर, डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, डॉ. ममता चतुर्वेदी, मीनू श्रीवास्तव, शालीनी, ममता रोकना, इरा ताक, गीता सौखिया, डॉ. रेखा भटनागर, अमिता राज गोयल, सारिका, नीलू कनवारिया आदि ने एक्रेलिक रंगों को अपना माध्यम बनाया है।

जलरंग चित्रण :– जल रंग में सबसे अधिक कार्य अन्नपूर्णा शुक्ला ने दृश्य चित्रों को चित्रित करने में किया है।

कोलाज चित्र :– कोलाज में प्रमुख रूप से मणी भारतीय ने उत्कृष्ट कार्य किया है साथ ही मीनु श्रीवास्तव, डॉ. ममता चतुर्वेदी, आशा भार्गव के कार्यों में भी कोलाज का समावेश है।

रिलीफ चित्र : सुरभि सोनी द्वारा बनाए गए सभी चित्र रिलीफ चित्र है। सुरभि प्रमुख रूप से इसी माध यम में फूलों का चित्रण करती है। सुरभि ने भी कुछ चित्र रिलीफ में बनाए हैं।

पेपर मैशी में चित्र :– इस माध्यम को केवल एक ही महिला चित्रकार मंजू मिश्रा ने अपनाया। इन्होंने पेपर मैशी से ही चित्रों को अलग–अलग तरीकों से बनाया है।

रेत (मिट्टी) से बने चित्र :– रेत से कार्य करने वाली देश की ही नहीं बल्कि विदेश की पहली महिला चित्रकार है डॉ. वीरबाला भावसार है। इन्होंने रेत को अपने चित्रों का माध्यम बनाया है।

चारकोल चित्र : चारकोल में डॉ. रेखा भटनागर, मीनू श्रीवास्तव, डॉ. ममता चतुर्वेदी, नीलू कनवारिया इन सभी ने कार्य किया।

आपल पेस्टल : डॉ. रेखा भटनागर, कुक्कू माथुर, नीलू कनवारियाँ के चित्रों का माध्यम रहा है आपल पेस्टल।

इमपेस्टो चित्र :– इमपेस्टो में डॉ. रीता पाण्डे व सारिका ने कार्य किया। डॉ. रीता पाण्डे का इमपेस्टो में चित्रण प्रमुख माध्यम रहा है।

डिजिटल चित्रण :– डिजिअल चित्रण को डॉ. किरण सरना, इन्दू सिंह, डॉ. अर्चना जोशी ने प्रमुख रूप से अपने चित्रों के माध्यम के रूप में चुना है।

विस्कोसिटी :– विस्कोसिटी में अब तक प्रमुख रूप से केवल इन्दू सिंह ही कार्य कर रही है।

लिथोग्राफी : डॉ. अर्चना जोशी, इन्दू सिंह, इला यादव का प्रमुख लिथोग्राफी या फोटोलिथो माध्यम रहा है।

सेरीयोग्राफी : इन्दू सिंह ने सेरीयोग्राफी को भी अपने ग्राफिक चित्रण का प्रमुख माध्यम बनाया।

लिनोकट :– लिनो ग्राफिक माध्यम का प्रमुख हिस्सा है। इस माध्यम में इन्दू सिंह, इला यादव, मोनिका चौपडा, रीता प्रताप, ने कार्य किया।

वुडकट :– इन्दू सिंह, इला यादव, रीता प्रताप ने वुडकट में प्रिन्ट बनाये है।

जिन्क प्रिण्ट :– इला यादव, इन्दू सिंह, डॉ. अर्चना जोशी, रीता प्रताप ने इस माध्यम में कार्य किया।

संदर्भ :

☐ उपरोक्त विवरण विभिन्न महिला कलाकारों से प्राप्त कर लिखा गया है।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 118–121
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Effective Classroom Management Techniques And Improvement In Student Behavior : A Detailed Study

Dr. Mahesh Kumar Sharma
Principal in D.EL.ED., Department of Education,
Institute of Advanced Studies in Education (IASE),
Gandhi Vidya Mandir, Sardarshahar

Abstract :

Effective classroom management is considered one of the most significant determinants of academic success and positive student behavior. It is observed that structured classroom management techniques not only enhance discipline but also foster engagement, motivation, and socio-emotional development among students. The present study examines various evidence-based classroom management strategies and their impact on student behavior improvement. A qualitative and quantitative review-based approach has been adopted to analyze different models, including positive reinforcement, structured routines, teacher-student relationship building, and restorative practices. The findings indicate that proactive strategies significantly reduce disruptive behavior and enhance academic engagement. It is concluded that effective classroom management requires consistency, empathy, structured planning, and reflective teaching practices.

Keywords : Effective Classroom Management, Student Behavior Improvement, Positive Reinforcement, Classroom Discipline, Teaching Strategies

Introduction :

Classroom management plays a crucial role in shaping the learning environment. It is observed that an organized and well-managed classroom promotes academic achievement and behavioral stability among students. Ineffective management often results in disruptions, reduced instructional time, and decreased student motivation.

The concept of classroom management extends beyond maintaining discipline. It includes structuring the environment, establishing expectations, fostering relationships, and encouraging responsible behavior. According to modern educational psychology, student behavior is influenced

by classroom climate, teacher attitude, peer interaction, and institutional policies.

The objective of this study is to examine effective classroom management techniques and analyze their impact on improving student behavior.

Review of Literature :

Previous studies indicate that proactive classroom management strategies are more effective than reactive disciplinary measures. Research in behavioral psychology suggests that reinforcement-based approaches contribute significantly to behavioral improvement.

It has been found that positive teacher-student relationships reduce behavioral conflicts and increase student participation. Furthermore, structured routines and clearly communicated expectations help in minimizing uncertainty and confusion in classroom settings.

Scholarly investigations also reveal that restorative practices encourage accountability and emotional growth among learners.

Research Objectives :

The study has been conducted with the following objectives :

- To identify effective classroom management techniques.
- To analyze the impact of these techniques on student behavior.
- To evaluate the relationship between teacher strategies and classroom discipline.
- To suggest practical recommendations for educators.

Research Methodology :

The present study adopts a descriptive research design. Data has been collected through secondary sources such as academic journals, books, and educational reports. In addition, a small-scale survey was conducted among 50 teachers from secondary schools to understand practical challenges and successful strategies in classroom management.

Statistical analysis has been performed using percentage analysis method. Behavioral changes were evaluated based on teacher responses and classroom observations.

Effective Classroom Management Techniques

1. Establishing Clear Expectations :

It is observed that clearly defined rules and procedures reduce ambiguity. When expectations are communicated at the beginning of the academic session, students demonstrate improved compliance and responsibility.

2. Positive Reinforcement :

Positive reinforcement includes verbal praise, reward systems, and recognition programs. It has been found that acknowledging appropriate behavior increases its frequency.

3. Consistent Discipline Strategies :

Consistency in applying rules ensures fairness and builds trust. Inconsistent enforcement often leads to confusion and behavioral issues.

4. Building Teacher-Student Relationships :

Supportive interactions foster emotional security. Students who feel respected and valued are less likely to engage in disruptive behavior.

5. Structured Classroom Routines :

Daily routines help students understand expectations. Structured transitions between activities reduce idle time and misbehavior.

6. Use of Restorative Practices :

Restorative discussions allow students to reflect on their actions. This approach emphasizes accountability rather than punishment.

Data Analysis And Findings :

The survey results indicate the following :

Table 1 : Impact of Classroom Management Techniques On Student Behavior

Technique	Teachers Reporting Positive Impact (%)
Clear Expectations	88
Positive Reinforcement	92
Consistent Discipline	85
Relationship Building	90
Structured Routines	87

The findings suggest that positive reinforcement and relationship building are perceived as the most effective strategies. It is observed that classrooms implementing structured routines report fewer behavioral disruptions.

Discussion :

The findings align with existing literature that proactive and relationship-centered approaches are more effective than punitive measures. It is evident that classroom management is not limited to control but involves guidance and emotional support.

Behavior improvement is gradual and requires sustained effort. Teachers who demonstrate empathy, consistency, and clarity are more successful in maintaining discipline.

Conclusion :

The study concludes that effective classroom management techniques significantly contribute to improvement in student behavior. Proactive strategies such as positive reinforcement, clear

expectations, and relationship building are found to be highly effective.

It is recommended that teacher training programs include structured modules on classroom management. Schools should encourage collaborative learning environments and provide support systems for teachers.

Future research may include experimental studies to measure long-term behavioral changes using specific intervention models.

Conflict of Interest :

It is declared that there is no conflict of interest regarding this research.

Acknowledgement :

The authors express gratitude to participating teachers and academic institutions for their cooperation and support in conducting this study.

References

- Emmer E.T., Sabornie E.J., "Handbook of Classroom Management", Routledge, 2015.
- Evertson C.M., Weinstein C.S., "Classroom Management As A Field Of Inquiry", Handbook of Classroom Management, 2006, 3–15.
- Marzano R.J., "Classroom Management That Works", Association for Supervision and Curriculum Development, 2003.
- Skinner B.F., "The Behavior Of Organisms", Appleton-Century, 1938.
- Jones F.H., "Tools For Teaching", Fredric H. Jones & Associates, 2007.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 122–132
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

SHG समूह की प्रमुख भूमिका : महिला सशक्तिकरण, सामाजिक परिवर्तन और ग्रामीण विकास का एक प्रभावी माध्यम

Anju Kumari, Research Scholar
Economics Department, Radha Govind Univercity, Ramgarh.

सारांश :

स्वयं सहायता समूह (Self Help Group: SHG) भारत के ग्रामीण और अर्ध–शहरी समाज में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण वाहक के रूप में उभरे हैं। विशेष रूप से महिलाओं के बीच SHG ने बचत, ऋण, आत्मनिर्भरता, उद्यमिता, निर्णय–क्षमता, सामाजिक सहभागिता तथा सामुदायिक नेतृत्व को बढ़ावा दिया है। SHG की अवधारणा केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक जागरूकता, लैंगिक समानता, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, वित्तीय समावेशन, लोकतांत्रिक भागीदारी और स्थानीय विकास की व्यापक प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। प्रस्तुत लेख में SHG समूह की प्रमुख भूमिकाओं का समग्र विश्लेषण किया गया है। लेख में SHG के स्वरूप, उद्देश्य, कार्यप्रणाली, महिला सशक्तिकरण में योगदान, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूमिका, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया, सरकारी योजनाओं से जुड़ाव, चुनौतियों तथा भविष्य की संभावनाओं का गंभीर विवेचन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि SHG केवल एक वित्तीय संस्था नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माण, आत्मसम्मान, सहभागिता और सतत विकास का जनआंदोलन है। यदि SHG को संस्थागत प्रशिक्षण, विपणन सहायता, डिजिटल सशक्तिकरण और नीति–समर्थन प्राप्त हो, तो यह ग्रामीण भारत के समावेशी विकास का सबसे प्रभावशाली मॉडल बन सकता है।

कुंजी शब्द : स्वयं सहायता समूह, SHG, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास, वित्तीय समावेशन, उद्यमिता, सामाजिक परिवर्तन, आत्मनिर्भरता।

1. प्रस्तावना :

भारत एक विशाल ग्रामीण समाज वाला देश है, जहाँ जनसंख्या का एक बड़ा भाग गाँवों में निवास करता है। ग्रामीण भारत में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, सामाजिक असमानता, लैंगिक भेदभाव, संसाधनों की कमी तथा आर्थिक निर्भरता जैसी अनेक समस्याएँ लंबे समय से विद्यमान रही हैं। इन परिस्थितियों में विकास की ऐसी प्रक्रिया की आवश्यकता अनुभव की गई जो केवल ऊपर से थोपी हुई न हो, बल्कि लोगों की सहभागिता पर

आधारित हो। इसी संदर्भ में स्वयं सहायता समूह या SHG की अवधारणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण रूप में सामने आई। SHG मूलतः ऐसे छोटे, स्वैच्छिक, समान सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों का समूह होता है, जो नियमित बचत करते हैं, सामूहिक निर्णय लेते हैं, समूह निधि का निर्माण करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर सदस्यों को ऋण उपलब्ध कराते हैं। भारत में SHG मॉडल ने विशेष रूप से महिलाओं के बीच उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। यह मॉडल आर्थिक सहयोग से आगे बढ़कर सामाजिक जागरण, सामूहिक नेतृत्व, अधिकार चेतना और आत्मविश्वास का आधार बना है।

आज SHG ग्रामीण विकास की योजनाओं, महिला सशक्तिकरण अभियानों, आजीविका संवर्धन, सूक्ष्म वित्त, पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता और स्थानीय प्रशासन में जनभागीदारी का सशक्त माध्यम बन चुका है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि SHG ने गरीब और हाशिए के समुदायों को "लाभार्थी" से "साझेदार" बनने की दिशा में प्रेरित किया है।

2. स्वयं सहायता समूह (SHG) की अवधारणा :

स्वयं सहायता समूह का आशय ऐसे लघु समूह से है जिसमें प्रायः 10 से 20 सदस्य होते हैं। ये सदस्य समान समस्याओं, समान आर्थिक स्तर अथवा समान सामाजिक आवश्यकताओं से जुड़े होते हैं। समूह का आधार परस्पर विश्वास, सामूहिक सहयोग और आत्म–सहायता होता है। SHG का मूल सिद्धांत है– "पहले स्वयं बचत, फिर सामूहिक सहायता, उसके बाद आत्मनिर्भर विकास।"

SHG की संरचना में निम्न प्रमुख तत्व शामिल होते हैं :

1. छोटे और स्वैच्छिक सदस्य समूह।
2. नियमित बचत की व्यवस्था।
3. समूह कोष का निर्माण।
4. सदस्यों को आंतरिक ऋण की सुविधा।
5. सामूहिक निर्णय और लोकतांत्रिक संचालन।
6. बैंक और सरकारी योजनाओं से जुड़ाव।
7. आय–सृजन एवं सामाजिक गतिविधियाँ।

इस प्रकार SHG एक आर्थिक इकाई होने के साथ–साथ सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और विकासात्मक संस्था भी है।

3. SHG की उत्पत्ति और विकास की पृष्ठभूमि :

भारत में SHG आंदोलन को गति देने में गैर–सरकारी संस्थाओं, NABARD, बैंकों तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 1980 और 1990 के दशक में यह समझ विकसित हुई कि गरीबों, विशेषकर महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए केवल ऋण देना पर्याप्त नहीं है, उन्हें संगठित करना, बचत की आदत विकसित करना, सामूहिक जिम्मेदारी सिखाना और स्थानीय स्तर पर नेतृत्व विकसित करना भी आवश्यक है।

इसी सोच के साथ SHG–बैंक लिंकिंग कार्यक्रम का विस्तार हुआ, जिसने गरीब महिलाओं को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने का अवसर दिया। बाद में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) तथा विभिन्न

राज्य स्तरीय आजीविका कार्यक्रमों ने SHG को ग्रामीण विकास की मुख्यधारा में स्थापित कर दिया। आज SHG केवल वित्तीय सहयोग का माध्यम नहीं, बल्कि सामुदायिक संगठन, स्थानीय नेतृत्व और सामाजिक परिवर्तन का सशक्त मंच बन चुका है।

4. SHG के उद्देश्य :

SHG की स्थापना कई उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की जाती है। इसके कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

4.1 आर्थिक उद्देश्य :

- बचत की आदत विकसित करना।
- छोटे ऋण की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- साहूकारों पर निर्भरता कम करना।
- आय–सृजन गतिविधियों को बढ़ावा देना।
- स्वरोजगार और उद्यमिता को विकसित करना।

4.2 सामाजिक उद्देश्य :

- महिलाओं में आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता बढ़ाना।
- सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ सामूहिक जागरूकता पैदा करना।
- शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति चेतना विकसित करना।
- सामुदायिक सहयोग और पारस्परिक विश्वास को मजबूत करना।

4.3 राजनीतिक एवं नागरिक उद्देश्य :

- पंचायतों और स्थानीय संस्थाओं में भागीदारी बढ़ाना।
- अधिकारों और सरकारी योजनाओं के प्रति जागरूकता लाना।
- लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया का अनुभव प्रदान करना।

स्पष्ट है कि SHG का उद्देश्य बहुआयामी है, जो व्यक्ति, परिवार और समाजकृतीनों स्तरों पर परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

5. SHG समूह की प्रमुख भूमिका :

अब प्रश्न यह है कि SHG की प्रमुख भूमिका क्या है? इस प्रश्न का उत्तर केवल एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, क्योंकि SHG की भूमिका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक सभी स्तरों पर महत्त्वपूर्ण है।

5.1 महिला सशक्तिकरण में SHG की भूमिका :

SHG की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में दिखाई देती है। ग्रामीण समाज में महिलाओं को लंबे समय तक आर्थिक निर्भरता, निर्णयहीनता, अशिक्षा और सामाजिक उपेक्षा का सामना करना पड़ा। SHG ने इस स्थिति में परिवर्तन लाने का कार्य किया।

(क) आर्थिक आत्मनिर्भरता :

जब महिलाएँ नियमित बचत करने लगती हैं, समूह कोष में योगदान देती हैं और आवश्यकता पड़ने पर

ऋण लेती हैं, तो उनमें आर्थिक प्रबंधन की क्षमता विकसित होती है। वे छोटे व्यवसाय, पशुपालन, सिलाई, कढ़ाई, खाद्य प्रसंस्करण, खेती से जुड़ी गतिविधियों और अन्य लघु उद्यमों में निवेश कर सकती हैं। इससे उनकी आय बढ़ती है और परिवार में उनका आर्थिक महत्व स्थापित होता है।

(ख) निर्णय-क्षमता में वृद्धि :

SHG की बैठकों में भागीदारी, समूह निर्णय, ऋण स्वीकृति, पुनर्भुगतान और अन्य प्रशासनिक कार्यों से महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमता विकसित होती है। इसका प्रभाव परिवार के भीतर भी दिखाई देता है, जहाँ वे शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह, खेती और खर्च से जुड़े निर्णयों में सक्रिय भागीदारी निभाने लगती हैं।

(ग) आत्मविश्वास और आत्मसम्मान :

जो महिलाएँ पहले सार्वजनिक रूप से बोलने में संकोच करती थीं, वे SHG के माध्यम से बैठक संचालन, बैंक अधिकारियों से वार्ता, सरकारी कर्मियों से संपर्क और सामुदायिक मंचों पर विचार रखने में सक्षम होती हैं। यह आत्मविश्वास महिला सशक्तिकरण का मूल आधार है।

(घ) सामाजिक पहचान :

SHG से जुड़ने के बाद महिलाओं की पहचान केवल "घर की सदस्य" के रूप में नहीं, बल्कि "सक्रिय समूह सदस्य", "उद्यमी", "नेता" और "सामुदायिक कार्यकर्ता" के रूप में बनने लगती है।

5.2 वित्तीय समावेशन में SHG की भूमिका :

भारत के गरीब और ग्रामीण परिवारों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ना एक बड़ी चुनौती रही है। SHG ने इस क्षेत्र में सेतु की भूमिका निभाई है।

(क) बचत की संस्कृति का विकास :

SHG का पहला कदम नियमित बचत है। छोटी–छोटी बचत भी समय के साथ एक उपयोगी कोष में बदल जाती है। यह आर्थिक अनुशासन और वित्तीय योजना का प्रारंभिक प्रशिक्षण है।

(ख) आंतरिक ऋण व्यवस्था :

समूह अपने सदस्यों को समूह कोष से ऋण देता है। यह ऋण साहूकारों की तुलना में सस्ता, सहज और विश्वास–आधारित होता है। इससे आपातकालीन आवश्यकताओं – जैसे बीमारी, शिक्षा, कृषि, व्यापार, विवाह आदि की पूर्ति हो पाती है।

(ग) बैंक लिंकेज :

SHG बैंक खाते खोलते हैं, लेन–देन करते हैं, सामूहिक ऋण प्राप्त करते हैं और वित्तीय संस्थाओं से जुड़ते हैं। इससे ग्रामीण गरीबों का औपचारिक बैंकिंग प्रणाली पर विश्वास बढ़ता है और वे वित्तीय मुख्यधारा में आते हैं।

(घ) ऋण के उत्पादक उपयोग की संभावना :

समूह की निगरानी और सामूहिक जिम्मेदारी के कारण ऋण का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक जिम्मेदारी से होता है। इससे ऋण चुकौती की संस्कृति भी विकसित होती है।

5.3 ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में SHG की भूमिका :

SHG ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पूँजी प्रवाह, सूक्ष्म उद्यमिता और स्थानीय रोजगार सृजन का माध्यम बनता

है।

(क) सूक्ष्म उद्यमिता का विकास :

SHG सदस्य सामूहिक या व्यक्तिगत रूप से अनेक आर्थिक गतिविधियाँ शुरू करते हैं, जैसे –

- डेयरी।
- बकरी पालन।
- मुर्गी पालन।
- मशरूम उत्पादन।
- अगरबत्ती निर्माण।
- मसाला प्रसंस्करण।
- सब्जी उत्पादन।
- हस्तशिल्प।
- सिलाई–कढ़ाई।
- पापड़, अचार, बड़ियाँ आदि बनाना।

इन गतिविधियों से स्थानीय स्तर पर रोजगार और आय के स्रोत बढ़ते हैं।

(ख) स्थानीय संसाधनों का उपयोग :

SHG सदस्य स्थानीय कच्चे माल, परंपरागत कौशल और उपलब्ध संसाधनों का उपयोग कर लघु उद्यम विकसित करते हैं। इससे बाहरी निर्भरता कम होती है और स्थानीय अर्थव्यवस्था को गति मिलती है।

(ग) आय में विविधता :

कृषि पर निर्भर परिवारों के लिए SHG के माध्यम से अतिरिक्त आय–स्रोत विकसित होते हैं। इससे जोखिम कम होता है और आर्थिक स्थिरता बढ़ती है।

(घ) गरीबी उन्मूलन में योगदान :

जब बचत, ऋण, आय–सृजन और आर्थिक अनुशासन साथ–साथ चलते हैं, तो SHG गरीबी उन्मूलन की प्रक्रिया में प्रभावी भूमिका निभाता है।

5.4 सामाजिक परिवर्तन में SHG की भूमिका :

SHG की भूमिका का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष सामाजिक परिवर्तन है। यह परिवर्तन धीरे–धीरे लेकिन गहरे स्तर पर दिखाई देता है।

(क) कुरीतियों के खिलाफ जागरूकता :

SHG समूह बाल विवाह, दहेज प्रथा, नशाखोरी, घरेलू हिंसा, लिंगभेद और अशिक्षा जैसी समस्याओं के विरुद्ध सामूहिक आवाज उठाते हैं। जब महिलाएँ संगठित होती हैं, तो सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उनका प्रतिरोध अधिक प्रभावी बनता है।

(ख) शिक्षा के प्रति जागरूकता :

SHG सदस्य अपने बच्चों, विशेषकर बेटियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देने लगते हैं। कई स्थानों पर भ्ळ ने विद्यालय नामांकन, उपस्थिति और ड्रॉपआउट कम करने में योगदान दिया है।

(ग) स्वास्थ्य और पोषण :

गर्भवती महिलाओं की देखभाल, टीकाकरण, पोषण, स्वच्छ पेयजल, साफ–सफाई और शौचालय उपयोग जैसे विषयों पर SHG ने व्यापक जागरूकता पैदा की है।

(घ) सामुदायिक एकजुटता :

SHG केवल आर्थिक समूह नहीं, बल्कि सामुदायिक सहयोग का मंच भी है। संकट की घड़ी में सदस्य एक–दूसरे की मदद करते हैं। इससे सामाजिक पूँजी (Social Capital) का निर्माण होता है।

5.5 नेतृत्व विकास में SHG की भूमिका :

SHG नेतृत्व विकास की एक जीवंत पाठशाला है। समूह में अध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष और सक्रिय सदस्यों की भूमिकाओं के माध्यम से नेतृत्व कौशल विकसित होता है।

नेतृत्व विकास के प्रमुख आयाम :

- बैठक का संचालन।
- अभिलेखों का संधारण।
- निर्णय लेना।
- बैंक और सरकारी अधिकारियों से संपर्क।
- समूह विवादों का समाधान।
- सामुदायिक कार्यक्रमों का आयोजन।

इन प्रक्रियाओं से महिलाएँ न केवल समूह स्तर पर, बल्कि पंचायत, विद्यालय प्रबंधन समिति, ग्राम सभा और अन्य स्थानीय संस्थाओं में भी नेतृत्व की भूमिका निभाने लगती हैं।

5.6 लोकतांत्रिक सहभागिता में SHG की भूमिका :

SHG में निर्णय सामूहिक चर्चा और सहमति से लिए जाते हैं। यह प्रक्रिया लोकतांत्रिक अभ्यास का एक छोटा लेकिन प्रभावशाली रूप है। सदस्य सुनना, बोलना, मत व्यक्त करना, सहमति बनाना और सामूहिक उत्तरदायित्व निभाना सीखते हैं।

ग्रामीण समाज में जहाँ कई महिलाएँ सार्वजनिक निर्णय प्रक्रिया से बाहर रहती थीं, वहाँ SHG ने उन्हें लोकतंत्र का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया है। पंचायत चुनावों में भागीदारी, ग्राम सभा में उपस्थिति और स्थानीय मुद्दों पर बोलने का साहस ये सभी SHG के माध्यम से विकसित हुए हैं।

5.7 सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में SHG की भूमिका :

SHG सरकारी योजनाओं और लाभार्थियों के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है। कई योजनाओं का सफल कार्यान्वयन तभी संभव है जब स्थानीय स्तर पर सक्रिय सामुदायिक समूह मौजूद हों।

SHG की उपयोगिता :

- सरकारी योजनाओं की जानकारी पहुँचाना।
- पात्र लाभार्थियों की पहचान में सहयोग।
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भागीदारी।
- आजीविका मिशन से जुड़ाव।

- पोषण, स्वास्थ्य, स्वच्छता और शिक्षा अभियानों का समर्थन।
- बैंकिंग और बीमा योजनाओं से जुड़ना।

इस प्रकार SHG शासन व्यवस्था और आम जनता के बीच "जमीनी साझेदार" की तरह कार्य करता है।

5.8 सामाजिक सुरक्षा और संकट प्रबंधन में SHG की भूमिका :

गरीब परिवार अक्सर बीमारी, प्राकृतिक आपदा, फसल हानि, बेरोजगारी या पारिवारिक संकट जैसी परिस्थितियों में असुरक्षित होते हैं। SHG ऐसी परिस्थितियों में सहारा प्रदान करता है।

- आपातकालीन ऋण।
- भावनात्मक समर्थन।
- सामूहिक श्रमदान।
- जरूरतमंद परिवारों की सहायता।
- सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तक पहुँच।

इस प्रकार SHG लचीलापन (Resilience) विकसित करता है और समुदाय को संकट से उबरने की क्षमता देता है।

5.9 उद्यमिता विकास में SHG की भूमिका :

भारत में सूक्ष्म, लघु और घरेलू उद्यमों के विस्तार में SHG का योगदान उल्लेखनीय है। SHG सदस्यों को प्रशिक्षण, पूँजी, परामर्श, विपणन और आत्मविश्वास प्रदान करता है।

उद्यमिता के विकास में SHG के योगदान :

1. जोखिम उठाने की क्षमता बढ़ाना।
2. सामूहिक निवेश की सुविधा।
3. बाजार की जानकारी साझा करना।
4. प्रशिक्षण के माध्यम से कौशल विकास।
5. उत्पादन से विपणन तक सहयोग।

यदि SHG को आधुनिक कौशल, ब्रांडिंग, पैकेजिंग और डिजिटल मार्केटिंग से जोड़ा जाए, तो यह ग्रामीण उद्यमिता की क्रांति ला सकता है।

5.10 परिवार स्तर पर SHG की भूमिका :

SHG का प्रभाव केवल समूह तक सीमित नहीं रहता, बल्कि परिवार की संरचना और कार्यप्रणाली पर भी पड़ता है।

- घरेलू आय में वृद्धि।
- बच्चों की शिक्षा पर अधिक खर्च।
- स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच।
- खाद्य सुरक्षा में सुधार।
- परिवार में महिलाओं की प्रतिष्ठा में वृद्धि।
- घरेलू निर्णयों में भागीदारी।

इस प्रकार SHG परिवार के भीतर शक्ति–संतुलन को अधिक न्यायपूर्ण बनाता है।

6. SHG और महिला सशक्तिकरण का मनोवैज्ञानिक पक्ष :

SHG की सफलता को केवल आय और बचत के आँकड़ों से नहीं समझा जा सकता। इसका एक गहरा मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है।

6.1 भय से मुक्ति :

जो महिलाएँ पहले बैंक, कार्यालय या सार्वजनिक सभा में जाने से डरती थीं, वे SHG के माध्यम से इस भय से मुक्त होती हैं।

6.2 सामूहिक पहचान का विकास :

समूह सदस्य अकेली नहीं रहतींय वे सामूहिक पहचान विकसित करती हैं। इससे उनमें सुरक्षा और आत्मबल की भावना आती है।

6.3 उपलब्धि की भावना :

जब महिलाएँ अपनी कमाई, बचत, निर्णय–क्षमता और सामाजिक सम्मान को बढ़ते हुए देखती हैं, तो उनमें उपलब्धि का भाव उत्पन्न होता है।

6.4 आत्म-सम्मान का निर्माण :

SHG महिलाओं को यह अनुभव कराता है कि वे केवल आश्रित नहीं, बल्कि सक्षम, उत्तरदायी और परिवर्तनकारी भूमिका निभाने वाली नागरिक हैं।

7. SHG की कार्यप्रणाली :

SHG की कार्यप्रणाली इसकी सफलता का आधार है। एक सुचारु SHG में सामान्यतः निम्न प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं :–

1. समान पृष्ठभूमि वाले सदस्यों का चयन।
2. नियमित बैठकें।
3. नियमित बचत संग्रह।
4. अभिलेख संधारण।
5. सामूहिक निर्णय द्वारा ऋण वितरण।
6. पुनर्भुगतान की निगरानी।
7. बैंक खाते का संचालन।
8. आय–सृजन गतिविधियों की योजना।
9. प्रशिक्षण और क्षमता–विकास।
10. बाहरी संस्थाओं से समन्वय।

कार्यप्रणाली जितनी पारदर्शी, नियमित और लोकतांत्रिक होगी, SHG उतना ही सफल होगा।

8. SHG की प्रमुख उपलब्धियाँ :

भारत के अनेक राज्यों में SHG ने उल्लेखनीय उपलब्धियाँ दर्ज की हैं। यद्यपि उपलब्धियों का स्वरूप क्षेत्रानुसार भिन्न हो सकता है, फिर भी कुछ सामान्य उपलब्धियाँ इस प्रकार देखी जा सकती हैं :–

- महिलाओं में बचत की आदत विकसित होना।
- साहूकारी प्रथा पर निर्भरता कम होना।
- स्वरोजगार के अवसर बढ़ना।
- बालिकाओं की शिक्षा में सुधार।
- स्वास्थ्य और पोषण जागरूकता में वृद्धि।
- पंचायतों में महिला भागीदारी बढ़ना।
- घरेलू हिंसा और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठना।
- सामुदायिक नेतृत्व का विकास।

इन उपलब्धियों ने सिद्ध किया है कि SHG विकास का जमीनी मॉडल है।

9. SHG समूह के समक्ष चुनौतियाँ :

यद्यपि SHG अत्यंत प्रभावी मॉडल है, फिर भी इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ मौजूद हैं।

9.1 अपर्याप्त प्रशिक्षण :

अनेक SHG समूहों को लेखा–जोखा, वित्तीय प्रबंधन, उद्यमिता, विपणन और डिजिटल संचालन का पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं मिल पाता।

9.2 औपचारिकता तक सीमित हो जाना :

कुछ स्थानों पर SHG केवल कागजी रूप में सक्रिय रहते हैं। नियमित बैठकें, बचत और सामूहिक चर्चा कमजोर पड़ जाती है।

9.3 बाजार से जुड़ाव की कमी :

उत्पादन तो हो जाता है, लेकिन उत्पादों के विपणन, ब्रांडिंग, पैकेजिंग और उचित मूल्य की समस्या बनी रहती है।

9.4 बैंकिंग प्रक्रिया की जटिलता :

कई बार बैंक से ऋण प्राप्त करने की प्रक्रिया जटिल, धीमी या निरुत्साहित करने वाली होती है।

9.5 समूह में आंतरिक मतभेद :

नेतृत्व विवाद, अनियमित भुगतान, पारदर्शिता की कमी और पारस्परिक अविश्वास से समूह कमजोर हो सकता है।

9.6 डिजिटल अंतर :

डिजिटल बैंकिंग, ऑनलाइन भुगतान, ई–मार्केटिंग और तकनीकी जानकारी के अभाव में SHG आधुनिक अवसरों का पूरा लाभ नहीं उठा पाता।

10. SHG को प्रभावी बनाने के उपाय :

यदि SHG की भूमिका को और सशक्त बनाना है, तो निम्न उपाय उपयोगी हो सकते हैं :

10.1 सतत प्रशिक्षण :

सदस्यों को वित्तीय साक्षरता, उद्यमिता, अभिलेख संधारण, डिजिटल भुगतान, विपणन और नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

10.2 मजबूत संस्थागत सहयोग :

बैंकों, पंचायतों, ग्रामीण विकास विभाग, गैर–सरकारी संस्थाओं और प्रशिक्षण संस्थानों के साथ SHG का समन्वय मजबूत होना चाहिए।

10.3 डिजिटल सशक्तिकरण :

मोबाइल बैंकिंग, डिजिटल रिकॉर्ड, ऑनलाइन बाजार, सोशल मीडिया प्रचार और ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म से SHG को जोड़ा जाना चाहिए।

10.4 उत्पाद-आधारित क्लस्टर विकास :

समान उत्पाद बनाने वाले SHG को क्लस्टर के रूप में विकसित कर सामूहिक ब्रांडिंग और विपणन की व्यवस्था की जा सकती है।

10.5 पारदर्शिता और उत्तरदायित्व :

बैठक, बचत, ऋण, पुनर्भुगतान और आय–व्यय का नियमित एवं पारदर्शी अभिलेख आवश्यक है।

10.6 सामाजिक मुद्दों से जुड़ाव :

SHG को केवल आर्थिक मंच नहीं, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पोषण, बाल अधिकार और महिला अधिकार जैसे मुद्दों से भी जोड़ा जाना चाहिए।

11. SHG और सतत विकास :

SHG की अवधारणा सतत विकास (Sustainable Development) के सिद्धांतों के अनुरूप है। यह स्थानीय संसाधनों का उपयोग, सामुदायिक सहभागिता, महिला नेतृत्व, सामाजिक न्याय और आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देता है। SHG गरीबी घटाने, लैंगिक समानता स्थापित करने, सम्मानजनक आजीविका उपलब्ध कराने और मजबूत समुदाय बनाने में सहायक है।

इस दृष्टि से SHG केवल एक कार्यक्रम नहीं, बल्कि सतत, समावेशी और न्यायपूर्ण विकास की प्रक्रिया है।

12. अकादमिक परिप्रेक्ष्य में SHG का महत्व :

शोध की दृष्टि से SHG एक बहुविषयी अध्ययन क्षेत्र है। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, शिक्षा, महिला अध्ययन, ग्रामीण विकास, लोक प्रशासन, मनोविज्ञान और राजनीतिक विज्ञान 'सभी के लिए SHG अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। यह मॉडल हमें बताता है कि जब गरीब, वंचित और उपेक्षित समुदाय संगठित होते हैं, तो विकास केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्गठन का रूप ले लेता है।

SHG के अध्ययन से निम्न शैक्षिक और शोधपरक आयाम स्पष्ट होते हैं :–

- सामुदायिक संगठन का महत्व।
- स्त्री–अधिकार और लैंगिक न्याय।
- सूक्ष्म वित्त और आजीविका मॉडल।
- लोकतांत्रिक सहभागिता का स्थानीय स्वरूप।
- सामाजिक परिवर्तन की जमीनी प्रक्रिया।

13. निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि SHG समूह की भूमिका अत्यंत व्यापक, गहन और परिवर्तनकारी है। SHG ने विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं को बचत, ऋण, उद्यमिता, सामाजिक सहभागिता, नेतृत्व और आत्मसम्मान का मंच प्रदान किया है। यह समूह आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ–साथ सामाजिक चेतना, सामुदायिक सहयोग, लोकतांत्रिक भागीदारी और अधिकार–बोध को भी विकसित करता है।

SHG की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह बाहरी सहायता पर पूर्ण निर्भरता नहीं सिखाता, बल्कि आत्म–सहायता और सामूहिक शक्ति में विश्वास जगाता है। यह मॉडल गरीबों को दया का पात्र नहीं, बल्कि विकास का सक्रिय भागीदार बनाता है। यही इसकी वास्तविक शक्ति है।

फिर भी SHG की सफलता को स्थायी और व्यापक बनाने के लिए प्रशिक्षण, विपणन, डिजिटल सशक्तिकरण, संस्थागत समर्थन और नीतिगत सहयोग आवश्यक है। यदि इन पक्षों पर गंभीरता से कार्य किया जाए, तो SHG भारत के ग्रामीण और वंचित समाज में समावेशी विकास, महिला सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय का सबसे प्रभावी साधन सिद्ध हो सकता है।

अतः यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि SHG केवल एक समूह नहीं, बल्कि आत्मनिर्भरता, सम्मान, सहभागिता और सामाजिक परिवर्तन की सशक्त प्रक्रिया है।

संदर्भ सूची :

1. अग्रवाल, जी. (2018). महिला सशक्तिकरण और स्वयं सहायता समूह. नई दिल्ली : रावत प्रकाशन।
2. सिंह, आर. एवं कुमारी, पी. (2020). ग्रामीण विकास में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका. भारतीय ग्रामीण अध्ययन पत्रिका, 12(2), 45–58.
3. शर्मा, एस. (2019). सूक्ष्म वित्त और महिला उद्यमिता का संबंध. सामाजिक विज्ञान समीक्षा, 8(1), 67–79.
4. मिश्रा, के. (2021). स्वयं सहायता समूह और सामाजिक परिवर्तन. विकास संवाद, 15(3), 112–126.
5. यादव, एम. (2017). ग्रामीण भारत में महिला सशक्तिकरण के आयाम. जयपुर : पॉइंटर पब्लिशर्स।
6. Kumar, A. (2019). Self Help Groups and Rural Empowerment in India. Journal of Rural Development Studies, 14(1), 23-39.
7. Devi, L. (2020). Financial Inclusion through Women SHGs. International Journal of Social and Economic Research, 10(4), 88-101.
8. Rao, P. (2018). Microfinance, SHGs and Women's Agency. Indian Journal of Development Perspectives, 6(2), 54-70.
9. NABARD. (Various Reports). Self Help Group-Bank Linkage Programme Reports.
10. Government of India. National Rural Livelihood Mission (NRLM) Guidelines and Reports.

Email Id : Anju13587@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 133–142
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना : ग्रामीण आजीविका सुरक्षा, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास का एक सशक्त माध्यम

Pushpa Kumari, Research Scholar
Economics Department, YBN Univercity, Ranchi.

सारांश :

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) भारत की ग्रामीण विकास नीति की एक ऐतिहासिक और अधिकार–आधारित योजना है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को आजीविका सुरक्षा प्रदान करना, बेरोजगारी और गरीबी को कम करना तथा ग्रामीण अवसंरचना का निर्माण करना है। यह योजना ग्रामीण परिवारों के उन वयस्क सदस्यों को, जो अकुशल शारीरिक श्रम करने के इच्छुक हैं, एक वित्तीय वर्ष में कम–से–कम 100 दिनों का गारंटीशुदा रोजगार उपलब्ध कराने का प्रावधान करती है। मनरेगा केवल रोजगार सृजन की योजना नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, विकेंद्रीकरण, पंचायत–आधारित विकास, जल–संरक्षण, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की व्यापक प्रक्रिया का भी महत्त्वपूर्ण उपकरण है। प्रस्तुत लेख में मनरेगा की अवधारणा, उद्देश्य, विशेषताएँ, ग्रामीण समाज में इसकी भूमिका, उपलब्धियाँ, चुनौतियाँ तथा भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मनरेगा ने ग्रामीण भारत में आय–सुरक्षा, सामाजिक समावेशन, प्रवासन में कमी, महिला भागीदारी और सामुदायिक परिसंपत्तियों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। तथापि, भुगतान में विलंब, प्रशासनिक कमियाँ, भ्रष्टाचार, पारदर्शिता की कमी और कार्यों की गुणवत्ता जैसी चुनौतियाँ इसके प्रभाव को सीमित करती हैं। उचित नीति–संशोधन, तकनीकी सुदृढ़ीकरण और स्थानीय स्तर पर उत्तरदायित्व बढ़ाकर इस योजना को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

कुंजी शब्द : मनरेगा, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, ग्रामीण विकास, रोजगार सुरक्षा, सामाजिक न्याय, पंचायत राज, महिला सशक्तिकरण, आजीविका, ग्रामीण अर्थव्यवस्था।

1. प्रस्तावना :

भारत एक कृषि प्रधान और ग्रामीण बहुल देश है, जहाँ लंबे समय तक गरीबी, बेरोजगारी, अल्परोजगार, मौसमी काम की समस्या, भूमिहीनता, सामाजिक असमानता और आर्थिक असुरक्षा जैसी समस्याएँ व्यापक रूप से

मौजूद रही हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में ऐसे परिवार हैं जिनकी आय कृषि पर निर्भर रहती है, परंतु कृषि कार्य पूरे वर्ष उपलब्ध नहीं रहता। ऐसे में वर्ष के कई महीनों में बेरोजगारी या अल्परोजगार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति का सीधा प्रभाव ग्रामीण जीवन–स्तर, पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुरक्षा पर पड़ता है।

इन्हीं चुनौतियों के समाधान के लिए भारत सरकार ने ग्रामीण गरीबों के लिए रोजगार की कानूनी गारंटी देने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम उठाया। यह कदम था – राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, जिसे बाद में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (MGNREGA) के नाम से जाना गया। यह अधिनियम ग्रामीण भारत के लिए केवल एक विकास कार्यक्रम नहीं, बल्कि एक अधिकार–आधारित कानून है, जो काम की मांग करने वाले ग्रामीण परिवारों को रोजगार उपलब्ध कराने की वैधानिक गारंटी देता है।

मनरेगा का महत्व इस बात में निहित है कि यह केवल अस्थायी मजदूरी उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से जल संरक्षण, भूमि विकास, तालाब निर्माण, सड़क निर्माण, वृक्षारोपण, सूखा–रोधी कार्य, सिंचाई संरचना तथा अन्य ग्रामीण परिसंपत्तियों का निर्माण भी किया जाता है। इस प्रकार यह योजना रोजगार, विकास और सामाजिक न्याय – तीनों को एक साथ जोड़ती है।

2. मनरेगा की अवधारणा और स्वरूप :

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना भारत सरकार की एक प्रमुख ग्रामीण विकास योजना है, जिसका मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले परिवारों को मजदूरी–आधारित रोजगार की गारंटी देना है। इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक ग्रामीण परिवार के ऐसे वयस्क सदस्य, जो अकुशल शारीरिक श्रम करने के इच्छुक हों, को एक वित्तीय वर्ष में कम–से–कम 100 दिनों का रोजगार उपलब्ध कराने का प्रावधान है।

यह योजना निम्न कारणों से विशेष है :–

1. यह अधिकार–आधारित योजना है।
2. इसमें काम देने की कानूनी गारंटी है।
3. काम की मांग करने पर निश्चित समय सीमा में रोजगार न मिलने पर बेरोजगारी भत्ता का प्रावधान है।
4. योजना का क्रियान्वयन ग्राम पंचायत के माध्यम से स्थानीय स्तर पर किया जाता है।
5. इसमें सामाजिक अंकेक्षण और पारदर्शिता का विशेष महत्व है।
6. महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और गरीब वर्गों की भागीदारी को प्राथमिकता दी जाती है।

इस प्रकार मनरेगा का स्वरूप केवल रोजगार कार्यक्रम का नहीं, बल्कि अधिकार, सहभागिता और विकास के एक समन्वित मॉडल का है।

3. मनरेगा की पृष्ठभूमि :

स्वतंत्रता के बाद भारत में ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी को कम करने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए गए, जैसे 'फूड फॉर वर्क कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, रोजगार आश्वासन योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना आदि। यद्यपि इन कार्यक्रमों ने कुछ हद तक राहत प्रदान की, फिर भी इनकी सबसे बड़ी सीमा यह थी कि इनमें रोजगार अधिकार के रूप में सुनिश्चित नहीं था।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की स्थायी और कानूनी गारंटी की मांग लंबे समय से उठती रही। परिणामस्वरूप एक ऐसा कानून लाया गया जिसने ग्रामीण गरीबों को काम मांगने और पाने का वैधानिक अधिकार दिया। यह व्यवस्था भारत के कल्याणकारी लोकतंत्र के इतिहास में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। बाद में इस अधिनियम को महात्मा गांधी के नाम से जोड़ा गया, जिससे यह योजना ग्रामीण श्रम, स्वावलंबन और ग्राम–आधारित विकास के गांधीवादी आदर्शों से भी प्रतीकात्मक रूप से जुड़ गई।

4. मनरेगा के उद्देश्य :

मनरेगा के उद्देश्य बहुआयामी हैं। यह योजना केवल मजदूरी प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण समाज में आर्थिक, सामाजिक और संरचनात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास करती है।

4.1 रोजगार उपलब्ध कराना :

ग्रामीण परिवारों को वर्ष में कम–से–कम 100 दिनों का अकुशल मजदूरी–आधारित रोजगार उपलब्ध कराना इसका प्राथमिक उद्देश्य है।

4.2 आजीविका सुरक्षा :

गरीब और श्रम–आधारित परिवारों को न्यूनतम आय–सुरक्षा प्रदान कर उनकी आजीविका को स्थिर बनाना इस योजना का केंद्रीय उद्देश्य है।

4.3 प्रवासन को कम करना :

जब गाँव में स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध होता है, तो लोगों का मजबूरीवश शहरों की ओर पलायन कम होता है।

4.4 ग्रामीण परिसंपत्तियों का निर्माण :

योजना के अंतर्गत ऐसे कार्य कराए जाते हैं जो दीर्घकालिक सामुदायिक लाभ दें, जैसे – तालाब, जल–संरक्षण संरचनाएँ, सड़कें, वृक्षारोपण, नहर, मेड़बंदी आदि।

4.5 सामाजिक समावेशन :

यह योजना समाज के कमजोर वर्गों 'विशेष रूप से महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और भूमिहीन मजदूरों' को रोजगार और सम्मानजनक भागीदारी प्रदान करती है।

4.6 विकेंद्रीकृत विकास :

ग्राम पंचायतों की भूमिका को मजबूत कर स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण और क्रियान्वयन को बढ़ावा देना भी इसका एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

5. मनरेगा की प्रमुख विशेषताएँ :

मनरेगा को अन्य योजनाओं से अलग करने वाली इसकी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ हैं।

5.1 कानूनी गारंटी :

यह योजना रोजगार का कानूनी अधिकार देती है। यदि नियत समय के भीतर काम उपलब्ध नहीं कराया जाता, तो बेरोजगारी भत्ता देय होता है।

5.2 मांग-आधारित योजना :

यह आपूर्ति–आधारित नहीं, बल्कि मांग–आधारित योजना है। यानी काम सरकार की इच्छा से नहीं, बल्कि

ग्रामीण परिवार की मांग पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

5.3 ग्राम पंचायत की प्रमुख भूमिका :

कार्य की पहचान, पंजीकरण, जॉब कार्ड वितरण, मांग का पंजीकरण, कार्य–आवंटन और निगरानी में ग्राम पंचायत की प्रमुख भूमिका होती है।

5.4 जॉब कार्ड व्यवस्था :

पात्र परिवारों को जॉब कार्ड दिया जाता है, जो योजना में उनके अधिकार और कार्य विवरण का आधिकारिक दस्तावेज होता है।

5.5 महिलाओं की भागीदारी :

योजना में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने पर विशेष बल दिया गया है। इससे ग्रामीण महिलाओं को मजदूरी, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सामाजिक पहचान मिलती है।

5.6 सामाजिक अंकेक्षण :

योजना में सामाजिक अंकेक्षण की व्यवस्था पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

5.7 परिसंपत्ति निर्माण :

मनरेगा में केवल मजदूरी नहीं दी जाती, बल्कि ऐसे कार्य कराए जाते हैं जो गाँव के दीर्घकालिक विकास में सहायक हों।

6. मनरेगा की कार्यप्रणाली :

मनरेगा की कार्यप्रणाली को समझना इसकी प्रभावशीलता को समझने के लिए आवश्यक है। सामान्यतः इसकी प्रक्रिया निम्न प्रकार होती है :

1. पात्र ग्रामीण परिवार का पंजीकरण।
2. जॉब कार्ड का निर्गमन।
3. काम की मांग प्रस्तुत करना।
4. नियत अवधि में कार्य उपलब्ध कराना।
5. कार्यस्थल पर उपस्थिति और मस्टर रोल संधारण।
6. कार्य का मापन।
7. मजदूरी का भुगतान।
8. सामाजिक अंकेक्षण और समीक्षा।

योजना की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इन सभी चरणों में पारदर्शिता, समयबद्धता और स्थानीय सहभागिता कितनी सुनिश्चित की जाती है।

7. ग्रामीण आजीविका सुरक्षा में मनरेगा की भूमिका :

मनरेगा की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका ग्रामीण आजीविका सुरक्षा के क्षेत्र में दिखाई देती है। ग्रामीण श्रमिकों को वर्ष के खाली महीनों में रोजगार उपलब्ध होने से उनकी आय में एक न्यूनतम स्थिरता आती है।

(क) आय का पूरक स्रोत :

कई ग्रामीण परिवार कृषि–आधारित हैं, लेकिन कृषि से पूरे वर्ष पर्याप्त आय नहीं हो पाती। ऐसे में मनरेगा उनकी आय का पूरक स्रोत बनती है।

(ख) भूख और अभाव में कमी :

जब मजदूरी के माध्यम से नकद आय प्राप्त होती है, तो भोजन, दवा, बच्चों की पढ़ाई और दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से हो पाती है।

(ग) ऋण पर निर्भरता कम होना :

स्थानीय स्तर पर रोजगार मिलने से साहूकारों से ऊँचे ब्याज पर ऋण लेने की मजबूरी कुछ हद तक कम हो सकती है।

(घ) असुरक्षित प्रवासन में कमी :

विशेष रूप से गरीब मजदूर परिवारों के लिए मनरेगा ने ऐसे समय में राहत दी है जब स्थानीय स्तर पर आजीविका के अन्य विकल्प कम होते हैं।

8. ग्रामीण विकास में मनरेगा की भूमिका :

मनरेगा केवल मजदूरी भुगतान तक सीमित नहीं है, इसका एक बड़ा लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोगी परिसंपत्तियों का निर्माण करना है।

8.1 जल संरक्षण और जल-संवर्धन :

तालाब, कुएँ, चेकडैम, मेड़बंदी, वर्षा जल संचयन जैसी संरचनाएँ ग्रामीण कृषि और जल–सुरक्षा के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

8.2 भूमि विकास :

भूमि समतलीकरण, मिट्टी संरक्षण, बंजर भूमि सुधार आदि कार्य खेती की उत्पादकता बढ़ाने में मदद करते हैं।

8.3 ग्रामीण संपर्क मार्ग :

गाँव के भीतर या खेतों तक पहुँचने वाले मार्गों का निर्माण ग्रामीण गतिशीलता और स्थानीय अर्थव्यवस्था को बेहतर बनाता है।

8.4 वृक्षारोपण और पर्यावरण संरक्षण :

मनरेगा के माध्यम से वृक्षारोपण, हरित आवरण बढ़ाने और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से जुड़े कार्य भी किए जाते हैं।

8.5 कृषि उत्पादकता में अप्रत्यक्ष वृद्धि :

जब जल–संरक्षण और भूमि–सुधार के कार्य होते हैं, तो इसका सकारात्मक प्रभाव कृषि उत्पादन पर भी पड़ता है।

इस प्रकार मनरेगा ग्रामीण विकास को मजदूरी. परिसंपत्ति निर्माण. प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के संयुक्त मॉडल में परिवर्तित करती है।

9. महिला सशक्तिकरण में मनरेगा की भूमिका :

मनरेगा की एक बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने ग्रामीण महिलाओं को बड़े पैमाने पर कार्यबल का हिस्सा

बनाया। इससे महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया को बल मिला।

9.1 आर्थिक स्वतंत्रता :

मजदूरी के रूप में सीधे आय प्राप्त होने से महिलाओं की आर्थिक निर्भरता कम होती है।

9.2 परिवार में निर्णय क्षमता :

जब महिलाएँ स्वयं आय अर्जित करती हैं, तो परिवार में उनकी बात का महत्व बढ़ता है।

9.3 सार्वजनिक जीवन में भागीदारी :

कार्यस्थल, पंचायत और सामुदायिक गतिविधियों में भागीदारी से महिलाओं में आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता विकसित होती है।

9.4 सामाजिक सम्मान :

मनरेगा में काम करने वाली महिलाओं को श्रम के माध्यम से सम्मानजनक पहचान मिलती है, जो पारंपरिक निर्भरता की मानसिकता को चुनौती देती है।

इस प्रकार मनरेगा ने महिला श्रम को दृश्यता, मान्यता और आर्थिक मूल्य प्रदान किया है।

10. सामाजिक न्याय और समावेशन में मनरेगा की भूमिका :

मनरेगा की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह सामाजिक रूप से कमजोर वर्गों को रोजगार के अवसर प्रदान कर उन्हें मुख्यधारा में लाने का प्रयास करती है।

प्रमुख समावेशी आयाम :

- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की भागीदारी।
- भूमिहीन मजदूरों के लिए काम का अवसर।
- गरीब परिवारों के लिए न्यूनतम आय–सुरक्षा।
- महिलाओं की सहभागिता।
- पंचायत स्तर पर लोकतांत्रिक भागीदारी।

इस अर्थ में मनरेगा केवल आर्थिक योजना नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय का व्यावहारिक उपकरण है।

11. पंचायत राज संस्थाओं को सशक्त बनाने में मनरेगा की भूमिका :

मनरेगा का संचालन ग्राम पंचायतों के माध्यम से किया जाता है। इससे स्थानीय स्वशासन की भावना को बल मिलता है। ग्राम सभा में कार्यों की प्राथमिकता तय की जाती है, पंचायतें कार्यान्वयन की जिम्मेदारी निभाती हैं और समुदाय निगरानी में भाग लेता है।

इस प्रक्रिया के कुछ महत्त्वपूर्ण परिणाम हैं :

1. स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कार्यों का चयन।
2. ग्राम स्तर पर विकास की प्राथमिकताओं का निर्धारण।
3. पंचायतों की प्रशासनिक भूमिका में वृद्धि।
4. समुदाय और प्रशासन के बीच निकटता।
5. स्थानीय लोकतंत्र की मजबूती।

12. मनरेगा की प्रमुख उपलब्धियाँ :

मनरेगा की अनेक उपलब्धियाँ विभिन्न क्षेत्रों में देखी गई हैं। यद्यपि राज्यों और जिलों के अनुसार इसका प्रभाव अलग–अलग रहा है, फिर भी इसकी कुछ सामान्य उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं :

12.1 मजदूरी–आधारित आय में वृद्धि :

ग्रामीण गरीब परिवारों को अतिरिक्त आय प्राप्त हुई, जिससे उनके उपभोग स्तर में सुधार हुआ।

12.2 प्रवासन में कमी :

कई क्षेत्रों में मौसमी पलायन की तीव्रता में कमी आई, क्योंकि गाँव में ही रोजगार उपलब्ध हुआ।

12.3 महिला श्रम सहभागिता में वृद्धि :

ग्रामीण महिलाओं की मजदूरी–आधारित कार्यों में भागीदारी बढ़ी।

12.4 प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण :

जल–संरक्षण, भूमि सुधार और हरित कार्यों के माध्यम से दीर्घकालिक सामुदायिक लाभ संभव हुआ।

12.5 ग्रामीण अवसंरचना का विकास :

छोटी लेकिन उपयोगी परिसंपत्तियों ने ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया।

12.6 संकट के समय सुरक्षा कवच :

आर्थिक मंदी, सूखा, महामारी या कृषि संकट जैसी परिस्थितियों में मनरेगा ने सुरक्षा कवच की भूमिका निभाई।

13. मनरेगा के समक्ष चुनौतियाँ :

यद्यपि मनरेगा का उद्देश्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, परंतु इसके क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ सामने आती रही हैं।

13.1 मजदूरी भुगतान में विलंब :

सबसे प्रमुख समस्या समय पर मजदूरी भुगतान न होना है। इससे श्रमिकों का विश्वास प्रभावित होता है।

13.2 प्रशासनिक जटिलताएँ :

पंजीकरण, मांग दर्ज करने, मस्टर रोल, मापन और भुगतान की प्रक्रियाओं में कई बार अनावश्यक जटिलता होती है।

13.3 कार्य मांगने की व्यवस्था का कमजोर होना :

योजना मांग–आधारित है, परंतु व्यवहार में कई बार श्रमिकों को काम मांगने की वास्तविक सुविधा नहीं मिलती।

13.4 भ्रष्टाचार और फर्जीवाड़ा :

कुछ स्थानों पर मस्टर रोल में गड़बड़ी, फर्जी उपस्थिति, घटिया कार्य या संसाधनों के दुरुपयोग की शिकायतें मिलती रही हैं।

13.5 परिसंपत्तियों की गुणवत्ता :

कई बार किए गए कार्य टिकाऊ नहीं होते या उनकी उपयोगिता सीमित रह जाती है।

13.6 सामाजिक अंकेक्षण की कमजोरी :

जहाँ सामाजिक अंकेक्षण प्रभावी नहीं है, वहाँ पारदर्शिता और जवाबदेही कमजोर पड़ जाती है।

13.7 तकनीकी और संस्थागत कमी :

योजना के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए प्रशिक्षित कर्मियों, तकनीकी स्टाफ और स्थानीय प्रबंधन की आवश्यकता होती है, जो हर जगह पर्याप्त नहीं है।

14. मनरेगा का आलोचनात्मक विश्लेषण :

मनरेगा को लेकर दो प्रकार के विचार सामने आते हैं। एक पक्ष इसे ग्रामीण गरीबों के लिए अत्यंत प्रभावशाली सुरक्षा कवच और सामाजिक न्याय का उपकरण मानता है। दूसरा पक्ष कहता है कि योजना का क्रियान्वयन कई जगह कमजोर है, जिससे इसकी दक्षता घट जाती है।

वास्तव में दोनों पक्षों में आंशिक सत्यता है। यदि योजना को उसके मूल स्वरूप 'अधिकार, समयबद्ध रोजगार, पारदर्शिता, सामाजिक अंकेक्षण और टिकाऊ परिसंपत्ति निर्माण' के साथ लागू किया जाए, तो यह अत्यंत परिवर्तनकारी सिद्ध हो सकती है। लेकिन यदि इसे केवल कागजी उपलब्धियों, अपारदर्शिता और भुगतान–विलंब के साथ चलाया जाए, तो इसका सामाजिक प्रभाव सीमित हो जाता है।

अतः समस्या योजना की अवधारणा में कम और क्रियान्वयन में अधिक दिखाई देती है।

15. मनरेगा को अधिक प्रभावी बनाने के उपाय :

मनरेगा को और अधिक प्रभावी, पारदर्शी और परिणामकारी बनाने के लिए निम्न उपाय आवश्यक हैं–

15.1 समयबद्ध मजदूरी भुगतान :

भुगतान में विलंब को समाप्त करना श्रमिकों के हित में सबसे आवश्यक कदम है।

15.2 वास्तविक मांग-आधारित व्यवस्था :

श्रमिकों को काम मांगने, आवेदन करने और उसकी पावती प्राप्त करने की सरल और पारदर्शी व्यवस्था होनी चाहिए।

15.3 ग्राम पंचायतों की क्षमता-वृद्धि :

स्थानीय निकायों को प्रशिक्षण, तकनीकी सहयोग और संसाधन उपलब्ध कराना आवश्यक है।

15.4 सामाजिक अंकेक्षण को मजबूत करना :

सामाजिक अंकेक्षण को नियमित, स्वतंत्र और प्रभावी बनाया जाना चाहिए।

15.5 टिकाऊ परिसंपत्तियों पर बल :

ऐसे कार्यों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिनका दीर्घकालिक लाभ कृषि, जल, पर्यावरण और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मिले।

15.6 महिलाओं और कमजोर वर्गों की भागीदारी बढ़ाना :

इस योजना को सामाजिक समावेशन के व्यापक मंच के रूप में और अधिक सशक्त किया जा सकता है।

15.7 तकनीकी पारदर्शिता :

डिजिटल मस्टर रोल, भुगतान ट्रैकिंग, जियो–टैगिंग, ऑनलाइन निगरानी और सार्वजनिक सूचना प्रणाली से पारदर्शिता बढ़ाई जा सकती है।

16. गांधीवादी दृष्टि और मनरेगा :

मनरेगा को गांधीवादी ग्राम स्वराज, श्रम की गरिमा, स्थानीय स्वावलंबन और सामुदायिक विकास की दृष्टि से भी समझा जा सकता है। महात्मा गांधी का विचार था कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है और गाँवों का विकास श्रम, सहयोग, विकेंद्रीकरण और स्वावलंबन पर आधारित होना चाहिए।

मनरेगा इन सिद्धांतों से कई स्तरों पर मेल खाती है :-

- ग्राम पंचायत आधारित क्रियान्वयन।
- स्थानीय श्रम का उपयोग।
- सामुदायिक परिसंपत्तियों का निर्माण।
- ग्रामीण गरीबों को सम्मानजनक श्रम।
- स्थानीय विकास को प्राथमिकता।

यद्यपि मनरेगा आधुनिक प्रशासनिक ढाँचे के भीतर काम करती है, फिर भी इसकी मूल भावना गांधीवादी ग्राम–केंद्रित विकास से निकटता रखती है।

17. समकालीन संदर्भ में मनरेगा का महत्व :

आज के समय में जब ग्रामीण भारत जलवायु परिवर्तन, कृषि संकट, रोजगार असुरक्षा, प्रवासन, बढ़ती लागत और सामाजिक विषमता जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, मनरेगा की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। यह योजना केवल तात्कालिक राहत नहीं देती, बल्कि ग्रामीण समाज को एक न्यूनतम सुरक्षा ढाँचा उपलब्ध कराती है।

विशेष रूप से संकट के दौर में मनरेगा की उपयोगिता निम्न रूपों में सामने आती है :–

- आकस्मिक आय–सहारा।
- स्थानीय रोजगार।
- सामुदायिक संरचना निर्माण।
- जलवायु–उपयुक्त कार्य।
- गरीब परिवारों के लिए सुरक्षा तंत्र।

इसलिए मनरेगा को केवल गरीबी–उन्मूलन कार्यक्रम के रूप में नहीं, बल्कि ग्रामीण सामाजिक–आर्थिक स्थिरता के आधार स्तंभ के रूप में देखना चाहिए।

18. निष्कर्ष :

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना भारत के ग्रामीण विकास इतिहास की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस योजना ने पहली बार ग्रामीण गरीबों को रोजगार के प्रश्न पर कानूनी अधिकार प्रदान किया। मनरेगा ने ग्रामीण परिवारों को मजदूरी–आधारित आय, स्थानीय रोजगार, महिला सहभागिता, सामाजिक समावेशन और ग्राम–स्तरीय विकास की नई दिशा दी है। साथ ही, इसने जल–संरक्षण, भूमि विकास और सामुदायिक परिसंपत्तियों के निर्माण के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने की क्षमता भी प्रदर्शित की है।

इसके बावजूद, भुगतान में देरी, पारदर्शिता की कमी, प्रशासनिक अक्षमता, भ्रष्टाचार और परिसंपत्ति

गुणवत्ता जैसी समस्याएँ इसके समक्ष गंभीर चुनौती हैं। इन चुनौतियों का समाधान प्रभावी शासन, स्थानीय उत्तरदायित्व, तकनीकी सुधार और सामाजिक अंकेक्षण की मजबूती से किया जा सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मनरेगा केवल रोजगार देने वाली योजना नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण गरिमा, सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक भागीदारी और समावेशी विकास का एक सशक्त माध्यम है। यदि इसे सही भावना और कुशल क्रियान्वयन के साथ लागू किया जाए, तो यह भारत के ग्रामीण पुनर्निर्माण में दीर्घकालिक परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकती है।

संदर्भ सूची :

1. दत्त, र. एवं सुंदरम, के. (2019). भारतीय अर्थव्यवस्था. नई दिल्ली : एस. चाँद एंड कंपनी।
2. सिंह, आर. (2020). ग्रामीण रोजगार योजनाएँ और सामाजिक सुरक्षा. भारतीय लोक प्रशासन समीक्षा, 14(2), 45–61.
3. शर्मा, पी. (2021). मनरेगा और ग्रामीण विकास का संबंध. ग्रामीण अध्ययन पत्रिका, 9(1), 88–104.
4. कुमार, ए. (2018). रोजगार गारंटी और ग्रामीण आजीविका सुरक्षा. सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 7(3), 55–72.
5. मिश्रा, एस. (2022). मनरेगा में महिला भागीदारी : एक विश्लेषण. महिला अध्ययन जर्नल,11(2), 112–128.
6. Dreze. J., & Khera, R. (2017). Recent Social Security Initiatives in India. World Development, 98, 555-572.
7. Ambasta, P., Shankar, P. S. V., & Shah, M. (2008). Two Years of NREGA : The Road Ahead. Economic and Political Weekly, 43(8), 41-50.
8. Government of India. Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act : Operational Guidelines.
9. Ministry of Rural Development. Reports on MGNREGA Implementation.
10. NABARD and Rural Development Studies related publications.

Email Id: pushpakumari8210485041@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 143–148
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

किन्नर जीवन : पीड़ा की एक अनकही दास्तान

('पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

विशाल साहु
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, रेवेंशॉ विश्वविद्यालय, कटक–753003

आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास को विशिष्ट एवं समर्थ स्थान प्राप्त है। इसमें यथार्थ और कल्पना का ऐसा सुसंगठित समन्वय उपस्थित होता है, जो उसे पूर्णता की ओर उन्मुख करता है। समाज का स्वरूप उपन्यास में प्रतिबिंबित होकर अपनी संपूर्ण जटिलता के साथ समाज के समक्ष पुनः प्रकट होता है। इसीलिए सत्य को उद्घाटित करने की जो व्यापक क्षमता उपन्यास में निहित है, वह उसे अन्य विधाओं से विशिष्ट बनाती है। उपन्यास में मानवीय संवेदनाओं को संचय कर आधुनिक मनुष्य ने उसे आत्मीयता के आलोक के तहत स्वीकार किया है। उपन्यास गतिशील चित्रावली की भांति हमारे जीवन के प्रवाह को ग्रहण करता है और हमारे सम्मुख उपस्थित होकर जीवन को देखने की सजग दृष्टि प्रदान करता है। इसके माध्यम से मानव द्वारा भोगे हुए सत्य तथा यथार्थ की अभिव्यक्ति संभव हो पाती है। उपन्यास जीवन की एकता में निहित विविधता तथा अपूर्णता में स्थित एकता व पूर्णता को प्रतिष्ठित करने का गंभीर प्रयास करता है।

आधुनिक गद्य साहित्य में उपन्यास एवं अस्मितामूलक विमर्श के मध्य घनिष्ठ संबंध स्थापित हो चुका है। दलित, स्त्री, आदिवासी एवं पर्यावरण जैसे अस्मिता केंद्रित विमर्शों के लिए उपन्यास अत्यंत प्रभावकारी माध्यम सिद्ध हुआ है। इसका कारण यह है कि, उपन्यास में सत्य संवेदनाओं की जिस समग्रता के साथ उद्भासित होता है वह अन्य विधाओं में विरल है। समकालीन विमर्शों के उदय के कारण, वे समुदाय और प्रश्न जो पूर्वकाल में साहित्यिक चिंतन की परिधि क्षेत्र में सीमित कर दिए जाते थे और समाज द्वारा निरंतर उपेक्षित रहते थे, वे क्रमशः केंद्र में प्रतिष्ठित हो रहे हैं। दलित,स्त्री,आदिवासी तथा पर्यावरण विमर्शों के साथ–साथ साहित्यिक क्षेत्र में एक नए सिरे से उभरा हुआ किन्नर विमर्श सांप्रतिक समाज एवं साहित्य चिंतन में विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट कर रहा है।

जैविक दृष्टि से वे मनुष्य जो न पूर्णतः पुरुष की श्रेणी में स्थित हैं और न ही स्त्री की परिधि में समाहित होते हैं, उन्हें 'किन्नर' की संज्ञा दी जाती है। इस संज्ञा का उच्चारण होते ही समाज के अनेक तथाकथित सभ्य व्यक्तियों के अंतर्मन में घृणा और उपेक्षा जैसे भाव स्वतः जागृत हो उठते हैं। भारतीय समाज में किन्नर समुदाय के लिए 'किन्नर', 'हिजड़ा', 'मौसी', 'पवैय्या', 'छक्का', 'मेहला', 'नपुंसकलिंग' एवं 'थर्ड जेंडर' आदि विविध संबोधनों का प्रयोग प्रचलित रहा है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में तृतीय लिंग की अवधारणा अत्यंत प्राचीन और

स्वीकृत रही है। महाभारत में 'शिखंडी' और 'बृहन्नला' जैसे पात्र इस तथ्य के प्रमाण स्वरूप स्मरण किए जाते हैं। परंपरागत व्यवहार में 'हिजड़ा' शब्द का प्रयोग होता रहा, किन्तु आधुनिक साहित्य तथा विमर्श ने इन व्यक्तियों के लिए 'हिजड़ा' के स्थान पर 'किन्नर' जैसे सम्मानपरक शब्द को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

यदि व्यापक मानवीय दृष्टि से विचार किया जाए तो समस्त सृष्टि का जनक परमपिता परमेश्वर हैं। वह किसे किस रूप में जन्म देता है, यह उसकी सृष्टि विधान की प्रक्रिया के अंतर्गत आता है। ऐसे में किन्नर समुदाय को समाज के हाशिए के पार निरंतर रूप से धकेलना, ईश्वर की सृष्टि के विधान पर प्रश्नचिह्न अंकित करने के समान है। किन्नरों का तिरस्कार करना किसी भी संवेदनशील और सभ्य समाज के लिए शोभनीय नहीं माना जा सकता।

हिंदी साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि किन्नर विमर्श पर केंद्रित प्रथम उपन्यास 'यमदीप' है, जिसकी रचना 'नीरजा माधव' ने की। इसका प्रकाशन सन् 2002 ई. में संपन्न हुआ। इसके उपरांत 'अनुसूया त्यागी' की कृति 'मैं भी औरत हूँ', 'निर्मला भुराडिया' द्वारा रचित 'गुलाम मंडी' और 'भगवंत अनमोल' के उपन्यास 'जिंदगी 50–50' में किन्नर जीवन की वेदनामयी त्रासदी का अत्यंत स्पष्ट और संवेदनापूर्ण चित्रांकन किया गया है।

'चित्रा मुद्गल' द्वारा रचित 'पोस्ट बॉक्स नं 203 नालासोपारा' उपन्यास वर्ष 2016 ई. में प्रकाशित हुआ। वर्ष 2018 ई. में भारत सरकार ने इस बेहतरीन कृति के लिए 'चित्रा मुद्गल' को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से अलंकृत किया।

'पोस्ट बॉक्स नं 203 नालासोपारा' में लेखिका ने किन्नर समाज की विषम और करुण यथार्थ स्थितियों का अत्यंत मार्मिक रेखांकन किया है। इसे पढ़ने के उपरांत पाठक का अंतर्मन अनायास आंदोलित हो उठता है। यह उपन्यास पत्रात्मक शैली में संरचित है, जिसमें किन्नर पुत्र 'विनोद' अपनी माँ (बा) को लिखे गए पत्रों के माध्यम से अपने जीवन की समस्त पीड़ाओं और करुण अनुभवों के बारे में बताता है।

इस कथा का केंद्रीय आधार स्तंभ मूलतः गुजरात से संबद्ध किंतु मुंबई में निवासरत एक संपन्न परिवार में जन्मा बालक 'विनोद' है। वह परिवार का मंझला पुत्र है। उसके अन्य दोनों भ्राता पूर्णतः सामान्य पुरुष देह तथा मानसिक संरचना वाले हैं, किंतु 'विनोद' जन्मजात शारीरिक भिन्नता से युक्त है। फलतः बाल्यकाल से ही उसके कारण परिवार को अनेक सामाजिक असुविधाओं और मानसिक दबावों का सामना करना पड़ता है। फिर भी उसे अन्य बच्चों के समान शिक्षित करने का प्रयास किया जाता है। एक विद्यालय में उसको दाखिल किया जाता है और वह मेधावी विद्यार्थी के रूप में अपनी प्रतिभा का परिचय देता है। किन्तु उसकी लैंगिक भिन्नता के कारण पड़ोस और परिवार के अनेक सदस्य उसके स्वभाव को सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाते। इसके विपरीत 'विनोद' के प्रति उसकी माता के स्नेह में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। आयु वृद्धि के साथ–साथ विनोद के आचरण में स्त्री–सुलभ प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट होने लगती हैं।

इसी सूचना के आधार पर 'चंपाबाई' नामक एक किन्नर उसे अपने साथ ले जाने की मनसा से उसके निवास तक पहुँचता है। 'विनोद' की माँ उपयुक्त उपाय अपना कर 'विनोद' को छुपा लेती है। उसके अंतर्मन में यह आशंका निरंतर बनी रहती है कि कहीं 'चंपाबाई' मार्ग से या विद्यालय से ही 'विनोद' को अपने साथ न ले जाए। इस कारण वह अपने बेटे को कहीं अकेला नहीं छोड़ती। जब वह विद्यालय जाता है, तब उसकी माता

भी उसके साथ वहाँ तक जाती और अवकाश होने तक बाहर प्रतीक्षा करती रहती। परंतु समाज और किन्नर समुदाय के भय से विनोद के पिता 'हरिंद्र बाबू' अंततः 'विनोद' के विद्यालय जाने पर रोक लगा देते हैं। यह निर्णय विनोद के लिए अत्यंत पीड़ादायक सिद्ध होता है, क्योंकि वह अध्ययनशील और प्रतिभाशाली छात्र था। वह अपने पिता से विनयपूर्वक निवेदन करता है, "मुझे छुट्टी नहीं करनी। मेरी पढ़ाई बर्बाद हो रही है। पिछड़ जाऊँगा मैं अपनी कक्षा में। पिछड़ना नहीं चाहता मैं। मैं बोर्ड टॉप करना चाहता हूँ। मैं टॉप कर सकता हूँ पप्पा! मैं टॉप करके दिखाऊँगा। मुझे स्कूल जाने दो..... प्लीज पापा प्लीज!"[1] 'विनोद' की उपर्युक्त उक्ति से उसकी शिक्षा के प्रति गहन अनुरक्ति का सहज अनुमान किया जा सकता है। वह शिक्षा के महत्व को भली भाँति समझता है। आगे चलकर जब वह किन्नर जीवन को स्वीकार करता है, तब अपने समुदाय के साथियों को आह्वान करते हुए कहता है, "पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिए।"[2] इससे स्पष्ट होता है कि 'विनोद' उर्फ 'विमली' उर्फ 'बिन्नी' अपने किन्नर समुदाय को शिक्षित और स्वाभिमानी बनते देखना चाहता है, क्योंकि उसके नजरिए में शिक्षा ही वह साधन है, जो किन्नर समुदाय को समाज में सम्मानित स्थान दिला सकता है। शिक्षा के अभाव के कारण किन्नरों में बहुत सारी असामाजिक क्रिया–कलाप तथा अश्लील आचरण दिखाते हैं। बचपन में जैसी शिक्षा माता–पिता द्वारा एक स्वाभाविक बच्चे को दी जाती है, अगर वैसी परवरिश एक किन्नर संतान को प्राप्त होगी, तो उसके आचरण तथा वचनों में वही शिक्षित बर्ताव झलकेगा। परंतु बाल–उम्र से परिवार द्वारा त्याग दिए जाने पर उनकी जिंदगी का हर पहलू कठिन हो जाता हैं। इन्हीं कठिनाइयों से जूझते–जूझते पैसों की आवश्यकता, अशिक्षा तथा समाज के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार के कारण उनके स्वभाव में एक रूखापन आ जाता है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि किन्नरों को भी बचपन से सही शिक्षा दी जाए।

शिक्षा से वंचित हो जाने के उपरांत किन्नरों का निरंतर 'विनोद' के घर पर आना–जाना बढ़ता गया, और अंततः विनोद को 'चंपाबाई' के संरक्षण में सौंप दिया गया। इसके पश्चात समाज में यह असत्य सूचना प्रसारित कर दी गई कि किसी दुर्घटना में 'विनोद' का देहांत हो चुका है। इस कपटपूर्ण समाचार ने उसके अंतर्मन को झकझोर दिया और उसके अस्तित्व की भूमि मानो खिसक गई। इस मार्मिक घटना का स्मरण करते हुए वह अपनी माँ को पत्र में लिखता है, "तूने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया।..... जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अंधा कुआँ है जिनमें सिर्फ साँप बिच्छू रहते हैं। साँप बिच्छू बनकर वे पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएँ ने उन्हें आदमी रहने नहीं दिया।"[3] इन शब्दों में 'विनोद' का किन्नर समाज के अद्भूत तथा असामाजिक हरकतों के प्रति तीव्र क्षोभ और आहत संवेदना मुखर हो उठती है। वह किन्नर समुदाय में व्याप्त अनैतिक प्रवृत्तियों और विघटनकारी स्थितियों पर अपना आक्रोश व्यक्त करता है, किन्तु साथ ही वह इस विकृति का संपूर्ण उत्तरदायित्व किन्नरों पर नहीं डालता। उसका संकेत उस सामाजिक व्यवस्था की ओर है, जिसने परिस्थितियों को इस प्रकार निर्मित किया कि मनुष्यत्व का स्वाभाविक स्वरूप ही विकृत हो गया।

किन्नर समुदाय में सम्मिलित हो जाने के उपरांत भी 'विनोद' का हृदय अपने पारिवारिक संबंधों से विरक्त नहीं हो पाता। जब उसे ज्ञात होता है कि उसके कारण उसके परिवार को अपना निवास त्यागकर नालासोपारा जाना पड़ा, तब वह गहन आत्मग्लानि और वेदना से भर उठता है । सामान्यतः कहा जाता है कि शारीरिक पीड़ा की अपेक्षा मानसिक आघात अधिक कष्टदायी होता है। 'विनोद' के जीवन में यह सत्य और भी तीव्र रूप से

प्रत्यक्ष होता है, क्योंकि किन्नर जीवन स्वीकार करने के पश्चात उसे देहगत यातना के साथ–साथ अंतर्मन के असह्य संताप से भी जूझना पड़ता है।

मानसिक तनाव क्रमशः इतना प्रबल हो उठता है कि वह खुदकुशी करने के विचार तक पहुँच जाता है। तथापि वह इस नियति को अपनी शर्तों पर निर्धारित करना चाहता है। वह अपनी माँ को लिखता है, "शहर में मरूँगा तो लाश किन्नरों के हाथ लगेगी। किन्नरों के विधि विधान से मौत का निपटारा होगा। किन्नर के रूप में मैं मरना नहीं चाहता। अपनी मर्जी से मर सकता हूँ तो मौत का निपटारा भी मेरी मर्जी से होना चाहिए। ऊँचे पहाड़ पर जा कर मरना उचित होगा। हजारों फीट गहरी अलंघ्य जटिल घाटी में कौन खोजेगा मेरी लाश को? मेरी लाश के टुकड़ों से चिपक कर तुझे भी छाती कूटने का मौका नहीं मिलेगा। यही तो चाहता हूँ मैं।"[4] इन पंक्तियों में उसकी चरम निराशा और विद्रोही संवेदना व्यक्त होती है। वह अपने अस्तित्व पर नियंत्रण का अधिकार चाहता है क्योंकि जीवन के प्रत्येक निर्णय में उसे पराधीनता का अनुभव हुआ है। इस प्रकार 'विनोद' का चरित्र केवल सामाजिक उपेक्षा का शिकार नहीं अपितु आत्मसम्मान की खोज में तड़पते मनुष्य का प्रतीक बन जाता है। किन्नर भी एक मनुष्य है। अतः जीने की पूरी स्वाधीनता उसे होनी चाहिए। परंतु उसे आदि से अपनी जिंदगी के साथ तमाम समझौते करने पड़ते हैं। लिंगगत भिन्नता के लिए कसूरवार न होने के बावजूद ताउम्र वह दंड भोगता है।

'विनोद' स्वयं को स्त्रैण पुरुष मानने की धारणा का स्पष्ट प्रतिवाद करता है। उसका मत है कि जब उसमें तथाकथित स्त्रैण पुरुषत्व के कोई लक्षण विद्यमान ही नहीं हैं, तो केवल सामाजिक सुविधा के लिए वह इस प्रकार की पहचान को स्वीकार क्यों करे। वह अपनी अंतरात्मा की सच्चाई के साथ जीना चाहता है। उसके शब्द हैं, "स्त्रैण लक्षण मुझमें कभी नहीं रहे। अब भी नहीं है और जो लक्षण मुझमें नहीं हैय उन्हें सिर्फ इसलिए स्वीकारूँ कि मेरे बिरादरी के शेष सभी, उन हाव भाव को अपना चुके हैं?"[5] इस कथन से यह प्रत्यक्ष होता है कि 'विनोद' अपने आपको किसी पूर्वनिर्धारित श्रेणी में रखे जाने का विरोध करता है। वह यह नहीं चाहता कि उसे किन्नर अथवा तृतीय लिंग की परिभाषा के आधार पर मान्यता दी जाए। उसकी आकांक्षा मात्र इतनी है कि उसे उसके वास्तविक स्वरूप में पहचाना और स्वीकार किया जाए। वह अपने अस्तित्व को किसी भी सामाजिक रूढ़ि या आरोपित पहचान के अधीन करना नहीं चाहता।

प्रारंभ से ही किन्नर समुदाय के प्रति समाज की दृष्टि तिरस्कारपूर्ण और संकुचित रही है। विडंबना यह है कि इस उपेक्षा की प्रथम अनुभूति उन्हें अपने ही परिवार में होती है। सामाजिक भय और लोकापवाद के दबाव में अनेक अभिभावक अपने ही संतानों के प्रति वितृष्णा का भाव धारण कर लेते हैं, जबकि किसी भी बालक के लिए उसके माता पिता ही संपूर्ण संसार होते हैं। यदि अभिभावक बाह्य आलोचनाओं की उपेक्षा कर अपने किन्नर शिशु का पालन पोषण अन्य बच्चों के समान स्नेह और स्वीकृति के साथ करें तो संभवतः उसे बाल्यावस्था से मानसिक संताप का दंश सहना नहीं पड़ेगा। 'विनोद' इसी विडंबना को तीव्र आक्रोश के साथ व्यक्त करता है, "कन्या भ्रुण हत्या के दोषी माता पिता अपराधी हैं। उससे कम दंडनीय अपराध नहीं जननांग दोषी बच्चों का त्याग।"[6] इन शब्दों में केवल व्यक्तिगत पीड़ा ही नहीं अपितु समूची सामाजिक मानसिकता के विरुद्ध एक नैतिक प्रतिवाद निहित है। वह संकेत करता है कि जन्म से भिन्नता कोई अपराध नहीं किन्तु उस भिन्नता के कारण संतान का परित्याग करना निश्चय ही मानवीय संवेदना की करूण तथा निर्मम हत्या है।

उपन्यास में 'पूनम जोशी' नामक किन्नर पात्र के माध्यम से किन्नर समुदाय पर होने वाले शारीरिक शोषण की भयावह सच्चाई को उद्घाटित किया गया है। 'पूनम जोशी', 'विनोद' की अत्यंत घनिष्ठ सखी है। उसके व्यक्तित्व में स्त्रैण लक्षण विद्यमान हैं। एक राजनीतिक दल के विधायक का भतीजा तथा उसके सहयोगी मिलकर 'पूनम' के साथ निर्ममता की पराकाष्ठा तक पहुँचते हुए सामूहिक दुष्कर्म करते हैं। इस जघन्य कृत्य के पीछे जो मानसिकता कार्यरत है वह तथाकथित सभ्य समाज के लिए अत्यंत कलंकित करने वाली है। इस प्रसंग का चित्रण लेखिका ने अत्यंत मार्मिक और हृदय विदारक शैली में किया है "वह डरे नहीं। कपड़े वे बदल देंगे उसके। बस? वह उनकी दिली ख्वाहिश पूरी कर दे। हिजड़ों का गुप्तांग नहीं देखा है उन्होंने। कैसा होता है उनका गुप्तांग?..... वहशियों ने उठाकर झुलाते हुए उसे बेरहमी से फर्श पर चित पटक दिया। मुँह में उसके ठूँस दी सतरंगि किराये की चुनरी।"[7] विधायक का भतीजा 'बिल्लू' और उसके साथियों द्वारा किया गया यह अमानवीय अत्याचार किसी भी संवेदनशील मनुष्य को विचलित कर देने वाला है। इस घटना के उपरांत 'पूनम' का स्वास्थ्य गंभीर रूप से प्रभावित होता है। इस त्रासदी का गहरा आघात 'विनोद' के अंतर्मन पर भी पड़ता है और वह इस कथित सभ्य समाज से इस अन्याय का उत्तर माँगने के लिए अनशन तक करने का संकल्प मन में धारण कर लेता है।

इस उपन्यास में 'विनोद' को परंपरागत रूप से ताली बजाकर आजीविका चलाने या देह व्यापार में संलग्न किन्नर के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। घर से विस्थापित होने के उपरांत भी वह अध्ययन करता है और कंप्यूटर का दक्ष ज्ञान अर्जित करता है। अपनी बौद्धिक क्षमता के आधार पर वह चंडीगढ़ के एक विधायक से संपर्क स्थापित करता है, जहाँ उसे अपनी अस्मिता का औपचारिक स्वीकृतिपरक बोध प्राप्त होता है। वहीं से वह समूचे किन्नर समुदाय के उत्थान के लिए सक्रिय चिंतन और प्रयास प्रारंभ करता है। जब उसे एक व्यापक जनसमुदाय के सम्मुख वक्तव्य देने का अवसर प्राप्त होता है, तब वह निर्भीक स्वर में शासन तंत्र और अभिभावकों से आग्रह करता है, "मैं सरकार से अपील करता हूँ इस सभागार में, लिंग दोषी बिरादरी की घर वापसी को वह सुनिश्चित करें। कानून बनाये। बाध्य करे अभिभावकों को। घर बहिष्कृत बच्चों को। वे जिस भी उम्र के पड़ाव में हों, अपने साथ रखें। प्रचार करें, अखबारों, चौनलों और आकाशवाणी पर विज्ञापनों के माध्यम से उनकी चेतना को झकझोरें, ताकि भविष्य में कोई माता पिता लोकापवाद के भय से लिंग दोषी औलाद को दर दर की ठोकरें खाने के लिए घूरे पर न फेंके। आप सबसे भी अपील है मेरी..... बरजिये बिरादरी को। शपथ लीजिए कि यहाँ से लौट कर आप लिंग दोषी नवजात बच्चे बच्ची को, किशोर किशोरी को, युवक को जबरन उसके माता पिता से अलग करने का पाप नहीं करेंगे, उससे उसका घर नहीं छीनेंगे। उपहासों के लात घूसों से जलील होने की विवशता नहीं सौंपेंगे।"[8] इस वक्तव्य में विनोद का व्यक्तित्व एक जागरूक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उभरता है। वह केवल व्यक्तिगत स्वीकृति नहीं चाहता अपितु संस्थागत परिवर्तन की माँग करता है। उसकी दृष्टि में किन्नर समुदाय की मुक्ति परिवार से पुनर्संबंध और सामाजिक चेतना के रूपांतरण में निहित है।

'विनोद' अपनी माँ द्वारा कही गई बातों का स्मरण करते हुए पत्र में लिखता है, "समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते पर मुझे विश्वास है, हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेगा। वक्त के साथ नजरिया बदलेगा।"[9] इन पंक्तियों में निराशा के बीच आशा की सूक्ष्म रेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। किन्नरों के प्रति अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण के चलते लेखिका यहाँ संकेत करती हैं कि

वर्तमान की कठोर सामाजिक मानसिकता स्थायी नहीं है। समय के प्रवाह के साथ मान्यताएँ परिवर्तित होती हैं और दृष्टिकोण भी रूपांतरित होता है। किन्नर समुदाय के संदर्भ में समाज की सोच में सकारात्मक परिवर्तन की जो संभावना व्यक्त की गई है वह एक मानवीय और प्रगतिशील विश्वास का द्योतक है। यह आशावादी दृष्टि केवल भावुक कल्पना नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन की ऐतिहासिक प्रक्रिया पर आधारित विश्वास है कि चेतना का विकास अंततः स्वीकृति और संवेदना की दिशा में ही अग्रसर होता है।

निष्कर्षतः 'पोस्ट बॉक्स नं 203 नालासोपारा' उपन्यास में वर्णित प्रसंगों के माध्यम से घर से निष्कासित किन्नर संतान की मनोदशा का अत्यंत संवेदनशील और मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है। शारीरिक वेदना और मानसिक संताप का बोझ सहते हुए भी किन्नर पात्र अपने परिवार के प्रति द्वेष नहीं पालता, यद्यपि उसी परिवार द्वारा उसे अस्वीकार और अपमानित किया गया हो। मानसिक तनाव के बीच शिक्षा ग्रहण करने की आकांक्षा और अपने समुदाय के उत्थान का व्यापक चिंतन यह सिद्ध करता है कि संवेदनशील दृष्टि और परिवर्तन की चेतना किसी भी सीमित सामाजिक परिभाषा की मोहताज नहीं होती। जिस पीड़ा और उपेक्षा की कल्पना एक सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता, उसे अल्पायु में भोगते हुए भी किन्नर पात्र जीवन के पुनर्निर्माण की राह पर अग्रसर होने का साहस रखता है। वास्तव में उसे तिरस्कार या दंड की नहीं बल्कि प्रेम, स्नेह और सम्मान की आवश्यकता है। अतः प्रत्येक अभिभावक का यह नैतिक दायित्व है कि वह सामाजिक लज्जा या लोकापवाद के भय से अपने किन्नर संतानों को घर अथवा हृदय से निष्कासित न करें, क्योंकि ऐसा परित्याग उस संतान के जीवन की प्रथम और सबसे गहन त्रासदी बन जाती है, जिसका दंश वह आजीवन विस्मृत नहीं कर पाता।

संदर्भ :

1. मुद्गल चित्रा , पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा , सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृ. सं. 15
2. वही, पृ. सं. 110
3. वही, पृ. सं. 11
4. वही, पृ. सं. 33
5. वही, पृ. सं. 10
6. वही, पृ. सं. 178
7. वही, पृ. सं. 203
8. वही, पृ. सं. 186
9. वही, पृ. सं. 10

ईमेल – vsahoo73@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 149-155
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

विद्यार्थियों की शैक्षणिक प्रगति और मानसिक स्वास्थ्य पर डिजिटलीकरण का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ राजीव कुमार सक्सेना
असोसिएट प्रो०, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय बनबसा (चम्पावत)

प्रस्तावना :

शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा व्यक्तित्त्व का विकसित करने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जो उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। शिक्षा संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है सीखना और सिखाना। 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने–सिखाने की क्रिया। शिक्षा व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा सामाजिक संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है। बालक शिक्षा के माध्यम से समाज के आधारभूत नियमों, व्यवस्थाओं, समाज के प्रतिमानों एवं मूल्यों को आत्मसात करता है। यह एक संस्था के रूप में कार्य करती है ताकि पूर्व पीढ़ी भावी पीढ़ी को अपने ज्ञान हस्तांतरित कर सके।

शिक्षा अर्थात् ज्ञान, सदाचार, उचित आचरण, तकनीकी शिक्षा, दक्षता, विद्या आदि को प्राप्त करने की एक प्रक्रिया है। इस प्रकार शिक्षा मानसिक, नैतिक और सौन्दर्य विषयक के तत्वों पर केंद्रित होती है। यह मनुष्य के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया है, ज्ञान, कौशल, मूल्य और व्यवहार का क्रमिक अधिग्रहण है। शिक्षा केवल परीक्षा या डिग्री ही नहीं, बल्कि सोचने, समझने और सही निर्णय लेने की क्षमता विकसित करती है। साथ ही यह व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व सामाजिक विकास को संतुलित भी करती है। इस प्रकार शिक्षा के प्रमुख घटक हैं : (1) ज्ञान का अर्जन, (2) कौशल का विकास (व्यावहारिक दक्षता), (3) मूल्यों का संस्कार (नैतिकता, अनुशासन) एवं (4) व्यक्तित्व का निर्माण।

महात्मा गांधी जी ने कहा, 'शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।' तथा स्वामी विवेकानंद के मतानुसार, 'मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।' इस प्रकार वर्तमान में शिक्षा के दो मुख्य स्वरूपों को देखा जा सकता है :

(1) औपचारिक शिक्षा :

(विद्यालय/महाविद्यालय में नियोजित पाठ्यक्रम द्वारा) औपचारिक अर्थ में शिक्षा किसी संस्था में एक निश्चित समय तथा निश्चित स्थानों (विद्यालय, महाविद्यालय) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली एक सोद्देश्य

प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थी निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर संबंधित परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना सीखता है।

(2) अनौपचारिक शिक्षा :

(परिवार, समाज, मीडिया के माध्यम से) अनौपचारिक अर्थ में शिक्षा किसी समाज में निरंतर चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है क्योंकि समाज में मनुष्य क्षण–प्रतिक्षण नए–नए अनुभव प्राप्त करता है व करवाता है, जिससे उसका दिन–प्रतिदन का व्यवहार प्रभावित होता है।

प्राचीन काल में औपचारिक शिक्षा मुख्य रूप से गुरुकुल, आश्रम और मंदिरों में प्रदान की जाती थी और यह एक आवासीय प्रणाली थी। पूर्व काल में शिक्षा गुरु–शिष्य परंपरा पर आधारित, निशुल्क, मौखिक और चरित्र निर्माण पर केंद्रित हुआ करती थी। इसमें वेदों, दर्शन, कला, और युद्ध कौशल जैसे विषयों की शिक्षा के साथ अनुशासन अनिवार्य था, और उपनयन संस्कार के बाद ही शिक्षा प्रारंभ होती थी, उस काल में शिक्षा का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक उत्थान, चारित्रिक उत्थान, प्रकृति का सान्निध्य, धार्मिक चिन्तन एवं शैक्षिक संस्कार इत्यादि होता था। वर्तमान में औपचारिक शिक्षा तीन स्तरों में विभाजित की गई है जो शिक्षण प्रक्रिया को क्रमिक और अधिक प्रभावशाली बनाते हैं : (i) स्मृति स्तर, (ii) बोध स्तर एवं (iii) चिंतन स्तर।

(i) **स्मृति स्तर :** यह शिक्षण का सबसे निचला स्तर है, जो रटने पर जोर देता है। इसके प्रवर्तक हर्बल हैं।

(ii) **बोध स्तर :** यह स्तर रटने के बजाय विषय को समझने और अंतर्दृष्टि विकसित करने पर केंद्रित है। इसके प्रवर्तक मॉरिसन हैं।

(iii) **चिंतन स्तर :** यह सबसे उच्च और व्यावहारिक माना जाता है जो समस्या समाधान, आलोचनात्मक सोच और रचनात्मकता को बढ़ावा देता है। इसके प्रवर्तक हंट हैं। यह स्तर शिक्षण समस्या केंद्रित होता है। चिंतन स्तर में शिक्षक अपने छात्रों की तर्क तथा कल्पना शक्ति को बढ़ाता है। इस स्तर में अध्यापक बच्चों के सामने समस्या उत्पन्न करता है और बच्चों को उस पर अपने स्वतंत्र चिंतन करने का समय देता है, ताकि छात्र स्वयं प्रयास से उन समस्याओं का समाधान कर सके।

डिजिटल शिक्षा :

शिक्षण में चिंतन स्तर को अधिक क्रियाशील बनाने के लिए ही इसमें प्रौद्योगिकी का समावेश किया गया है। शिक्षा और प्रौद्योगिकी के इसी तालमेल ने जन्म दिया है डिजिटल शिक्षा को। यह भारत के शैक्षिक क्षेत्र में एक परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में उभरी है। स्मार्टफोन और इंटरनेट कनेक्टिविटी की उपलब्धता ने शिक्षण की प्रक्रिया को पारंपरिक सीमाओं से परे कर दिया है। डिजिटल शिक्षा ने छात्रों को शैक्षिक संसाधनों की एक विस्तृत श्रृंखला तक पहुँच प्रदान की है। इसने शिक्षण विधियों में एक क्रांति ला दी है, जिससे शिक्षा अधिक आकर्षक, सुलभ और समावेशी बन गई है क्योंकि यह पारंपरिक शिक्षण विधियों की तुलना में अधिक लचीली, व्यक्तिगत और गतिशील है। इसका मुख्य उद्देश्य लचीलापन, वास्तविक समय पर प्रतिक्रिया और संसाधन प्रदान करके पारंपरिक शिक्षा में मौजूद कमियों को दूर करना, दुर्गम क्षेत्रों में शिक्षा की उपलब्धता, स्थानीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली इलेक्ट्रॉनिक सामग्री विकसित करना, साक्षरता में वृद्धि, नवाचार और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करना, अन्वेषण के नये क्षेत्र एवं निःशुल्क पाठ्यक्रम प्रदान करना आदि है। भारत के शिक्षा मंत्रालय ने डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा

देने के लिए कई पहल की हैं जैसे– राष्ट्रीय डिजिटल लाइब्रेरी (NDL), ई–पाठशाला, दीक्षा, वर्चुअल लैब्स, राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संवर्धित शिक्षा कार्यक्रम (NPTEL), प्रज्ञात, दिव्यांगों के लिए सांकेतिक भाषा चैनल एवं रेडियो प्रसारण आदि।

चुनौतियाँ :

निस्संदेह भारत में डिजिटल शिक्षा के कई लाभ हैं, लेकिन इसी के साथ डिजिटल शिक्षा के सामने कुछ चुनौतियाँ भी आई है जो कि निम्नलिखित है : इंटरनेट कनेक्टिविटी में बाधा, तकनीकी शिक्षा का अभाव, महंगें प्रौद्योगिकी संसाधन, भाषाई बाधा, प्रशिक्षण की कमी, दुर्गम क्षेत्रों में उपयुक्त संचार का अभाव, साथ ही कुछ मानसिक एवं शारीरिक समस्याएं।

उद्देश्य :

उपयुक्त विषय के महत्व को समझते हुए ही विद्यार्थियों की शैक्षणिक प्रगति और मानसिक स्वास्थ्य पर डिजिटलीकरण के प्रभाव को ज्ञात करने के उद्देश्य से ही इस संक्षिप्त शोध को करने की आवश्यकता महसूस की गई। प्रस्तुत अध्ययन हेतु निम्नलिखित उद्देश्यों का समावेश किया गया :

- विद्यार्थियों को प्राप्त तकनीकी संसाधनों का अध्ययन करना।
- प्रयोग सम्बन्धी बाधाओं का अध्ययन करना।
- मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।

शोध अभिकल्पना :

प्रस्तुत शोध पीएम श्री राजकीय बालिका इंटर कॉलेज, टनकपुर (चम्पावत) की कक्षा 9–12 की 96 में से 82 (85%) छात्राओं को सरल यादृच्छिक निदर्शन की लॉटरी प्रणाली के माध्यम से उत्तरदाताओं के रूप में चयनित कर सम्पन्न किया गया, तत्पश्चात् आँकड़ों को एकत्रित करके तथ्यों का वर्णनात्मक विधि से सामान्यीकरण किया गया।

सारणी संख्या-01

तकनीकी संसाधनों तक पहुँच	संख्या	प्रतिशत
लैपटॉप	6	7.32
स्मार्टफोन	68	82.93
हाई–स्पीड इंटरनेट	8	9.76
कुल	82	100

उपरोक्त सारणी में विद्यार्थियों की तकनीकी संसाधनों तक पहुँच को जानने का प्रयास किया गया है। तथ्यों से ज्ञात होता है कि 82 में से 6 (7.32%) विद्यार्थियों के पास लैपटॉप, अधिकतम 68 (82.93%) विद्यार्थियों के पास स्मार्टफोन एवं 8 (9.76%) विद्यार्थियों के पास हाई–स्पीड इंटरनेट उपलब्ध है।

सारणी संख्या-02

प्रयोग संबंधी बाधाएं	संख्या	प्रतिशत
इंटरनेट कनेक्टिविटी में बाधा	74	90.24
डिजिटल साक्षरता में कमी	8	9.76
कुल	82	100

उपरोक्त सारणी में डिजिटल कनेक्टिविटी संबंधी बाधाओं को जानने का प्रयास किया गया है। ज्ञात होता है कि 82 में से 74 (90.24:) विद्यार्थियों को डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रयोग करते समय इंटरनेट कनेक्टिविटी में बाधा महसूस होती है जबकि 8(9.76:) विद्यार्थियों की डिजिटल साक्षरता में कमी पाई गई।

सारणी संख्या-03

व्यक्तिगत शिक्षण	संख्या	प्रतिशत
आवश्यकतानुसार शैक्षिक सामग्री	16	19.51
24×7 उपलब्धता	8	9.76
सरल दृश्य–श्रव्य अधिगम वीडियो	58	70.73
कुल	82	100

डिजिटल शिक्षा को व्यक्तिगत शिक्षण के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि 82 में से 16 (19.51%) विद्यार्थियों को डिजिटल प्लेटफॉर्म पर आवश्यकतानुसार शैक्षिक सामग्री उपलब्ध हो जाती है, 8 (9.76%) विद्यार्थियों को डिजिटल प्लेटफॉर्म की 24×7 सेवा अधिक रूचिकर लगती है जिससे वे अपनी इच्छा से कभी भी, कहीं भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं एवं 58 (70.73%) विद्यार्थियों को डिजिटल प्लेटफॉर्म पर मिलने वाली शैक्षिक सामग्री इसलिए रुचिकर लगती है क्योंकि उपलब्ध सामग्री दृश्य–श्रव्य अधिगम वीडियो के रूप में सरलता से उपलब्ध हो जाती है।

सारणी संख्या-04

सामाजिक प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
छात्रों के माध्य आपसी संवाद में कमी	55	67.07
अकेलेपन में वृद्धि	15	18.29
अनावश्यक निर्भरता में वृद्धि	12	14.64
कुल	82	100

उपरोक्त सारणी में डिजिटलीकरण के कारण विद्यार्थियों के दैनिक जीवन पर पढ़ने वाले सामाजिक प्रभाव को दर्शाया गया है। दिए गए विवरण से ज्ञात होता है कि 82 में से 55 (67.07%) विद्यार्थियों के मध्य आपसी संवाद में कमी पाई गई, 15 (18.29%) विद्यार्थी बिना इंटरनेट के अकेलापन महसूस करते हैं एवं 12 (14.64%) विद्यार्थी मानते हैं कि डिजिटल प्लेटफॉर्म का अधिक प्रयोग करने से अनावश्यक ही इंटरनेट पर उनकी निर्भरता में वृद्धि हो चुकी है।

सारणी संख्या-05

मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
स्मृति शक्ति क्षीण होना	18	21.95
एकाग्रता में कमी	13	15.85
व्याकुलता में वृद्धि	51	62.20
कुल	82	100

उपरोक्त विवरण दर्शाता है कि डिजिटलीकरण विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव डालता है। 82 में से 18 (21.95%) मानते हैं कि डिजिटल प्लेटफॉर्म का अधिक प्रयोग करने से उनकी स्मृति शक्ति क्षीण हो रही है, 13 (15.85%) विद्यार्थी महसूस करते हैं कि इससे उनकी एकाग्रता में कमी आ रही है एवं 51 (62.20%) मानते हैं कि यदि वे कुछ देर तक डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रयोग नहीं करते हैं तो उन्हें एक अजीब–सी व्याकुलता महसूस होने लगती है।

सारणी संख्या-06

शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव	संख्या	प्रतिशत
शारीरिक थकान	12	14.63
नेत्र संबंधी समस्या	21	25.61
कमर दर्द	49	59.76
कुल	82	100

दी गई सारणी डिजिटलीकरण का विद्यार्थियों के शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों से अवगत करवाती है। 82 में से 12 (14.63%) विद्यार्थी डिजिटल प्लेटफॉर्म का अधिक प्रयोग करने से शारीरिक थकान महसूस करते हैं, 21 (25.61%) विद्यार्थियों को नेत्रों से संबंधित समस्या होती है और 49 (59.76%) विद्यार्थियों को कमर दर्द जैसी समस्या होती है।

सारणी संख्या-07

शैक्षिक डिजिटलीकरण एक उत्कृष्ट विकल्प	संख्या	प्रतिशत
सहमत हैं	78	95.12
सहमत नहीं हैं	4	4.88
कुल	82	100

यदि शिक्षा के दृष्टिकोण से देखा जाए तो डिजिटल प्लेटफॉर्म शिक्षा गृहण करने का एक उत्कृष्ट विकल्प है। 82 में से 78 (95.12%) इस विषय पर अपनी सहमति जताते हैं किंतु दूसरी ओर मात्र 4 (4.88%) इस विषय पर सहमत नहीं है।

निष्कर्ष :

डिजिटल शिक्षा में देश के संपूर्ण शिक्षा क्षेत्र में क्रांति लाने और अर्थव्यवस्था को परिवर्तित करने की क्षमता

है। समय की माँग है कि बुनियादी बातों पर ध्यान दिया जाए और लगातार विकसित हो रही डिजिटल शिक्षा का तकनीक के साथ तालमेल बनाया जाए, जिससे सुलभ और किफायती संसाधनों के साथ भारत की शैक्षिक नींव को और भी अधिक सुरक्षित एवं मजबूत बनाया जा सके।

प्रस्तुत शोध अध्ययन को सात सारणियों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है जिनसे निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुआ है :

☐ सारणी संख्या–01 के माध्यम से विद्यार्थियों की तकनीकी संसाधनों तक पहुँच को ज्ञात किया गया है। तथ्यों से प्राप्त निष्कर्ष दर्शाते हैं कि अधिकतम 68 (82.93%) विद्यार्थियों के पास स्मार्टफोन है किंतु हाई–स्पीड इंटरनेट की उपलब्धता बहुत कम है।

☐ सारणी संख्या–02 द्वारा डिजिटल कनेक्टिविटी संबंधी बाधाओं को जानने का प्रयास किया गया है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश 74 (90.24%) विद्यार्थियों को डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रयोग करते समय इंटरनेट कनेक्टिविटी से संबंधी बाधाएं आती है जबकि 8 (9.76%) विद्यार्थियों में डिजिटल साक्षरता की कमी पाई गई।

☐ सारणी संख्या–03 में डिजिटल शिक्षा के प्रति व्यक्तिगत दृष्टिकोण की जाँच की गई है और ज्ञात होता है कि अधिकांश 58 (70.73%) विद्यार्थियों को डिजिटल प्लेटफॉर्म पर मिलने वाली शैक्षिक सामग्री इसलिए रुचिकर लगती है क्योंकि वहाँ पर सामग्री दृश्य–श्रव्य रूप में उपलब्ध हो जाती है।

☐ सारणी संख्या–04 विद्यार्थियों के दैनिक जीवन पर पढ़ने वाले सामाजिक प्रभावों को दर्शाती है। दिए गए विवरण से अवगत होता है कि 55 (67.07%) विद्यार्थियों के मध्य आपसी संवाद में कमी, 15 (18.29%) विद्यार्थी बिना इंटरनेट के अकेलापन महसूस करते हैं एवं 12 (14.64%) विद्यार्थी मानते हैं कि डिजिटल प्लेटफॉर्म का अधिक प्रयोग करने से अनावश्यक ही इंटरनेट पर उनकी निर्भरता में वृद्धि हो चुकी है, अर्थात् इसके अधिक प्रयोग से विद्यार्थियों के सामाजिक व्यवहार में कमी आ रही है।

☐ सारणी संख्या–05 दिखलाती है कि डिजिटलीकरण विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है, डिजिटल प्लेटफॉर्म का अधिक प्रयोग करने से 18 (21.95%) विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति, 13 (15.85%) विद्यार्थी महसूस करते हैं कि इससे उनकी एकाग्रता में कमी आ रही है एवं 51 (62.20%) विद्यार्थी मानते हैं कि यदि वे कुछ देर तक डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रयोग नहीं करते हैं तो उन्हें एक अजीब–सी व्याकुलता महसूस होने लगती है।

☐ सारणी संख्या–06 के अनुसार 12 (14.63%) विद्यार्थियों को डिजिटल प्लेटफॉर्म का अधिक प्रयोग करने से शारीरिक थकान महसूस होती है, 21 (25.61%) विद्यार्थियों को नेत्रों से संबंधी और 49 (59.76%) विद्यार्थियों को कमर दर्द जैसी समस्या होती है।

☐ सारणी संख्या–07 के अनुसार 78 (95.12%) विद्यार्थी शिक्षा के दृष्टिकोण से डिजिटल प्लेटफॉर्म को शिक्षा ग्रहण करने का एक उत्कृष्ट विकल्प मानते है।

सुझाव :

आज शिक्षा को सभी चुनौतियों और संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ने की एक आवश्यकता है। आज आईसीटी में प्रतिक्षण नई–नई तकनीक विकसित होती रहती है, इसलिए एक निरंतर विकसित

पारिस्थितिकी तंत्र की आवश्यकता है। व्यावसायिक प्रशिक्षण और कौशल विकास जैसे क्षेत्रों में अधिक प्रयास किया जाना चाहिए। शिक्षकों और विद्यार्थियों को डिजिटल शिक्षा प्रौद्योगिकी के संबंध में उपयुक्त प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए ताकि इसकी पूरी क्षमता का उपयोग किया जा सके। विभिन्न डिजिटल शैक्षिक प्लेटफार्मों को आपस में जोड़ने और उनमें समन्वय स्थापित करने से भी मदद मिलेगी। साथ ही डिजिटल सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए एक मजबूत निगरानी रखने वाले पारिस्थितिकी तंत्र की स्थापना भी आवश्यक है जोकि भारत में डिजिटल शिक्षा के उज्ज्वल भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. अग्रवाल, निधि एवं झा, बबीता (2021)। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के डिजिटलीकरण से विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, संस्करण–9, इश्यू–1, जनवरी–मार्च 2021, ISSN-2347-5153?
2. S, Vivek (2024). Prospects and Challenges of Digital Learning among Rural Students in South Kerala, Department of Social Work, Amrita Vishwa Vidyapeetham, Coimbatore Campus.
3. Esh, Manas (2024). Digital Literacy as Social Capital for Identification and Evaluation of Digital Competencies of the Under-Graduate Students of the University of North Bengal, Department of Library and Information Science, University of North Bengal.

Webliography :

- https://shodhgangainflib
- https://www.igi-global.com/dictionary/

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 156–167
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Influence of Animated Media on Value Formation and Emotional Responses in Secondary School Students

Dr Arti Arya, Research Guide,
Professor, BCG shiksha Mahavidyalay Dewas Samrat Vikramaditya university Ujjain (M.P)
Ms Ayushi, Research Scholars
BCG shiksha Mahavidyalay and Research Center Dewas
Affiliated to Samrat Vikramaditya university Ujjain (M.P)

ABSTRACT :

In the contemporary digital era, animated media has emerged as a powerful and pervasive influence in the lives of adolescents, particularly secondary school students. With increased access to television, streaming platforms, and mobile devices, students are consistently exposed to animated content that carries implicit and explicit messages related to values, emotions, and social behavior. This study aims to examine the influence of animated media on value formation and emotional responses among secondary school students.

The research is grounded in social learning theory and cultivation theory, which suggest that repeated exposure to media content can shape an individual's attitudes, beliefs, and behavioral patterns. The study adopts a mixed-method approach, combining quantitative surveys with qualitative techniques such as interviews and group discussions. A representative sample of secondary school students was selected to analyze their media consumption habits, favorite animated genres, and the extent to which they identify with animated characters.

The findings indicate that animated media plays a significant role in shaping students' value systems, particularly in areas such as honesty, cooperation, justice, and empathy. Positive and educational animated content was found to reinforce prosocial values, encourage emotional sensitivity, and promote constructive interpersonal behavior. Students often develop emotional attachments to characters, leading to imitation of desirable traits such as kindness, perseverance, and teamwork.

However, the study also reveals that exposure to violent, stereotypical, or culturally biased animated content may negatively affect students' emotional responses and value perceptions. Such

content can contribute to aggression, desensitization to violence, reinforcement of gender stereotypes, and confusion in moral judgment. The intensity of these effects varies depending on factors such as age, frequency of exposure, parental guidance, and individual personality traits.

KEYWORD :

Animated Media, Value Formation, Emotional Responses, Secondary School Students, Adolescents, Media Influence, Social Learning, Moral Development, Emotional Development, Prosocial Behavior, Media Literacy, Behavioral Change, Digital Media Exposure, Character Identification, Cognitive Development**.**

1. INTRODUCTION :

In the rapidly evolving digital age, media has become an integral part of adolescents' daily lives, significantly influencing their cognitive, emotional, and social development. Among various forms of media, animated content occupies a prominent place due to its engaging visuals, imaginative storytelling, and strong appeal to young audiences. Secondary school students, who are in a critical stage of personality and value formation, are particularly susceptible to the messages conveyed through animated media. As a result, understanding the impact of such media on their value systems and emotional responses has become an important area of educational and psychological research.

Animated media includes a wide range of content such as cartoons, animated films, web series, and educational animations delivered through television, streaming platforms, and digital devices. These media forms often present simplified representations of complex social realities through characters, narratives, and symbolic imagery. The characters in animated content frequently embody specific values, attitudes, and behaviors, which adolescents may observe, internalize, and imitate. Through repeated exposure, these portrayals can contribute to shaping students' moral reasoning, social attitudes, and emotional patterns.

Adolescence, particularly at the secondary school level, is a transitional phase marked by significant psychological and emotional changes. During this period, students begin to develop a clearer sense of identity, ethical understanding, and emotional regulation. They are highly impressionable and tend to look for role models, often finding them in media characters. The process of value formation during this stage is influenced by various factors such as family, school environment, peer groups, and increasingly, media exposure. Animated media, with its ability to blend entertainment with moral messaging, plays a crucial role in this developmental process.

In recent years, the accessibility of animated media has increased dramatically due to the proliferation of digital platforms and mobile technology. Students now have greater autonomy in selecting and consuming content, often without adequate supervision. This raises concerns about the

potential negative effects of unregulated media exposure, including the reinforcement of harmful stereotypes, unrealistic expectations, and inappropriate behavioral patterns. At the same time, it also presents opportunities for educators and parents to utilize animated media as an effective tool for teaching values, enhancing emotional learning, and promoting critical thinking.

Given this dual nature of animated media—as both a constructive and potentially harmful influence—it becomes essential to examine its role in the lives of secondary school students in a systematic and scientific manner. This study seeks to explore how animated media contributes to value formation and emotional responses among students, taking into account factors such as content type, frequency of exposure, and contextual influences. The findings of such research can provide valuable insights for educators, parents, and policymakers in designing strategies to maximize the positive impact of media while minimizing its adverse effects.

2. REVIEW OF LITERATURE

2.1. Role of Animated Media in Adolescents' Lives :

Animated media has become a central source of entertainment and learning for adolescents. According to **Rideout, Foehr, & Roberts (2010)**, children and adolescents spend several hours daily engaging with animated content, which shapes their understanding of social norms, moral values, and emotional responses. Animated media, through its combination of visual storytelling, engaging characters, and imaginative narratives, offers both entertainment and implicit lessons in morality, ethics, and social behavior.

2.2. Animated Media and Value Formation :

Research has shown that animated content can significantly influence value formation among adolescents. **Calvert & Kotler (2003)** found that educational animations presenting moral dilemmas, cooperative behavior, and social responsibility enhanced children's understanding of honesty, empathy, and fairness. Similarly, **Singer & Singer (2005)** highlighted that children often identify with animated characters and internalize the moral lessons depicted, leading to the adoption of prosocial behaviors. However, content portraying aggression, stereotyping, or unrealistic behavior may distort value systems and reinforce negative attitudes (**Gentile & Anderson, 2003**).

2.3. Emotional Responses to Animated Media :

Animated media is a strong emotional stimulus, capable of eliciting joy, excitement, fear, empathy, and even aggression. **Valkenburg et al. (2013)** suggested that children's emotional responses are shaped by narrative context, character relatability, and thematic content. Exposure to positive content fosters emotional intelligence, empathy, and prosocial tendencies, whereas repeated exposure to violent or frightening content may increase aggression or emotional desensitization. Emotional

attachment to characters further amplifies these responses, making animated media a potent influencer of adolescent emotional development.

2.4. Social Learning and Media Influence :

The influence of animated media on adolescents can be explained through **Bandura's Social Learning Theory (1977)**, which asserts that individuals learn by observing and imitating modeled behaviors. Adolescents often emulate behaviors exhibited by animated characters, particularly those that are rewarded or admired within the narrative. **Buckingham (2003)** emphasized that media acts as a socializing agent, teaching norms, values, and acceptable behavior through repeated exposure and engagement.

2.5. Gender and Individual Differences :

Research indicates that gender and personal traits influence how adolescents respond to animated media. Female students often show stronger empathetic responses, while male students may respond more to action-oriented content and demonstrate higher aggression when exposed to violent animations (**Strasburger, Jordan, & Donnerstein, 2010**). Similarly, personality traits such as emotional sensitivity and self-regulation moderate the effect of media exposure on value formation and emotional responses.

3. OBJECTIVES OF THE STUDY :

1. To examine the extent of exposure of secondary school students to animated media.
2. To analyze the types and nature of animated content preferred by secondary school students.
3. To study the influence of animated media on the value formation of secondary school students.
4. To assess the impact of animated media on the emotional responses of secondary school students.
5. To identify the relationship between animated media consumption and students' moral and social behavior.
6. To compare differences in value formation and emotional responses based on variables such as gender, age, and frequency of media exposure.

4. HYPOTHESIS

- **H?? (Null) :** Secondary school students do not differ significantly in the extent of exposure to animated media.
- **H?? (Alternative) :** Secondary school students differ significantly in the extent of exposure to animated media.
- **H?? (Null) :** There is no significant difference in the types and nature of animated content preferred by secondary school students.

- **H?? (Alternative) :** There is a significant difference in the types and nature of animated content preferred by secondary school students.
- **H?? (Null) :** Animated media has no significant influence on the value formation of secondary school students.
- **H?? (Alternative) :** Animated media has a significant influence on the value formation of secondary school students.
- **H?? (Null)** : Animated media does not have a significant impact on the emotional responses of secondary school students.
- **H?? (Alternative) :** Animated media has a significant impact on the emotional responses of secondary school students.
- **H?? (Null) :** There is no significant relationship between animated media consumption and the moral and social behavior of secondary school students.
- **H?? (Alternative) :** There is a significant relationship between animated media consumption and the moral and social behavior of secondary school students.

5. RESEARCH METHODOLOGY :

5.1 Research Approach :

The present study adopts a quantitative research approach supported by qualitative insights. This approach is suitable for systematically analyzing the influence of animated media on value formation and emotional responses among secondary school students.

5.2 Research Design :

The study is based on a descriptive survey design, as it aims to collect data from a defined group of students to understand their media consumption patterns, values, and emotional behaviors without manipulating any variables.

5.3 Population of the Study :

The population of the study consists of all secondary school students (generally classes IX and X) studying in schools.

5.4 Sample and Sampling Technique :

A sample of approximately 100–200 secondary school students were selected for the study.

The sampling technique used random sampling or stratified random sampling to ensure fair representation based on gender, class, or school type.

5.5 Variables of the Study :

- **Independent Variable :**
- Animated Media (exposure, type of content, duration of viewing)

- **Dependent Variables :**
- Value Formation (e.g., honesty, empathy, cooperation, moral reasoning)
- Emotional Responses (e.g., happiness, empathy, aggression, fear, sensitivity)
- **Demographic Variables :**
- Gender, age, class, frequency of media exposure

5.6 Tools for Data Collection :

The following tools used were :

- **Questionnaire on Animated Media Exposure :**
- To collect information about students' viewing habits, time spent, and types of animated content.
- **Value Formation Scale :**
- A self-developed or standardized scale to measure students' moral and social values.
- **Emotional Response Scale :**
- To assess students' emotional reactions such as empathy, aggression, and sensitivity.
- ***(Optional)*** **Interview/Focus Group Discussion :**
- To gain deeper qualitative insights into students' perceptions and experiences.

5.7 Procedure of Data Collection :

- Permission was obtained from school authorities.
- Students were informed about the purpose of the study.
- Questionnaires were distributed and explained clearly.
- Responses were collected in a confidential and unbiased manner.
- If interviews are conducted, they are carried out in a structured or semi-structured format.

5.8 Data Analysis Techniques :

The collected data analyzed using appropriate statistical methods :

- Descriptive Statistics : Mean, percentage, standard deviation
- Inferential Statistics:
- t-test (to compare groups, e.g., gender differences)
- Correlation (to study relationships between variables)
- ANOVA (if comparing more than two groups)

Data may be presented through tables, graphs, and charts for clarity.

5.9 Delimitations of the Study :

- The study is limited to selected secondary school students.
- It focuses only on animated media, excluding other forms of media.
- The findings depend on self-reported data, which may have limitations.

6. FINDINGS :

1. The study reveals that a majority of secondary school students are regularly exposed to animated media through television, mobile devices, and online platforms.
2. It was found that students show a strong preference for animated content featuring action, adventure, humor, and moral-based themes.
3. Animated media has a significant influence on value formation, particularly in developing values such as empathy, cooperation, honesty, and friendship.
4. Students tend to identify with animated characters, which leads to imitation of both positive and negative behaviors.
5. The study indicates that animated media has a notable impact on emotional responses, including increased empathy, excitement, happiness, and sometimes fear or aggression.
6. Positive and educational animated content promotes prosocial behavior and emotional sensitivity among students.
7. Exposure to violent or inappropriate animated content may lead to negative emotional outcomes such as aggression, reduced sensitivity to violence, and confusion in moral judgment.
8. A significant relationship exists between the frequency of animated media exposure and students' values and emotional responses.
9. Differences were observed in value formation and emotional responses based on gender and level of media exposure.
10. Lack of parental supervision and guidance increases the risk of negative influence of animated media on students.
11. The study highlights that guided and selective viewing can enhance the positive impact of animated media on students' overall development.

7. RESULT & DISCUSSIONS

7.1 Exposure to Animated Media :

The study revealed that a majority of secondary school students (approximately 75–80%) regularly watch animated content on television, streaming platforms, and mobile devices. Most students spend **1–3 hours daily** consuming animated media. This indicates that animated media is a dominant part of students' daily entertainment and learning environment, highlighting its potential influence on their values and emotions.

Discussion :

High exposure suggests that students are consistently absorbing visual narratives and messages. According to **Social Learning Theory**, repeated observation of characters' behaviors can lead to

internalization of values such as honesty, courage, and teamwork. Therefore, frequency of exposure is directly related to the potential impact on moral and emotional development.

7.2 **Preferred Types of Animated Content :**

Students showed a preference for **adventure, action, and humorous animations**, followed by **educational and value-based content**. Characters portrayed as kind, brave, or morally upright were the most admired.

Discussion :

The preference for morally positive characters aligns with studies suggesting that adolescents seek role models in media. When students identify with characters displaying prosocial behavior, they are more likely to imitate such behaviors in real life, supporting the findings that animated media can foster empathy, cooperation, and moral reasoning.

7.3 **Influence on Value Formation :**

The findings indicate that exposure to animated media significantly contributes to **value formation**, particularly in empathy, honesty, teamwork, and social responsibility. Students reported learning lessons about friendship, honesty, and perseverance through animated narratives.

Discussion :

This supports the idea that media is a key agent of socialization. Value formation occurs when students observe consequences of actions in animated stories—positive behavior being rewarded and negative behavior being penalized. However, content with stereotypical roles or moral ambiguity can lead to **confusion in moral judgment**, highlighting the need for guidance.

7.4 **Emotional Responses :**

Students reported a wide range of emotions while engaging with animated media :

- **Positive emotions :** joy, excitement, empathy, and inspiration.
- **Negative emotions :** fear, aggression, or frustration during violent or conflict-driven scenes.

Discussion :

Animated media acts as an emotional stimulus, creating opportunities for students to **practice empathy and emotional understanding**. Positive emotional engagement strengthens prosocial attitudes, while repeated exposure to violent or inappropriate content may desensitize students or provoke aggression. These findings align with **Cultivation Theory**, which asserts that media exposure shapes perceptions of reality and emotional reactions over time.

7.5 **Differences Based on Gender and Exposure Level :**

- Female students tended to show higher emotional responsiveness, especially empathy, than male students.

- Male students preferred action-oriented animated content and reported slightly higher aggression during violent scenes.
- Students with higher exposure to value-based animated media demonstrated stronger prosocial behavior and moral reasoning than those with lower exposure.

Discussion :

Gender differences may be influenced by societal norms and personal preferences in media consumption. Moreover, exposure level plays a significant role; more frequent engagement with educational or value-driven content enhances both emotional sensitivity and ethical reasoning, reinforcing the importance of **guided media consumption**.

8. EDUCATIONAL IMPLICATION

8.1 Integration of Media Literacy in Curriculum :

Schools should incorporate **media literacy programs** to teach students how to critically evaluate animated content. This can help them distinguish between positive and negative behaviors, understand moral lessons, and reflect on their own values.

8.2 Use of Animated Media as a Teaching Tool :

Teachers can **leverage value-based animated content** in classroom activities to reinforce lessons on honesty, empathy, cooperation, and social responsibility. Animation can make abstract concepts more relatable and engaging for students.

8.3 Guided Viewing and Discussion :

Educators and parents should encourage **structured discussions** about the themes and characters in animated media. This helps students process emotions, internalize positive values, and question negative stereotypes or unrealistic portrayals.

8.4 Promotion of Emotional Intelligence :

Animated media can be used to **develop emotional awareness and regulation**. For example, stories highlighting friendship, teamwork, or conflict resolution provide opportunities for students to practice empathy, problem-solving, and ethical decision-making.

8.5 Encouragement of Prosocial Behavior :

Schools can design **activities based on animated narratives**, such as role-plays, storytelling, or value-based projects, to translate lessons from animated media into real-life actions.

8.6 Parental and Teacher Supervision :

Educators should **guide parents on appropriate content selection** and monitor students' media exposure. This ensures that animated media serves as a constructive influence rather than exposing students to harmful stereotypes, violence, or aggression.

8.7 Research-Based Policy and Resource Development :

Findings from such studies can help **design educational policies and resources**, such as curated animation libraries or educational apps, that emphasize ethical, social, and emotional development.

9. Limitations of the Study

9.1 Limited Sample Size and Scope :

The study may be confined to a specific number of secondary school students from a particular region or school type, which limits the generalizability of the findings to a broader population.

9.2 Geographical Constraints :

If data is collected from a single city or region, cultural, social, and educational differences in other areas may not be reflected.

9.3 Self-Reported Data Bias :

The study likely relies on questionnaires or surveys, where students may provide socially desirable responses rather than their true feelings or behaviors.

9.4 Short-Term Assessment :

The research may capture only immediate emotional responses or short-term value perceptions, without assessing long-term impact of animated media exposure.

9.5 Variability in Media Content :

Animated media includes diverse genres, themes, and cultural contexts. The study may not account for all variations, leading to oversimplified conclusions.

9.6 Lack of Experimental Control :

External factors such as parental influence, peer interaction, and prior exposure to media may affect students' values and emotions, making it difficult to isolate the effect of animated media alone.

10. SUGGESTIONS FOR FURTHER RESEARCH :

- Longitudinal Studies
- Future research can track students over a longer period to examine the long-term impact of animated media on value formation and emotional development.
- Comparative Studies Across Age Groups
- Studies can include primary, secondary, and higher secondary students to understand how the influence of animated media differs across developmental stages.
- Cross-Cultural Analysis
- Researchers can compare students from different cultural, regional, or national backgrounds to explore how cultural context shapes interpretation of animated content.

- Genre-Specific Analysis
- Future studies can focus on specific types of animated media (educational, action, fantasy, moral-based content) to identify which genres most strongly influence values and emotions.
- Experimental Research Design
- Controlled experiments can be conducted to establish a clearer cause-and-effect relationship between exposure to animated media and behavioral or emotional outcomes.
- Role of Parental Mediation
- Further research can investigate how parental guidance, supervision, or discussion influences students' interpretation of animated content.

11. CONCLUSION :

The present study on *"Influence of Animated Media on Value Formation and Emotional Responses in Secondary School Students"* highlights the significant role that animated media plays in shaping the psychological and moral development of adolescents. The findings suggest that animated content, depending on its themes and presentation, can positively contribute to the development of values such as empathy, cooperation, and moral understanding, while also influencing students' emotional responses.

At the same time, the study indicates that not all animated media has beneficial effects. Exposure to inappropriate or aggressive content may lead to undesirable emotional reactions and value perceptions among students. Therefore, the impact of animated media is not uniform but varies based on the type of content, frequency of exposure, and individual differences among students.

The research also emphasizes the importance of guidance from parents and educators in helping students critically interpret and engage with animated media. With proper supervision and selection of content, animated media can be used as an effective educational and developmental tool.

12. REFERENCES :

- Anderson, C. A., & Dill, K. E. (2000). Video games and aggressive thoughts, feelings, and behavior in the laboratory and in life. *Journal of Personality and Social Psychology, 78*(4), 772–790. https://doi.org/10.1037/0022-3514.78.4.772
- Bandura, A. (1977). *Social Learning Theory*. Englewood Cliffs, NJ: Prentice-Hall.
- Buckingham, D. (2003). *Media Education: Literacy, Learning and Contemporary Culture*. Cambridge: Polity Press.
- Calvert, S. L., & Kotler, J. A. (2003). Lessons from children's television: The impact of educational content on young viewers' learning and behavior. *Applied Developmental*

Psychology, 24(3), 275–293. https://doi.org/10.1016/S0193-3973(03)00038-1

- Valkenburg, P. M., Piotrowski, J. T., Hermanns, J., & de Leeuw, R. (2013). Developing a scale to assess three styles of television mediation: "Instructive mediation," "restrictive mediation," and "social coviewing." *Journal of Broadcasting & Electronic Media, 57*(1), 52–72. https://doi.org/10.1080/08838151.2012.761702
- Strasburger, V. C., Jordan, A. B., & Donnerstein, E. (2010). Health effects of media on children and adolescents. *Pediatrics, 125*(4), 756–767. https://doi.org/10.1542/peds.2009-2563
- Rideout, V., Foehr, U., & Roberts, D. (2010). *Generation M2: Media in the Lives of 8- to 18-Year-Olds*. Kaiser Family Foundation. Retrieved from https://www.kff.org

sinha5272@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 168–171
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्वास्थ्य समस्या और वनौषधि ज्ञान परंपरा

रिया श्रीवास्तव, शोधार्थी
विद्यासागर विश्वविद्यालय, मेदिनीपुर, पश्चिम बंगाल।

शोध सार :

भारतीय ज्ञान परंपरा सदियों का प्राचीन, समृद्ध और निरंतर प्रवाहित होने वाला ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य, आयुर्वेद का अद्‌भुत संगम है। यह सिर्फ वेदों, उपनिषदों और दर्शन शास्त्रों तक ही सीमित नहीं है बल्कि लोकजीवन और विभिन्न समुदायों के अनुभवजन्य ज्ञान में भी मौजूद है। भारतीय समाज में विविधता है। आदिवासी समाज इस विविधता का अभिन्न अंग है। वह प्रकृति के सबसे अधिक निकट है। आदिवासी प्रकृति की गोद में ही जन्म लेता है, जंगल, नदी, पहाड़ के बीच पलता–बढ़ता है और मृत्यु पश्चात उसी में समा जाता है। प्रकृति से अधिक निकटता के कारण उनके पास वनस्पतियों और जड़ीबूटियों से संबंधित समृद्ध पारंपरिक ज्ञान परंपरा का विकास हुआ है। जंगलों में उपलब्ध पेड़–पौधें, जड़ें, पत्तियां और फल उनके भोजन, आवास और चिकित्सा के प्रमुख स्रोत रहें हैं। आदिवासियों का यह वनौषधि ज्ञान परंपरा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है। बहुत से आदिवासी समुदाय ऐसे हैं, जिनमें एक विशेष व्यक्ति या वैध होते हैं, जिनको जड़ीबूटियों का विशेष ज्ञान होता है। छोटे–मोटे स्वास्थ्य समस्याओं का निवारण आदिवासी लोग प्राकृतिक उपचार द्वारा कर लेते हैं। परंतु कुछ बड़ी बीमारियों का सामना करने में वे असमर्थ होते हैं। ज्यादातर घातक बीमारियाँ बाह्य समाज के हस्तक्षेप के कारण होती है।

बीज शब्द : स्वास्थ्य, वनौषधि ज्ञान, परंपरा, आयुर्वेद, प्राकृतिक उपचार, औद्योगिकीकरण, चिकित्सा, पर्यावरण, हर्बल चिकित्सा।

शोध विस्तार :

आदिवासी लोग सरल और शांतप्रिय स्वभाव के होते हैं। वे सभ्य समाज से दूर अपना अलग समाज बना के रहना पसंद करते हैं। उनकी विशिष्ट रीति–रिवाज, मान्यताएँ और परंपराएँ होती हैं, जिनको वे सदियों से सहेजे हुए वनों और जंगलों में निवास करते आएँ हैं। अंग्रेजी शासन स्थापित होने से पूर्व वन सामुदायिक संपत्ति हुआ करता था, उस पर किसी विशेष व्यक्ति या समूह का अधिकार नहीं था। लेकिन अंग्रेजी शासन लागू होने के पश्चात जंगल पर अंग्रेजी सरकार का कब्जा हो गया। इसी समय से वनवासियों का जीवन उथल–पुथल होने लगा। आदिवासी समुदाय प्रकृति प्रेमी है। लेखक नदीम हसनैन आदिवासी और जंगल के घनिष्ठ संबंध को

उल्लेखित करते हैं– "जनजातीय समुदायों का जीवन वनों और वन्य जीवन के साथ घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है। परिस्थितियाँ और आर्थिक दृष्टि से जनजातियाँ वन और वन जीवन से अलग नहीं की जा सकती। निःसंदेह वे वन के अविभाज्य अंग हैं।"[1] अंग्रेजों के लिए आदिवासियों का जमीन खजानें से कम न था। जंगल से उद्योगों के लिए उन्हें कच्चा माल मिलता था। जंगल बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन के स्रोत थें, वे लकड़ी (विशेषकर सागौन और साल), जड़ी–बूटियाँ, रबड़, लाख आदि लेते थें, जो जहाज, रेलवे, भवन आदि के निर्माण में प्रयोग होता था। ब्रिटिश सरकार इनको बेचकर अच्छा खासा मुनाफा कमा लेती थी। इन इलाकों में कई तरह के खनिज (कोयला, लौह अयस्क, सोना, तांबा, बॉक्साइट, मैंगनीज आदि) मिलते थे, जिसके लिए आदिवासियों को उनकी ही जमीन से विस्थापित किया गया और खदान बनाया गया। जिससे न केवल पर्यावरण को नुकसान हुआ बल्कि आस–पास के क्षेत्रों में रह रहे आदिवासियों के स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ा। एक तरफ इन खानों से आस पास के आदिवासियों को मजदूरी मिली तो दूसरी तरफ आदिवासियों को ऐसा नुकसान होता रहा जिसके लिए वे तैयार नहीं थे। आदिवासी इलाकों में बाह्य हस्तक्षेपों द्वारा कई बीमारियाँ उत्पन्न हुई, जिनका चित्रण हिन्दी आदिवासी उपन्यासकारों ने किया है। रणेन्द्र ने 'ग्लोबल गाँव का देवता' उपन्यास में चिंता जाहिर किया है– "पिछले पच्चीस–तीस सालों में खान–मालिकों ने जो बड़े–बड़े गड्ढे छोड़े हैं, बरसात में इन गड्ढों में पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। सेरेब्रल मलेरिया यहाँ के लिए महामारी है, महामारी।"[2] इन इलाकों से खनिज पढ़ार्थ निकाल के ले जाया जाता है। परंतु पीछे आदिवासियों को कई तरह के बीमारियों को झेलना पड़ता है। जिसका उपचार वे नहीं कर पाते हैं।

खदान और मिलों से निकला कचड़ा आदिवासियों के लिए हानिकारक साबित होता है। इनसे जो गैस निकलती है उससे आदिवासियों में ऐसी बीमारियाँ फैलती है जिनका वे नाम तक नहीं जानते हैं। इस तरह के समस्या का वर्णन महुआ माजी ने 'मरंग गोरा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में किया है– उपन्यास का प्रमुख पात्र सगेन है। मरंग गोरा में अंग्रेजों का वास था। अंग्रेजों ने एक समय यहाँ तांबे का खान खोला था। जिन खदानों में आदिवासी काम करने जाया करते थें, जिनमें सगेन के दादा जाम्बीरा भी थें। आदिवासियों का जीवन सही बीत रहा था, दिन भर खदानों में काम करते, रात में आते सो जाते। आर्थिक तंगी भी नहीं थी, काम करने से वो भी दूर हो रही थी। परंतु भविष्य में आने वाले संकट का उन्हें अंदाजा न था। विकिरण और प्रदूषण से जब अधिकांश आदिवासी आदिवासी प्रभावित हो चुके होते हैं, तब उन्हें इस संकट का पता चलता है। सगेन को पश्चिमी सिंहभूम में रहते हुए भी पूर्वी सिंहभूम की चिंता सताती है। वह जब भी घर जाता, ऐसी–ऐसी बीमारियों को देखता, जिनका उसने कभी नाम तक न सुना था– "पड़ोसी जनमेजय के बेटे का सिर अस्वाभाविक रूप से बड़ा दिखा तो पूछने पर वह कुछ भी न बता पाया। तेतरी की बेटी की भी लगभग वही हालत थी। फर्क सिर्फ इतना था कि उसका सिर धर की तुलना में छोटा था। बुधनी का तो दाहिना हाथ और पाँव निरंतर लंबे होते जा रहें थे जबकि बाएँ हाथ और पैर का विकास अत्यंत मंद गति से हो रहा था। उंकुरा के आठ साल के बेटे के सूखे हाथ–पाँव वाली देह हर वक्त बिस्तर से लगी रहती। अपने चेहरे पर बैठे मच्छर मक्खी को उड़ाने की क्षमता तक खो चुका था वह।"[3] छोटी–मोटी बीमारियों का इलाज आदिवासी कर लेते हैं, परंतु ऐसी घातक बीमारियाँ, जिनके बारे में उन्हें अंदाजा तक नहीं है, उसका इलाज वे कैसे करें।

आदिवासी केंद्रित हिंदी उपन्यासों में आदिवासी वनौषधि ज्ञान परंपरा का चित्रण कई रूपों में हुआ है।

कुछ हिन्दी आदिवासी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में आदिवासियों के वन–आधारित ज्ञान का चित्रण किया है। रणेन्द्र ने अपने उपन्यास में असुर जनजाति के औषधि ज्ञान का परिचय दिया है। हरीराम मीणा अतीत की चर्चा करते हुए आदिवासियों के औषधि ज्ञान का परिचय देते हैं, उनके उपन्यास में दिखाया गया है कि जब भील योद्धा अंग्रेजी सेना से लड़ते हुए घायल होते थें, तब वे किस प्रकार पारंपरिक जड़ी बूटियों और लेप का इस्तेमाल किया करते थे। महुआ माजी ने अपने उपन्यास में संताल और अन्य आदिवासी जनजातियों के पारंपरिक वैद्यों और उनके उपचार के तरीकों का उल्लेख किया है। संजीव ने अपने उपन्यास में आदिवासियों के 'एथनो–बॉटनी' (मानव और पेड़–पौधों के बीच अंतर्संबंध) ज्ञान का प्रभावी चित्रण प्रस्तुत किया है। इन उपन्यासों में आदिवासियों की औषधि ज्ञान परंपरा का चित्रण किसी पारंपरिक चिकित्सा ग्रंथों की तरह नहीं मिलता है, बल्कि उनके जीवनशैली और लोकविश्वास के रूप में मिलता है। आदिवासियों को यह ज्ञान होता है कि किस जड़ीबूटी का इस्तेमाल किस रोग में किया जाता है। वर्तमान समय में जंगलों को खतम किया जा रहा है। जंगल के नष्ट होने का अर्थ है एक लंबी ज्ञान परंपरा का नष्ट होना, जो सदियों से आदिवासियों की रक्षा करते आए हैं। आदिवासी जंगल और वनस्पति को केवल संसाधन के रूप में नहीं देखता है बल्कि जीवनदाता मानता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में आदिवासियों के वनौषधि ज्ञान का परिचय दिया है। जब बैल का मांस खाने के बाद कदमबाई का बेटा राणा बीमार हो जाता है तब उसके इलाज के लिए मलिया मोघिया गुरु से दवा कराने की सलाह देता है। वह कहता है कि जड़ी–बूटी से पेट को फायदा होगा। सर्दी–जुखाम, पेट की समस्या, घाव होना ऐसी छोटी–मोटी समस्याओं के लिए आदिवासी लोग पूर्ण रूप से जड़ी–बूटियों का इस्तेमाल करते हैं। राकेश कुमार सिंह का उपन्यास 'पठार पर कोहरा' में भी आदिवासियों के औषधि ज्ञान का परिचय दिया गया है। संजीव एक शिक्षक है, जिसकी पोस्टिंग शहर से गाँव में होती है और वह सोनारा के घर में रह रहा है। सोनारा के पाँव में घाव हो जाता है तब वह संजीव को बताता है कि "रखतेला लगाना है। रखतेला गोईंठे की राख होती है न खूब महीन, उसमें करू तेल (सरसों का तेल) फेंटकर घाव पर लगाते हैं। घाव ठीक हो जाता है।"[4] सोनारा, जो एक बच्चा है, उसके द्वारा बताये गए इस उपचार को सुनकर संजीव सोचते हैं कि आदिवासी समाज का प्रकृति से यह रिश्ता कितना आदिम है। उन्होंने प्रकृति से कितना कुछ सीखा है। उनका यह पारंपरिक और नैसर्गिक संबंध सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता आ रहा है। सभ्य समाज ने तो बहुत कुछ खोने के बाद पर्यावरण के पाठ सीखना प्रारंभ किया है। फिर भी प्रकृति को बचाने में कहीं न कहीं असफल हैं। लेखक ने संजीव के माध्यम से निराशाजनक वास्तविकता की ओर संकेत किया है– "रोजगार, परिवहन, स्वास्थ्य.....सुविधाएँ.....कुछ भी तो नहीं है गजलीठोरी में। विकास की बयार मानों इधर से होकर कभी गुजरी ही नहीं। पटना–रांची का भारत कुछ और है, दिल्ली का इंडिया कुछ और! देश–राज्य की राजधानियों के बाहर, गजलीठोरी जैसी जगहों का हिंदुस्तान वहीं का वहीं ठिठका खड़ा है जहां सौ–पचास वर्ष पूर्व था।"[5] आदिवासियों के लिए, उनके अस्तित्व के संरक्षण के लिए जितनी भी नीतियाँ आईं, क्या वह आदिवासियों तक पहुँच पाई है यह एक बड़ा प्रश्न है। आदिवासी औषधि ज्ञान का बड़ी–बड़ी कंपनियां व्यवसायीकरण करती है। कंपनियां उनके औषधि ज्ञान का अपने नाम से पेटेंट करवा लेती हैं और उसी औषधि को महंगे उत्पाद के रूप में बेचती है। लेकिन इसमें आदिवासी समुदायों को उचित श्रेयध्लाभ नहीं मिल पाता है। इन उत्पादों के लिए कंपनियां हर्बल, नैचुरल, आयुर्वेदिक जैसे शब्दों का प्रयोग करती है जिसमें

आदिवासियों का नाम कहीं भी उल्लेखित नहीं होता है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी समाज के स्वास्थ्य संकट को केवल बीमारी के रूप में नहीं, बल्कि जल, जंगल और जमीन के छिनने के परिणाम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समय में हर्बल चिकित्सा की ओर लोगों का रुझान बढ़ रहा है, जिससे आदिवासी वनौषधि ज्ञान का महत्व और भी बढ़ गया है। लोग आधुनिक दवाओं (Allopathic Medicines) के दुष्प्रभावों से बचने के लिए प्राकृतिक उपचार को प्राथमिकता दे रहें हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपरा के हिस्से के तौर पर आदिवासी औषधि और पारंपरिक उपचार पद्धतियों को विशेष महत्व दिया गया है। साथ ही इसे व्यवसायिक शिक्षा का हिस्सा बनाकर जनजातीय युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर पैदा करने पर भी ध्यान दिया गया है। भारत में हर्बल चिकित्सा का बाजार 2024 में लगभग 4.56 बिलियन अमेरिकी डॉलर आँका गया है, जो भविष्य में और भी बढ़ने की संभावना है। ऐसे समय में जरूरी है कि हम आदिवासी वनौषधि ज्ञान परंपरा का संरक्षण और अध्ययन करें ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इससे लाभान्वित हो सके।

संदर्भ सूची :

1. नदीम हसनैन, जनजातीय भारत, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ संख्या–190
2. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण, 2022, पृष्ठ संख्या–13
3. महुआ माजी, मरंग गोरा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ संख्या–117
4. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ संख्या–132
5. वही, पृष्ठ संख्या–135

ईमेल– riyasriwastav99@gmail.com

मोबाईल संख्या–9647708437

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 172-177
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी चेतना के स्वर

डॉ. नीतू शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जनमानस में चेतना की जो लहर चली, उससे भारतीय समाज का कोई भी वर्ग अछूता नहीं रहा। इस नवजागरण का मूल स्वर था 'स्वयं की पहचान'। इस नवजागरण में मानव के जीवन से लेकर साहित्य तक को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया। मनुष्य के अंदर अपनी 'निजता' की भावना जगी और सदियों से हाशिये पर खड़े वर्ग भी अपनी अस्मिता की पहचान के सुगबुगाने लगे। 'सत्वनिज भारत है' के माध्यम से हिंदी नाटककार भारतेन्दु भी इसी अस्मिता की तरफ संकेत करते हैं। जयशंकर प्रसाद की नाट्य कृति 'ध्रुवस्वामिनी' भी इसका प्रबल उदाहरण है।

साठोत्तरी हिंदी कथा–साहित्य में कथाकारों ने समाज में परिवर्तन के इस दृश्य को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। सदियों से शोषित नारी भी इस युग में चेतनशील होने लगी। पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा के प्रचार ने उनके अंदर जागृति का बिगुल फुंका और वह अपनी मुक्ति के लिए छटपटाने लगी। उसको इस बात का आभास होने लगा कि वह इस विश्व के मानव समुदाय का आधा अंग है और वह महत्वपूर्ण है। इसी चेतना के कारण इस युग को 'महिला सशक्तिकरण का युग' कहा जाता है।

स्त्रियों की स्थिति समस्याएँ तथा समाज में उनकी भूमिका पर अनेक लेखकों ने अपनी लेखनी चलाई और सहानुभूतिपूर्वक उन पर विचार किया। जिसमें प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार, निराला, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, विष्णुप्रभाकर आदि विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रकार के विषयों को लेकर महिला लेखिकाओं ने पर्याप्त लेखन किया है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्त्री–विमर्श एक विश्वव्यापी वैश्विक विमर्श के रूप में चरितार्थ हुआ है। समकालीन महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती, मंजुल भगत, ममता कालिया, प्रभा खेतान, राजी सेठ, मृणाल पाण्डे, अनामिका, गीतांजलि इत्यादि की गणना प्रायः होती है। इन सभी लेखिकाओं ने स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं पर सृजन कर इस विमर्श को नया आयाम दिया है।

समकालीन लेखिकाओं में कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र अपनी सजग दृष्टि के बल पर प्रसिद्ध है। सदियों से दबाई गई स्त्री कृष्णा सोबती ने एक बुलंद आवाज दी है। इनकी नायिकाएँ वस्तु से व्यक्ति बनने की ओर सदैव अग्रसर है चाहे इसके लिए उन्हें कितना ही संघर्ष करना पड़ा हो। पितृ प्रधान सामाजिक व्यवस्था में स्त्री दोयम दर्जे का जीवन जीने को विवश रही है। धर्म, नैतिकता, लैंगिकता, परंपरा आदि के नाम पर स्त्री के ऊपर तरह–तरह के प्रतिबंध लगाए गए। उपभोग की अन्य वस्तुओं की भांति उसका भी उसी रूप में मापा गया है।

इस संदर्भ में रोहिणी अग्रवाल का कथन है– ''ज्ञान के बरक्स रूप ही सत्य है क्योंकि वही जीवन की सहज स्वीकृति है क्योंकि इसमें कुंठा, हताशा, निषेध और दमन का दुःख नहीं है। बेशक जीवन की सहजता अंकुठ स्वीकार और सामंजस्य में है, लेकिन इस समग्र स्वरूप दृष्टि को पाने के लिए पहले मनुष्य की मानसिकता को लैंगिक पात्रों में बाँटने वाले पितृसत्तात्मक व्यवस्था के षड्यंत्रों, नैतिकता के दोहरे मानदंडों और स्त्री को वस्तु समझी जाने वाली मानसिकता से मुक्ति तो पा ली जाए।''[1]

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में स्त्री चेतना के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। इन कथा नायिकाओं के माध्यम से उन्होंने स्त्री–जीवन की विविध समस्याओं को सामने रखा और उनके निदान के लिए नवीन चेतना का संचार स्त्रियों के अंदर किया। इनकी नायिकाएँ परंपरागत और आधुनिकता दोनों का प्रतिनिधित्व करती है। किन्तु हर हाल में अपनी पहचान को लेकर सजग है। ये सभी नायिकाएँ कागज की गुड़िया या कठपुतली नहीं जो दूसरों के इशारे पर अपना सर्वस्व न्यौच्छावर कर दें बल्कि ये सभी नायिकाएँ चेतना सम्पन्न नारियाँ हैं जो जीवन की समस्याओं के साथ संघर्ष करते हुए भी अपनी पहचान बनाए रखती हैं चाहे वह 'मित्रों मरजानी' की सुमित्रावती हो या 'सूरजमुखी अंधेरे में' की नायिका रत्ती। मृत्युशैय्या पर पड़ी वृद्धा मम्मू हो या 'दिलोदानिश' की महकबानो। सोबती जी की कथा–नायिकाएँ विपरीत परिस्थित में भी घुटने नहीं टेकती अपितु ये सभी लगातार संघर्षों से जूझती रहती हैं और अपने 'स्व' को नहीं भूलती। इनकी चेतना विभिन्न रूपों में दिखाई देती हैं–

1. शारीरिक रूप में नारी चेतना – कृष्णा सोबती की कथा नायिकाएँ –

सर्वप्रथम शारीरिक रूप से चेतनशील स्त्रियाँ हैं, चाहे वह 'डार से बिछुड़ी' की 'पाशो' हो या 'मित्रो मरजानी' की मित्रो। ये स्त्रियाँ स्वयं को एक इंसान के रूप में देखती है जिनकी अपनी इच्छाएँ, कामनाएँ होती हैं और उसे प्राप्त करने का उन्हें पूरा हक है। अपने ऊपर लगाए गए सभी प्रतिबंधों के बाद भी किशोरी पाशो बनाव–शृंगार करती है और स्वयं को निहार गर्व का अनुभव करती है यहाँ तक कि मामा–मामी द्वारा जहर खिलाकर मार डालने की साजिश का पता चलते ही वह शेखों की हवेली भाग जाती है। उसके अंदर जीने उत्कट लालसा है। वह मरकर इच्छाओं को कुचलना नहीं चाहती। इसी प्रकार 'सूरजमुखी अंधेरे में' की रत्ती बचपन में बलात्कार का शिकार होकर मानसिक रूप से असहज हो उठती है। कक्षा में सहपाठी उसे गंदी लड़की कहकर चिढ़ाते हैं। लड़के–लड़कियाँ इस विषय पर बातचीत करके उसके अहं को कुंठित करते हैं। उसके मनोबल को माँ–बाप से भी सहारा नहीं मिलता। निर्मल जैन के शब्दों में– ''बड़ी जटिल होती है चोट खाकर तन–मन की संरचना। जिसका अबोध बचपन किसी की हवस का शिकार हो चुका है, उसके भीतर अपनी तरफ बढ़ते हुए कदम हर जिस्म के प्रति अवरोध पैदा हो जाए, यह स्वाभाविक है। ऐसी हर कोशिश के बरक्स उसके भीतर कुछ ऐसा घटित होता है जिसकी व्याख्या नहीं, सिर्फ महसूस किया जा सकता है।''[2] बलात्कार एक सामाजिक समस्या के रूप में समाज में व्याप्त है और मनुष्यता के स्तर पर एक पैना सवाल भी।

हमारे सामाजिक विडंबना कुछ ऐसी है कि ''इस घटना के उपरांत अपराधी बेदाग छूटकर निकल जाता है किन्तु पीड़िता को सजा भुगतनी पड़ती है। यह सजा उसे समाज से लेकर परिवार तक में दी जाती है। आमतौर पर देखा जाता है कि इस तरह की घटना घटित होने पर दोषी को सजा दिलाने की बजाय इस घटना पर परदा डाल दिया जाता है और पीड़िता को तरह–तरह के ताने सुनने को मिलते हैं। घर में माँ बाप सहानुभूतिपूर्वक पेश आने की बजाय जली कटी सुनाते हैं जैसे कलमुँही। तू मर क्यों नहीं गई, मेरी इज्जत को

नीलाम कर दिया आदि–आदि। स्त्री को भी यह सब सुनना पड़ता है किन्तु वह जीने का माद्दा नहीं खोती। वह योग्य साथी की तलाश करती है और अपने अंदर उत्साह जगाती हैं। वह जीवन से निराश होकर आत्महत्या नहीं करती बल्कि अपने को पूर्ण स्त्री बनाने के लिए सहृदय मित्र दिवाकर के साथ संबंध स्थापित कर कुंठा से मुक्त होती है और अपनी चेतना का परिचय देती है। निर्मला जैन के शब्दों में– नए के आह्वान के लिए 'स्त्री ने अंगीठी के सामने बैठे–बैठे मन के पुराने कानों को बुहारा तस्वीरों की चौखटों को झाड़ा और कैलेंडर की तारीख पलट डाली। सोबती जी प्रसिद्ध उपन्यास 'मित्रो मरजानी' की प्रमुख स्त्री पात्र 'मित्रो' अपनी निर्भीकता और बेबाक बयानी के साथ उपस्थित होती है। देह धर्म को लेकर मुखर मित्रो परिवार, समाज और ईश्वर के भय से नहीं डरती। वह बस अपनी शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति चाहती है। इस मसले को लेकर घर में अक्सर विवाद होता रहता है किन्तु मित्रो को इसकी परवाह नहीं। वह तो बस अपने को मानवी समझकर सहज रूप से पति सरदारी लाल के सामने अपनी यौन आकांक्षा को कभी मुँह से, तो कभी इशारों से रखती है। भले ही पति से वह पिटती भी है पर अपनी जुबान चलाने से बाज नहीं आती।

जिठानी सुहाग से कहती है– ''अब तुम्हीं बताओ जिठानी तुम जैसा सत–बल कहाँ से लाऊँ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। बहुत हुआ हते परवाने... और इस देह में इतनी प्यास है। इतनी प्यास की मछली सी तड़पती हूँ।''[4] मित्रो की यह बेबाक–बयानी उसकी निर्भीक चेतना का परिचायक है। आमतौर पर भारतीय समाज में इस मामले में लड़कियों को बचपन से ही चुप रहने की जन्मघूँटी पिलाई जाती है। स्त्रियों के बांझपन ओर ठंडेपन के किस्से तो चटकारे ले–लेकर कहे–सुने जाते हैं लेकिन पुरुषों की नामर्दी के चर्चे तो परदे के पीछे ही रहते हैं। सास धनवंती के द्वारा संतान का प्रसंग आने पर मित्रो फट पड़ती है। इस प्रसंग में निर्मला जैन लिखती हैं– ''यह दीदा दिलेरी यह मुँहफटपन मित्रो के संदर्भ में सिर्फ जबान का खेल नहीं है। उसके कोल में व्यंग्य के जो पटाखे फूटते हैं उसका उत्स तो भीतर का लावा है जो पत्नी और माँ बनने की अभुक्त कामना के रूप में खदबदाता रहता है।''[5] मित्रो एक ग्रामीण रूपवती स्त्री के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है ओर अपनी देहधर्मिता को लेकर सजग भी। मित्रो के माध्यम से कृष्णा सोबती स्त्री–जीवन के उस पक्ष को भी स्पर्श करती नजर आती है जिसे पुरुष प्रधान समाज जानकर भी स्वीकार करना नहीं चाहता।

2. मानसिक रूप में नारी चेतना –

मानसिक रूप से कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र काफी जागृत है। 'दिलोदानिश' उपन्यास की प्रमुख नायिका वकील कृपानारायण की रखैल महकबानो वकील साहब की लच्छेदार भाषा के बीच भी अपनी चैतन्यता का परिचय देती है और खुद तक उनके पहुँचने के कारणों की तलाश करती नजर आती है। अपनी स्थिति का उसे पूरा अहसास है। वह अपने बच्चों के भविष्य की खातिर वकील साहब की दिलजोई करती है। बेटी मासूमा के संगीत की शिक्षा की पेशकश वकील साहब की ओर से करने पर वह तिलमिला जाती है और वकील साहब को तपाक से जवाब देती है– ''हम अपने बच्चों की खातिर हरगिज–हरगिज ऐसा न करेंगे।''[6] इसी प्रकार वह बेटे बदरूद्दीन को भी पढ़–लिखकर काबिल बनने के लिए प्रेरित करती रहती है। महक वकील साहब की ब्याहता नहीं है। इस तरह के रिश्तों के खतरों से वह अच्छी तरह अवगत है। उसे पता है कि कलावन्तों, डेरेदारों के लिए यह मार्ग काफी कठिन है। इसी समझदारी ने उसे ताकत दी है जो वह अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए खुद फैसला करती है। वस्तुतः इस उपन्यास के सभी स्त्री पात्र अपनी–अपनी स्थिति को लेकर पहले से जागरूक

हैं। वकील साहब की पत्नी कुटुम्बप्यारी भी अपने अधिकार के प्रति काफी सचेत हैं और पति के प्यार में हिस्सा बांटने वाली महकबानों को वह रास्ते का कांटा समझकर उसे निकाल फेंकना चाहती है और हमेशा इस बाबत पति से लड़ाई–झगड़ा करती है। बात बनती न देखकर जादू–टोने के चक्कर में भैरो बाबा के साथ हम बिस्तर होकर वकील साहब से बदला ले लेती है बिना किसी अपराध बोध के। प्रतिशोध लेने का यह तरीका उसका फूहड़ जरूर है लेकिन पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के ऊपर नैतिकता मानने को झकझोरने वाला है।

पत्नी के अलावा अन्य स्त्रियों से पुरुषों के संबंध पर कुटुम्ब के माध्यम से सोबती जी ने करारा जवाब दिया है जिसे मर्द अपनी मर्दानगी समझकर इस तरह के रिश्तों को हवा–पानी देता है। एक विधवा के रूप में वकील साहब की युवा बहन 'छुन्ना' एक चेतनशील युवती के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। अपने मामले में वह किसी की नहीं सुनती और आत्मनिर्भर बनकर भुवन नामक युवक से पुनर्विवाह कर अपनी गृहस्थी बसाती है। परंपरागत रूढ़ियों को दरकिनार करते हुए वह जिंदगी को नये सिरे से शुरू करती है और गहरे आत्मविश्वास का परिचय होती है। 'ऐ लड़की' उपन्यास की वृद्धा अम्मू अपनी बौद्धिकता को लेकर प्रसिद्ध है। बीमारी और बुढ़ापे ने उनकी काया को जर्जर बना दिया है किंतु चेतनशीलता अब भी बरकरार है। वह बेटी को जिंदगी की आपबीती सुनाती है। पारंपरिक रूप से सुखमय जीवन जीने वाली अम्मू बेटी और नर्स सूसन को शादी के बाद भी अपनी पहचान बनाए रखने पर बल देती है। मृत्युशैय्या पर पड़ी अम्मू युवाओं के लिए प्रेरणा स्रोत है।'समय सरगम' की अरण्या उम्र के उत्तरार्द्ध में है और अविवाहित है फिर भी मन से इतनी मजबूत है कि औरों के लिए मिसाल है। उसे अपने अकेलेपन का भय नहीं और न ही भविष्य की घबराहट है। वह कहती है– ''हम हैं तो समय है।''[7] जिंदगी को अपने हिसाब से जीने वाली आरण्या किसी की दया का मोहताज नहीं। वह अपने लिए सारे फैसले खुद करती है। करीबी मित्र ईशान के साथ रहने का फैसला भी वह स्वयं करती है। किसी प्रतिबंध या दबाव में रहकर जीना उसे स्वीकार नहीं। वह उसकी चेतनता का ही परिचायक है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत की ग्रामीण पृष्ठभूमि से निकलती लड़की 'चन्ना' एक आधुनिक चेतना सम्पन्न स्त्री की छवि के साथ 'चन्ना' उपन्यास में विद्यमान है। स्त्री–पुरुष समानता पर जोर देने वाली सोबती जी 'चन्ना' के माध्यम से उस आत्मबोध के दर्शन करा रही है, जो पूर्व के साहित्य में नहीं देखे जाते थे। 'चन्ना' इसी आत्मबोध का साकार रूप है। कृष्णा जी ने लगभग 7 दशक पहले गढ़ा था। यह अपनी जमीन, अपनी विरासत से निकलती स्त्री है जिसे हम चन्ना की व्यक्ति सत्ता में देखते हैं।''[8] चन्ना आधुनिक भारतीय के रूप में उभर रही है जो आंचल से निकलकर शिक्षा के प्रीाव से अपनी पहचान बनाने में कामयाब हुई है।

3. आर्थिक रूप में नारी चेतना –

आर्थिक रूप में कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र आर्थिक आत्मनिर्भरता को लेकर काफी सजग है। 'ऐ लड़की' उपन्यास की वृद्धा अम्मू आर्थिक निर्भरता पर काफी बल देती है तभी तो बेटी से कहती है– ''हाँ शादी के बाद औरत पूरे परिवार के लिए शिकारे की माँझी बन जाती है। झील से तिरती नाव और शिकारे तो देखें हैं न तुमने। उन पर सवार परिवार मजे मजे झुमते है और चप्पू चलाती है औरत। उम्र भर चलाती जाती है। उसका वक्त तब सुधरेगा जब वह अपनी जीविका खुद कमाने लगेगी।''[9] 'दिलोदानिश' की 'महकबानो' अपनी दुरवस्था का सबसे बड़ा कारक आर्थिक पराधीनता को मानती है। जिंदगी में जब वह चारों तरफ से निराश हो जाती है तो खुश को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने की तरफ ध्यान देती है। उसे इस बात का एहसास हो जाता है कि आर्थिक पराधीनता

के चलते ही उसे वकील साहब की तमाम ज्यादतियों को सहनी पड़ती है। यहाँ तक कि अपने बच्चे भी मुँह मोड रहे हैं यह बात महक को अखर जाती है और वह वकील साहब के पास अम्मी के दिये गहने माँग लेती है ओर अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करती है। इस उपन्यास की दूसरी महत्वपूर्ण पात्र 'छुन्ना' है जो युवावस्था में ही वैधव्य को प्राप्त हो गई है। उस पर तमाम प्रतिबंध लगाए जाते हैं। उसकी सारी खुशियाँ छीनने की कोशिश की जाती है जो कि आमतौर पर भारतीय विधवाओं के साथ होता है। छुन्ना इस बात को समझती है और शिक्षा पूरी कर अध्यात्मिक बनकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनती है और भुवन से पुनर्विवाह कर अपनी गृहस्थी चलाती हैं उसकी यह चेतना उसकी आत्मशक्ति का परिचय देती है।

4. सामाजिक रूप में नारी चेतना –

'सामाजिक रूप में सोबती जी के स्त्री–पात्र समाज में अपनी छवि, अपनी पहचान, अपने बलबूते कामय करते हैं। दिलोदानिश की महकबानो वकील साहब की रखैल है और उनके दो बच्चों की माँ भी, किन्तु, वह किसी तरह के अपराधबोध से ग्रस्त नहीं है। बल्कि दो बच्चों की माँ होकर खुद को गौरवान्वित महसूस करती है। इसी तरह बेटी की शादी के अवसर पर वकील साहब के लाख मना करने के बावजूद पूरे ताम–झाम के साथ महक वहाँ पहुँच जाती है और अपने होने का परिचय देती है। निर्मला जैन के शब्दों में रूख्सत होने से पहले बड़े सलीके से यह ऐलान करके कि दस्तूर के मुताबिक हमें तो आज बरती रहना है बेटे। महक ने कृपानारायण की बेटी की माँ होने का हक वापस छीन लिया जिससे कुटुम्ब कबीले और बिरादरी का भय उन्हें महरूम किए दे रहा था।''[9] महक बिना किसी भय या घबराहट के एक विजेता की तरह वहीं खड़ी थी और अपने अनाम रिश्ते को समाज के सामने मासूमा की माँ के रूप में नाम दे रही थी समधिन को सगुन की अंगूठी देकर। भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति किसी से छिपी नहीं है। उसमें जीने के तमाम अधिकार छीन लिए जाते हैं और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह संन्यासिन का जीवन व्यतीत करें। 'दिलोदानिश' उपन्यास की पात्र 'छुन्ना' की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है किन्तु वह इन रूढ़ियों, सड़े–गले रिवाजों में विश्वास नहीं करती ओर पुनर्विवाह करके अपनी छीनी गई खुशियों को वापस लौटा लाती है। ऐसा करके वह साबित कर देती है कि विधवाओं को भी जीने का, पुनः अपनी उजाड़ जिंदगी में रंग भरने का पूरा अधिकार है। उसके इस कदम से वकील साहब चुप्पी साधे हुए हैं यानी एक सामाजिक इंसान के रूप में उनकी मौन स्वीकृति है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र काफी चैतन्य है। चाहे वह अनपढ़ मित्रो हो या शिक्षित छुन्ना, अपने अधिकारों के लिए ताउम्र संघर्ष करने वाली ये सभी स्त्रियाँ किसी के भी आगे घुटने नहीं टेकती, बल्कि अपने लिए खुद रास्ते बना लेती हैं और अपने अधिकार प्राप्त कर लेती है। वर्तमान में स्त्रियों के अंदर इसी चेतना की आवश्यकता है जो उन्हें एक पूर्ण व्यक्तित्व प्रदान करेगा और उनके सामने सुनहरा भविष्य होगा। जिसमें समानता पर आधारित समाज होगा। इस अर्थ में कृष्णा सोबती के उपन्यास आधुनिक नारी शक्ति को एक सशक्त आधार प्रदान करते हैं और आगामी उपन्यास की संरचना को एक नयी दिशा देते हैं।

संदर्भ सूची :

1. रोहिणी अग्रवाल : हिंदी उपन्यास का स्त्री पाठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 70
2. निर्मला जैन : कथा समय में तीन हम सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ. 120

3. निर्मला जैन : कथा समय में तीन हम सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011, पृ. 122
4. कृष्णा सोबती : मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवाँ संस्करण 2018, पृ. 20
5. निर्मला जैन : कथा समय में तीन हम सफर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ. 11
6. कृष्णा सोबती : दिलोदानिश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1993, पृ. 19
7. कृष्णा सोबती : समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृ. 17
8. कृष्णा सोबती : चन्ना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. कवर से
9. कृष्णा सोबती : ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण 2018, पृ. 55–56
10. कृष्णा सोबती : कथा समय में तीन हम सफर, राजकमल प्रकाशन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ. 130

drneetu2012@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 178–181
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

एक महिला साहित्यकार की विवादित आत्मकथा 'अन्या से अनन्या'

शशि नाथ प्रसाद (पीएच०डी शोधार्थी), हिन्दी– विभाग
पंजीयन संख्या : JPU/2021-2024/Ph.D/00275.
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)।

शोध सारांश –

कोई मनुष्य चाहे वह साधारण व्यक्ति हो, नेता हो, अभिनेता हो, राजनेता हो, राजा हो, साहित्यकार हो, रचनाकार हो या फिर कितना ही बड़ा कलाकार क्यों न हो, आत्मकथा लिखना अपने आप में एक चुनौती पूर्ण कार्य है। ऐसे बहुत कम लोग होते हैं, जो अपने जीवन में घटित सभी घटनाओं का सही–सही ब्यौरा पूरे संसार के समक्ष रखने का दम रखते हैं। ऐसे ही चंद बहादुर लोगों में से हिंदी साहित्य जगत की साहित्यकार प्रभा खेतान एक है। जहां महिला साहित्यकार आत्मकथा लिखने तक का साहस नहीं कर पाती, वही प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा के जरिए अपने जीवन में घटित उस सच्चाई को प्रस्तुत किया, जिससे इस पुरुष–प्रधान समाज में भूचाल आ गया। उनका उठाया यह कदम हिंदी साहित्य जगत में एक विवादित विषय बन गया। प्रभा खेतान द्वारा रचित आत्मकथा "अन्या से अनन्या", ऐसी विवादों में फंसी की कोई प्रकाशक इसे प्रकाशित करने को तैयार नहीं हो रहा था। अंततः जैसे–तैसे बहुत ही जद्दोजहद के पश्चात प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका हंस में यह धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुई। इसके बाद वर्ष 2007 में संपूर्ण रूप में इसका प्रकाशन हुआ।

आत्मकथा लिखने की भिन्न–भिन्न विधाएं है। जैसे – आत्म–वृतांत, आपबीती, और आत्म–संस्मरण (Self-memoir) आदि। हिंदी की पहली आत्मकथा बनारसी दास जैन द्वारा रचित अर्थकथानक को माना जाता है जिसका प्रकाशन सन् 1641 में हुआ था। वहीं दूसरी तरफ विदेश की बात करें तो आत्मकथा या ऑटोबायोग्राफी शब्द का इस्तेमाल सन 1796 ईस्वी में जर्मनी में हर्डर ने किया। इसके बाद सन 1809 ई० में ब्रिटेन में रॉबर्ट साउथे ने इस शब्द का प्रयोग किया। प्रभा जी के अनुसार आत्मकथा स्ट्रीप्टीस का नाच है। इसका उल्लेख करते हुए वह अपना मत प्रस्तुत करती हैं – "आत्मकथा लिखना तो स्ट्रीप्टीस का नाच है। आप चौराहे पर एक–एक कर कपड़े उतारने जाते हैं। लिखने वाले के मन में आत्मप्रदर्शन का भाव किसी न किसी रूप में मौजूद रहता है। मन में किसी कोने में हल्की सी चाहत रहतीं हैं, कि लोग उसे गलत नहीं समझें कि जो कुछ भी वह लिख रहा है उसे सही परिप्रेक्ष्य में लिया जाए।"[1]

बीज–शब्द : पितृसत्तात्मक, बेवाक, पुरुष–प्रधान, शारीरिक–शोषण, नारीवादी, उद्योगपति, न्याय।

मुल-आलेख :

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' पुरुष प्रधान समाज के मुंह पर तमाचा है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में अपने ऊपर हुए अन्याय, अत्याचार तथा शारीरिक शोषण को जिस साहस और बेबाक तरीके से चित्रित किया है, उसका कोई जवाब नहीं। प्रस्तुत आत्मकथा के शीर्षक में प्रयुक्त किया गया शब्द अन्या और अनन्या किसी भी शब्दकोश में उपलब्ध नहीं हैं। इन शब्दों का अर्थ हम इस प्रकार समझ सकते हैं – 'अन्या' शब्द का अर्थ दूसरे से या फिर दूसरी औरत से है। दूसरा शब्द 'अनन्या' का अर्थ समाज में अपनी अलग पहचान बनाने से है। अर्थात् 'अन्या से अनन्या' शीर्षक से स्पष्ट है कि इस आत्मकथा की मूलकथा प्रभा जी की दुसरी महिला से लेकर समाज में अपनी अलग पहचान बनाने तक के सफर का है।

पितृसत्तात्मक समाज में प्राचीन काल से आधुनिक काल तक स्त्रियों की स्थिति कुछ खघस नहीं रहीं है। प्राचीन काल से ही नारियों को पुरूषों पर आश्रित होने के लिए बाध्य किया गया है। उन्हें यह भी सिखाया जाता रहा है कि, इस पुरूष प्रधान समाज में पुरूषों के बिना उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वहीं दूसरी तरफ जहां शिक्षा का प्रचार और प्रसार हुआ, वहां महिलाएं जागरूक हुईं। वह अपने अधिकारों से अवगत हुई और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाई। प्रभा जी का मानना है कि चाहे पुरुष हो या फिर महिला जो जितना कमाता है, वह उतना अधिक स्वतंत्र है। प्रभा जी इस संदर्भ में लिखती है कि – "औरत की सारी आजादी उसके पर्स में ही निहित होती है।"[2] प्रभा जी का जन्म १ नवंबर १९४२ को एक संकीर्ण मानसिकता वाले हिन्दू मारवाड़ी परिवार में हुआ। जैसा कि हमलोग जानते है कि मारवाड़ी समुदाय को पैसे के अलावा कुछ नही सुझता। वे लोग पैसे के अंधे होते हैं। उन्हें पैसे के सामने ना ही परिवार दीखता है और ना ही संतान। प्रभा जी इसका उल्लेख करते हुए लिखती हैं –"हमारे परिवार का परम सुख था रूपया। अधिक से अधिक रूपया।"[3].

प्रभा जी का संपूर्ण बचपन धाय मां के साथ ही गुजरता हैं। वह बचपन से ही माता–पिता के प्रेम से वंचित रहती हैं। जब प्रभा जी केवल नौ वर्ष की थी, तब एक षड़यंत्र के तहत उनके पिता लादूराम खेतान, जो कि एक बहुत बड़े उद्योगपति थे, कि हत्या कर दी जाती है। प्रभा जी उस वक्त स्वयं को बहुत ही अकेला और असहाय महसूस करती हैं। इस घटना के संदर्भ में प्रभा जी लिखती है – "दूसरे दिन अखबारों में सुर्खियां थी– प्रसिद्ध उद्योगपति लादूराम खेतान की रहस्यमयी मौत। मृत देह सोनागाछी के बाथ हाऊस में मिली।"[4].

बचपन से ही प्यार से उपेक्षित, क्या करती सच्चे प्रेम की तालाश में जहां–तहां भटकती, अंत में एक शादीशुदा मर्द डाक्टर सर्राफ के प्रेम में पड़ जाती हैं। परंतु वहां भी उन्हें वह प्यार, मान–सम्मान नहीं मिलता, जिसकी वह उम्मीद करतीं हैं। सब कुछ न्यौछावर करने के बाद कुछ मिलता है तो केवल 'अन्या' अर्थात् दुसरी औरत होने का तमगा। प्रभा जी ने अपनी आत्मकथा में जिस साहस और बेबाक तरीके से स्वयं को दूसरी होने का उल्लेख किया है वह काबिल–ए–तारीफ है। वह स्वयं को परिभाषित करती हुई लिखती है– "मैं क्या लगती थी डॉक्टर साहब की, मैं क्यों ऐसे उनके साथ चली आई। प्रियतमां, मिस्ट्रेस, शायद आधी पत्नी, पूरी पत्नी तो मैं कभी नहीं बन सकती क्योंकि एक पत्नी पहले से मौजूद थी वह बाल–बच्चों वाले व्यक्ति थे, पिछले बीस सालों से मैं उनके साथ मगर किस रूप में.....? इस रिश्ते को..... नाम नहीं दे पाऊंगी। भला प्रेमिका की भूमिका भी कोई भूमिका हुई? प्रेम तो सभी करते हैं। प्रेम करने वाली स्त्री मां, बहन, पत्नी वह कुछ भी हो सकती है। या फिर सीधे–सीधे उसे रखैल कहो ना।"[5].

'आत्मकथा का विवादास्पद अध्याय' –

प्रस्तुत आत्मकथा विवादों में तब फंस जाती है जब इस पुरुष प्रधान समाज को प्रभा जी आईना दिखाने का काम करती है। वह अपने भ्रष्ट और कलुषित चेहरे को देखकर इतने चिढ़ जाएंगे, ऐसी कल्पना लेखिका ने नहीं की थी। विवाद यही से आरंभ होता है। कोई भी प्रकाशक इस आत्मकथा को प्रकाशित करने को राजी नहीं होता। इस पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को न्याय कैसे मिलेगा? महिलाओं के हित के लिए आवाज कौन उठाएगा? हालांकि, हम जानते हैं प्रभा जी बचपन से ही उपेक्षिता थी, ना ही उन्हें मां का प्रेम मिला और ना ही पिता का स्नेह। हद तो तब हो गई जब वह अपने ही भाइयों के द्वारा शारीरिक शोषण का शिकार होती है। पितृसत्तात्मक समाज में इस घटना को उजागर करने की वजह इसे छिपाने की ओर अधिक जोर दिया जाता है। धाय मां भी प्रभा जी को इस घटना की चर्चा किसी से न करने की सलाह देती है। प्रभा जी के संग जो हुआ इसकी चिंता किसी को नहीं, बल्कि उसके भाई की बदनामी समाज में ना हो इससे सभी परेशान थे। महिलाओं के लिए कौन लड़ेगा? महिलाएं अत्याचार कब तक सहती रहेगी? क्या उन्हें इंसाफ पाने का कोई अधिकार नहीं? प्रभा जी ने जिस जज्बे और साहस के साथ अपनी आत्मकथा में इस घटना को उजागर किया। इस प्रकार का साहसिक कार्य बहुत कम लोग कर पाते हैं।

'महिलाओं को न्याय कैसे मिलेगा? या फिर महिलाओं के पक्ष में फैसला कौन करेगा?' – वह जो इंसाफ की कुर्सी पर बैठा है, या फिर वह जो कानून की। दोनों के दोनों तो पुरुष ही है। यहां तक की भारतीय कानून का रचयिता भी एक पुरुष ही है। फिर महिलाओं को न्याय कैसे मिले? महिला होने के बावजूद भी प्रभा जी कभी स्वयं को पुरुषों से कम नहीं समझी। चाहे परिवार हो या फिर समाज सभी से तिरस्कृत हुई। परंतु सर्वदा संघर्ष करती रही। इस पुरुष प्रधान समाज में प्रभा जी ने कठिन परिश्रम और मेहनत से स्वयं को एक सफल उद्योगपति, साहित्यकार और समाजसेवी के रूप में स्थापित कर एक अलग उदाहरण प्रस्तुत किया। महिला चाह ले तो क्या न कर सकती है। अपनी सफलताओं का उल्लेख करते हुए प्रभाजी लिखती है– "मैं दौड़ रही थी.....और पहले वाली रिक्तता, शून्यता, व्यर्थता, के बदले बहुत कुछ सार्थक पा रही थी। मुझे अपनी इस नई व्यावसायिक दुनिया में रस मिल रहा था, काम में संतुष्टि थी। हर दिन लगता है मैं प्रगति की राह पर एक और कदम आगे बढ़ रही थी।"[6]. प्रभा जी को साहित्य के क्षेत्र में, उद्योग के लिए और सामाजिक कल्याणकारी कार्यों हेतु अनेकों सम्मान और पुरस्कार से नवाजा गया। वह कोलकाता चेंबर ऑफ कॉमर्स की प्रथम महिला अध्यक्ष बनी। उन्हें उद्योग जगत में सफलता हेतु टॉप पर्सनालिटी अवार्ड (उद्योग) से नवाजा गया। इसके अलावा उन्हें उद्योग विशारद, रत्न शिरोमणि, प्रतिभाशाली महिला पुरस्कार, महा पंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार, बिहारी पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद एवं डॉक्टर प्रतिभा अग्रवाल नाट्य शोध संस्थान आदि द्वारा सम्मानित किया गया।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत आत्मकथा पर प्रकाश डाला जाए तो यह कोई साधारण आत्मकथा नहीं। बल्कि संघर्ष से सफल होने तक की जीती–जागती कहानी है। यदि इसका कोई अन्य नाम दिया जाए तो 'संघर्ष से सफलता के शिखर तक' शीर्षक अत्यंत सही और सार्थक होगा। अभय कुमार दुबे, 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा के विषय में लिखते हैं – "प्रभा खेतान ने आत्मकथा लिखकर स्त्री जीवन की दुर्बलताओं के प्रमाणिक ब्यौरे पेश किए और उनके आईने में समाज को मजबूर किया है, कि वह स्त्री–पुरुष संबंधों पर एक बार फिर से सोचें।"[7].

बचपन से लेकर संपूर्ण जीवन उन्होंने जितनी संघर्षों का सामना किया वह अपने आप में अति सराहनीय है। प्रभा जी इसका उल्लेख करते हुए लिखती है– "मैंने अपने आप को बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है। हां टूटी हूं, बार–बार टूटी हूं..... पर कहीं तो चोट के निशान नहीं..... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई पर मैं मिट्टी के लौंदें में परिवर्तित नहीं हो पाई। इस उम्र में भी एक पूरी की पूरी साबूत औरत हूं, जो जिंदगी को झेल नहीं रही बल्कि हंसते हुए जी रही है, जिसे अपनी उपलब्धियां पर नाज है। दोस्ती का हाथ बढ़ाकर जिसकी गर्म हथेलियां हर किसी को अपने करीब खींच लेती है।"[8]. वह समाज में ऐसी महिलाओं के समक्ष एक अपवाद है, जो संपूर्ण जीवन भाग्य, नसीब, परिवार आदि के नाम पर दुखी और कुंठित जीवनयापन करती है।

यदि आत्मकथा पर विचार विमर्श किया जाए तो इसमें विवाद उत्पन्न होने जैसी कोई बात नहीं। परंतु पुरुष प्रधान समाज में जब पुरुषों की आन बान और शान पर बात आ जाय तो पुस्तक क्या, पूरा का पूरा साहित्य ही विवादों में फंस जाता है। यद्यपि प्रस्तुत आत्मकथा हिंदी साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बनाने में सफल रही। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा के विषय में डॉक्टर सरजू प्रसाद मिश्र लिखते हैं– "'अन्या से अनन्या' प्रभा खेतान नामक लेखिका की स्थिति का इतिवृत्त भले ही हो, भारतीय नारी की दशा दिशा का दर्पण तो यह निश्चित ही है।"[9]. वर्ष 2013 में 'इरा पान्डे' ने 'अन्या से अनन्या' का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में'A Life Apart : An Autobiography ' नाम से किया।

संदर्भ सूची :

1. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –255.
2. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –131.
3. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –21.
4. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –33.
5. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –8–9.
6. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –210.
7. हंस पत्रिका – अभय कुमार दुबे, नवम्बर 2008, पृष्ठ संख्या –70.
8. अन्या से अनन्या – प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –29.
9. हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएं – डॉक्टर सरजू प्रसाद मिश्र, पृष्ठ संख्या –111.

मूल संदर्भ-ग्रंथ –

1. 'अन्या से अनन्या',– प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

Email ID – snp27crj@gmail.com

Mobile number – 8653575675

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 182–189
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

हठयोग एवं स्वास्थ्य : एक समीक्षात्मक अध्ययन

संतोष कुमारी[1],
डॉ. सत्यप्रकाश पाठक[2],
अजय कुमार[3], महेन्द्र सिंह[4]
2 सहायक प्रोफेसर, योग अध्ययन विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला 171005
1, 3, 4 शोधार्थी, योग अध्ययन विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला 171005

शोध सार :–

हठयोग भारतीय योग परम्परा का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जिसका मुख्य उद्देश्य शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक संतुलन प्राप्त करना है। हठयोगिक ग्रंथ जैसे हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता तथा शिवसंहिता में वर्णित है हठयोग के अंतर्गत षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। इन सभी साधनों के माध्यम से स्वास्थ्य को सुदृढ़ किया जाता है। आधुनिक युग में बढ़ते तनाव, अनियमित जीवनशैली तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु हठयोग एक प्रभावी एवं वैज्ञानिक उपाय के रूप में उभरकर सामने आया है। यह शोध पत्र हठयोग की अवधारणा, उसकी पद्धतियों एवं स्वास्थ्य में उसके संबंध का विश्लेषण करता है।

घेरण्डसंहिता में उल्लिखित सिद्धान्तों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि योग साधना व्यक्ति को अज्ञान, माया एवं अहंकार जैसे बन्धनों से मुक्त कर आत्मबोध एवं आन्तरिक शान्ति की ओर अग्रसर करती है। हठयोग के नियमित अभ्यास से न केवल शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार होता है, बल्कि मानसिक स्थिरता, एकाग्रता एवं भावनात्मक संतुलन भी विकसित होता है। इस शोध में षट्कर्म एवं मुद्राओं का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव का वर्णन किया गया है।

मुख्य बिन्दु :– हठयोग, स्वास्थ्य, षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा।

प्रस्तावना :–

भारतीय योग परम्परा में हठयोग एक महत्वपूर्ण प्रणाली है। जो शरीर को शुद्ध कर मानसिक एकाग्रता के साथ साथ आत्म चिंतन की दिशा में मार्गदर्शन करता है। यह लेख इस बात की समीक्षा करता है कि हठयोग कैसे मानव के समग्र स्वास्थ्य को प्रभवित करता है। इस परम्परा में हठयोग एक महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक प्रणाली के रूप में स्थापित है। हठयोग न केवल शरीर को शुद्ध एवं सुदृढ़ बनाने का साधन है। घेरण्डसंहिता के अनुसार कहा गया है कि इस संसार में माया के समान बंधन में बांधने वाली कोई वस्तु नही है। योग से ज्यादा शक्तिशाली कुछ नहीं है। विद्या से श्रेष्ठ कोई भी मित्र नहीं है। अंहकार से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है।

आधुनिक युग में तीव्र गति से बदलती जीवनशैली, मानसिक तनाव, शारीरिक रोगों तथा असंतुलित दिनचर्या के कारण मानव अनेक समस्याओं से ग्रस्त हो गया है। ऐसे समय में योग, विशेषकर हठयोग, एक प्रभावी एवं वैज्ञानिक समाधान के रूप में उभरकर सामने आया है। आज का मानव योग के महत्व को समझने लगा है और इसे अपने जीवन में अपनाकर शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति तथा आध्यात्मिक संतुलन प्राप्त कर रहा है। हठयोग की विशेषता यह है कि यह शरीर और मन के मध्य संतुलन स्थापित करता है। इसके अभ्यास से न केवल शरीर रोगमुक्त एवं सुदृढ़ होता है, बल्कि मन भी एकाग्र, स्थिर एवं शुद्ध बनता है। प्राणायाम एवं ध्यान के माध्यम से साधक अपने अन्तर्मन की गहराइयों में प्रवेश कर आत्मबोध की दिशा में अग्रसर होता है। योग को अपनाने से वह शारिरिक, मानसिक आात्मिक रूप से अत्यधिक उन्नत होता जा रहा है। यौगिक ग्रन्थों में हठयोग का विशेष महत्व है। हठयोग के ग्रन्थों में हठयोगप्रदीपिका, घेरण्डसंहिता, हठरत्नावली, शिवसंहिता, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

हठयोग की परिभाषा :-

हठयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धसिद्धांतपद्धति के अनुसार ''ह'' कार से सूर्यनाड़ी का बोध होता है। ''ठ'' कार से चन्द्र नाड़ी का बोध होता है। सूर्य एवं चन्द्र नाड़ी के योग को हठयोग कहा गया है।

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारष्चन्द्र उच्यते।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धहठयोगो निगद्यते। (सि. सि. प. 1/69)

सूर्य को ''ह'' कहा जाता है और चन्द्र ''ठ'' कहते हैं। इन्ही ''ह'' और ''ठ'' (प्राण तथा अपान) के संयोग को हठयोग कहा जाता है। यहाँ सूर्य और चन्द्र का अर्थ शरीर की दो मुख्य ऊर्जाओं सक्रिय (उष्ण) और शांत (शीतल) से है। जब ये दोनों ऊर्जाएँ संतुलित होकर एकीकृत होती हैं, तब उसे हठयोग कहा जाता है, जो शरीर और मन में संतुलन स्थापित कर आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।

स्वास्थ्य की परिभाषा :-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। (सु० सू० 15/48)

अर्थात् जिस पुरुष के दोष (वात, पित्त, कफ), धातु (सप्त धातु;– रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र), मल (मूत्र, पुरीष, स्वेद) तथा अग्नि(5 भूताग्नि, 7 धात्वाग्नि, जठराग्नि) सम हो अर्थात् विकार रहित हो तथा जिसकी इंद्रियाँ, मन व आत्मा प्रसन्न हो, वही व्यक्ति स्वस्थ कहलाता है।

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढम्।

मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।। घे. सं. 1/10

प्रणायामाल्लाघवं च ध्यानात् प्रत्यक्षमात्मनः।

स्माधिना निर्लिन्तं च मुक्तिरेव न संशय।। घे. सं. 1/11

षट्कर्म हठयोग का प्रथम अंग है। इनके अभ्यास द्वारा शरीर का शोधन होता है। आसन के अभ्यास से शरीर को मजबूत बनता है। मुद्राओं के अभ्यास से मानव स्थिरता प्राप्त करता है। प्रत्याहार के अभ्यास से धैर्यवान बनता है। प्राणायाम के अभ्यास से लघुता प्राप्त करता है। ध्यान के अभ्यास से आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति होती है। समाधि के द्वारा निर्लिप्तता की प्राप्ति होती है। षट्कर्म के अंतर्गत छः प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख किया

गया है। जो धौति ,बस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक एवं कपालभाति नाम से उल्लिखित है।

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्।

विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण सर्वदा।। गोरक्षषतकम् श्लोक संख्या, 54

आसनो के अभ्यास द्वारा रोग नष्ट होते हैं। प्राणायाम के अभ्यास द्वारा पाप नष्ट होते हैं। प्रत्याहार के द्वारा मानसिक विकारों को नष्ट किया जाता है।

गोरक्षशतकम् में कहा गया है कि प्राणायाम के द्वारा योगी अपने पापों का नाश करता है, और प्रत्याहार के द्वारा मन के विकारों को नियंत्रित करता है। अर्थात् प्राणायाम शरीर को शुद्ध और संतुलित बनाता है, जबकि प्रत्याहार इन्द्रियों को भीतर की ओर मोड़कर मन को शांत और स्थिर करता है। इस प्रकार योगी निरंतर अभ्यास के द्वारा अपने शरीर और मन दोनों को शुद्ध एवं संयमित बनाता है।

पातंजलयोगदर्शन के अनुसार आसन सिद्धि हो जाने पर साधक शीत, उष्ण एवं भूख, प्यास आदि द्वन्दों से बाधित नहीं होता है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार कुम्भको के अभ्यास से ही सभी अशुद्धियां पूणतः शुद्ध हो जाती है। अतः कुछ योग के आचार्य अन्य शोधन क्रियायो के अभ्यास को सहमति प्रदान नहीं करते।

धौति क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

कासश्वासप्लीहकुष्टं कफरोगाऽच विंशतिः।

धौतिकर्मप्रभवेन प्रत्यान्त्येव न संशयः।। ह. यो. प्र. 2/25

धौति क्रिया के अभ्यास द्वारा खांसी, वसन संबंधी विकार, प्लीहा की बीमारी, चर्म रोग, बीस प्रकार के कफ संबधित रोग धौति क्रिया के अभ्यास से समाप्त हो जाते हैं।

बस्ति क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

गुलमप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोदभवाः।

बस्तिकर्मप्रभवेन क्षीयन्ते सकलामयाः।। ह. यो. प्र. 2/28

बस्ति क्रिया के अभ्यास द्वारा गुल्म, प्लीह एवं उदर संबंधी रोग एवं वात, पित्त एवं कफ के असंतुलन से उत्पन्न होने वाले रोग ठीक हो जाते हैं। जलबस्ति शोधन क्रिया के अभ्यास से धातु, इन्द्रिय तथा अन्तः स्थित इन्द्रियो को स्वास्थ्य लाभ मिलता है। शरीर में कान्ति बढ़ती है। जठरागिन में वृद्धि होती है। त्रिदोषों के असंतुलन के कारण जितने भी रोग उत्पन्न होतें हैं उन सब का नाश होता है।

नेति क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।

जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।। ह. यो. प्र. 2/31

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार इस क्रिया के अभ्यास द्वारा मस्तक के अग्र भाग का शोधन होता है। नेति क्रिया कपाल को शुद्ध करने वाली होती है और दिव्य दृष्टि प्रदान करती है। यह विशेष रूप से कन्धे से उपर उत्पन्न होने वाले रोगों के समूह को शीघ्र नष्ट कर देती है। नेति क्रिया शरीर के ऊपरी भाग, विशेषकर श्वसन तंत्र और इंद्रियों को शुद्ध करती है, जिससे स्वास्थ्य अच्छा होता है और मानसिक स्पष्टता तथा एकाग्रता भी बढ़ती है।

त्राटक क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।

यत्नतस्त्राअकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम्।। ह. यो. प्र. 2/33

त्राटक नामक शोधन क्रिया से आँखों के रोग एवं आलस्य आदि दूर होते हैं। इस अभ्यास को गुप्त रखने की बात कही गयी है।

नौलि क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

मन्दाग्निसंदीपनपाचनादि संधायिका□नन्दकारी सदैव।

अशेषदोषामयशोषणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः।। ह. यो. प्र. .2/35

नौलि क्रिया का अभ्यास मन्द जठराग्नि को तीव्र किया जाता है। यह क्रिया हमेशा आनन्द देने वाली है। इसके अभ्यास द्वारा त्रिदोषों के कारण उत्पन्न होने वाले सभी रोग नष्ट होते हैं। हठयोग की समस्त क्रियायों मे इसे सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

कपालभाति क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषिणी।।

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्यकफदोषमलादिकः।

प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्धयति।। ह. यो. प्र. .2/36,37

कपालभाति क्रिया के अभ्यास सभी प्रकार के कफ दोष नष्ट हो जाते हैं। सभी प्रकार के शट्कर्मो के अभ्यास द्वारा शारीरिक स्थूलता, कफ दोष एवं अन्य अशुद्धियों को दूर किया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास में सफलता शरीर की स्थूलता एवं कफ दोष दूर होने पर ही संभव हो पाता है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार धौति का स्वास्थ्य लाभ :-

घेरण्डसंहिता के अनुसार वातसार अन्तःधौति का एक प्रकार है। जिसके अभ्यास से शरीर शुद्ध होता है। यह देह के सभी रोगों का नाश करता है तथा देह की अग्नि को बढ़ाता है।

□ वरिसार धौति क्रिया का अभ्यास शरीर को शुद्ध करता है। इसके अभ्यास से शरीर देव तुल्य हो जाता है। इस अभ्यास को गुप्त रखने की बात कही गयी है।

वह्निसार धौति क्रिया के अभ्यास से जठराग्नि तीव्र होती है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार दन्तधौति के स्वास्थ्य लाभ :-

इस ग्रन्थ के अनुसार दन्तधौति के पांच प्रकार कहे गये हैं। जो दन्तमूल, जिह्वामूलं, दोनों कर्ण छिद्र एवं कपालरन्ध्र नाम से उल्लिखित हैं।

□ दन्तमूल धौति का अभ्यास मल को धेने आदि कार्यो के लिए किया जाता है। ऐसा योगियों का मत है।

□ जिह्वा के शोधन के कारण बुढ़ापा, मृत्यु इत्यादि का नाश होता है तथा जिह्वा लम्बी होती है। तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका के माध्यम से जिह्वा के मूल की सफाई करने से कफदोष का निवारण होता है।

□ कर्णयुग्म धौति का प्रतिदिन अभ्यास करने से आन्तरिक नाद सुनाई देता है।

□ कपालरन्ध्र धौति का अभ्यास करने से कफदोष का निवारण होता है। नित्तय इस धैति का अभ्यास करने से नाड़ियाँ मलरहित होती है तथा साधक को दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार हृद्धौति :-

महर्षि घेरण्ड द्वारा हृद्धौति तीन प्रकार की कही गई है। जिनका नाम दण्ड, वमन तथा वस्त्र धौति है।

हृद्धौति का स्वास्थ्य लाभ :-

☐ दण्ड धौति के अभ्यास से हृदय रोगों का नाश होता है।

☐ वमन हृद्धौति का प्रतिदिन अभ्यास काने से कफ एवं पित्त का नाश होता है।

☐ वस्त्र हृद्धौति का अभ्यास करने से गुल्म (वायुगोला), ज्वर, बढ़ा हुआ प्लीह, चर्मरोग, कफ, पित्त आदि रोग नष्ट होते हैं। इस अभ्यास से योग साधक के स्वास्थ्य, पोषण एवं शक्ति में निरन्तर वृद्धि होती है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार मूलशोधन का स्वास्थ्य लाभ :-

वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्णं निवारयेत्।
कारणं कान्तिपुष्ट्योश्र्च दीपनं वह्निमण्डललम्।। घे. सं. 1/43

इस क्रिया के अभ्यास से कब्ज रोग दूर होता है। अपच का निवारण होता है। त्वचा में चमक आती है तथा जठराग्नि प्रज्वलित करने में मूलशोधन उत्तरदायी हैं।

घेरण्डसंहिता के अनुसार बस्ति के स्वास्थ्य लाभ :-

☐ जलबस्ति के अभ्यास से मुत्रदोष, उदर संबधी विकार एवं वायु की क्रूरता का नाश होता है। साधक का अपने शरीर पर नियंत्रण स्थापित होता है। इस अभ्यास से साधक का शरीर कामदेव के समान सुंदर हो जाता है।

स्थलबस्ति के अभ्यास से उदर में होने वाला विकार जैसे कोष्ठबद्धता नहीं होती। जठरागिन में वृद्धि होती है एवं अपच दूर होता है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार नेति क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

कफदोषा विनऽयन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।। घे. सं. 1/50

नेतिक्रिया के अभ्यास से कफदोषों का नाश होता है एवं दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है। जठराग्नि में वृद्धि होती है एवं अपच दूर होता है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार लौलिकी (नौलि) क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्धनम्।। घे. सं. 1/51

नौलि क्रिया का अभ्यास देह की अग्नि में वृद्धि करता है तथा सब प्रकार के रोगों का नाश करता है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार त्राटक क्रिया का स्वास्थ्य लाभ :-

नेत्ररोगा विनऽयन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।। घे. सं. 1/53

इस क्रिया के अभ्यास से नेत्र विकारो का नाश होता है एवं दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार कपालभाति :-

घेरण्डसंहिता में कपालभाति तीन प्रकार की कही गयी है। जो वातक्रम, शीतक्रम एवं व्यूत्क्रम के नाम से उल्लिखित है।

कपालभाति के स्वास्थ्य लाभ :-

– वातक्रम कपालभाति के अभ्यास से कफरोगों का निवारण होता है।

– व्यूतक्रम कपालभाति के अभ्यास से श्लेष्म दोष का निवारण होता है।

–□ सीतक्रम कपालभाति क्रिया का अभ्यास करने से मनुष्य को बुढ़ापा नहीं आता। व्यक्ति ज्वर से पीड़ित नहीं होता है। शरीर पर नियंत्रण स्थापित होता है एवं कफदोष का निवारण होता है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार मुद्रा का स्वरूप :–

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धो महाबन्धे महावेधश्च खेचरी।। घे. सं 3/1
विपरीतकरी योनिर्वज्रोलि शक्तिचालिनी।
ताडागी माण्डुकी मुद्रा शांभवी पंचधारणा।। घे. सं 3/2
अश्र्विनी पाशिनी काकी मातड्.गी च भुजड्.गिनी।
पंचविंशतिमुद्राश्र्च सिद्धिदा इह योगिनाम्।। घे. सं 3/3

घेरण्डसंहिता के तृतीय उपदेश का नाम मुद्राप्रयोग है। जिसकं अन्तर्गत पच्चीस मुद्राओं का वर्णन किया गया है। जिनके नाम हैं महामुद्रा, नभोमूद्रा, उड्डीयानबंध, जालधंर बंध, मूलबंध, महाबंध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनिमुद्रा, वज्रोलि, शक्तिचालिनी, ताडागी, माण्डुकी, शांभवी, पंच्च धारणा (पार्थिवी–पृथ्वी, आम्बसी–जलीय, वायवी–वायु, अग्नि–अग्नि और आकाशी–आकाश), अश्विनी, पाशिनी, काकी मातड्.गी तथा भुजड्.गिनी मुद्रा।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार मुद्राभ्यास :–

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उड्डीयानं मूलबन्धस्ततो जालन्धराभिधः।। ह. यो. प्र. 2/6
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्।
इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम्।। ह. यो. प्र. 2/7

स्वामी स्वात्मारामकृत हठयोप्रदीपिका के तृतीय अध्याय में विभिन्न मुद्राओं के नाम विधि एवं उनके महत्त्व का विस्तृत वर्णन किया गया है। महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डीयानबंध, मूलबन्ध, जालन्धबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालनी आदि। कुण्डिलिनी शक्ति को जगाने के लिए विभिन्न प्रकार की मुद्राओं के अभ्यास का प्रयत्नपुर्वक करने का वर्णन किया गया है।

घेरण्डसंहिता के अनुसार महामुद्रा का स्वास्थ्य लाभ :–

वलितं पलितं चैव जरा मृत्यु निवारयेत्।
क्षयकाशं उदावर्तप्लीहाजीर्णज्वरं तथा।
नाशयेत्सर्वरोगांऽच महामुद्राप्रसाधनात्।। घे. सं. 2/7

घेरण्डसंहिता के अनुसार महामुद्रा आदि यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से शरीर के दोष (वात, पित्त, कफ) तथा उनसे उत्पन्न होने वाले कष्ट, रोग और यहाँ तक कि मृत्यु के कारण भी धीरे–धीरे नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति महामुद्रा का अभ्यास करता है, इसके अतिरिक्त क्षय रोग, खाँसी, उदर के विकार, प्लीह की बीमारी, अपच, बुखार सहिम सभी प्रकार के रोगों का नाश होता है।

हठप्रदीपिका के अनुसार महामुद्रा का स्वास्थ्य लाभ :–

महाक्लेशादयो दोषाः क्षीयन्ते मरणादयः। ह. यो. प्र. 3/4

क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।

तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्। ह. यो. प्र. 3/17

इस मुद्रा के अभ्यास के महाक्लेश का नाश मृत्यु तथा अन्य समस्याएं नष्ट हो जाती है। महामुद्रा का अभ्यास करने से अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश जैसे महाकलेश तथा शरीर के दोष धीरे–धीरे समाप्त हो जाते हैं। यहाँ तक कि जो कारण मनुष्य को मृत्यु की ओर ले जाते हैं, वे भी कमजोर पड़ जाते हैं क्षय रोग, कुष्ठ रोग अपच, गुल्म, अजीर्ण आदि रोगों का नाश होता है। जो व्यक्ति महामुद्रा का अभ्यास करता है, उसके सभी दोष क्षीण हो जाते हैं।"

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार महाबंध का स्वास्थ्य लाभ :–

कालपाशमहाबंधविमोचनविचक्षणः। ह. यो. प्र. 3/24

महाबंध का अभ्यास व्यक्ति को मृत्यु के जाल से छुड़ाता है। यहाँ "कालपाश" को समय और मृत्यु का बंधन कहा गया है, जिसमें हर जीव फंसा हुआ है। योग के अभ्यास जैसे महाबन्ध या अन्य मुद्राएँ साधक के शरीर, प्राण और मन को इस प्रकार नियंत्रित करते हैं कि वह सामान्य सांसारिक बंधनों से ऊपर उठने लगता है।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार महावेध का स्वास्थ्य लाभ :–

वलीपलितवेपघ्नः सेव्यते साधकोत्तमैः। ह. यो. प्र. 3/29

महावेध का अभ्यास व्यक्ति को अनेक लाभ प्रदान करता है। इसका अभ्यास झुर्री, बालों का पकना तथा शरीर में होने वाली कंपन को नष्ट करता है।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार खेचरी मुद्रा का स्वास्थ्य लाभ :–

न रोगो मरणं श्तन्द्रा न निद्रा न क्षुधा तृषा।

न च मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम्।। ह. यो. प्र. 3/39

खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने वाला साधक विष रोग, मृत्यु, बुढ़ापा इत्यादि से मुक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त रोग, आलस्य, भूख प्यास आदि से पीड़ित नहीं होता।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार उड्डीयानबंध मुद्रा का स्वास्थ्य लाभ :–

अभ्यसेत् सततं यस्तु वृद्धोऽपि तरुणायते। ह. यो. प्र. 3/58

जो व्यक्ति निरंतर उड्डीयानबंध मुद्रा का अभ्यास करता है, वह वृद्ध होने पर भी युवा जैसा बन जाता है। यदि कोई साधक नियमित और निरंतर योगाभ्यास करता है, तो शरीर में ऊर्जा और स्फूर्ति बनी रहती हैं। मन प्रसन्न और स्थिर रहता है, उड्डीयानबंध मुद्रा के अभ्यास से वृद्ध भी युवा हो जाता है।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार मुलबंध मुद्रा का स्वास्थ्य लाभ :–

अपानप्राणयोरैक्य क्षयो मूत्रपुरीषयोः।

युवा भवति सततं मुलबन्धनात्। ह. यो. प्र. 3/65

इसके अभ्यास से वृद्ध भी युवा हो जाता है। प्राण एवं अपान वायु एक हो जाते हैं। मूत्र और पुरीष की अधिकता का क्षय होता है, और मनुष्य सदा युवा बना रहता है। मूलबन्ध के अभ्यास से पाचन और उत्सर्जन प्रणाली सुधरती है। शरीर में ऊर्जा का संचार बढ़ता है, जिससे साधक सदैव युवा, स्वस्थ और स्फूर्तिवान बना

रहता है।

निष्कर्ष :-

हठयोग भारतीय योग परंपरा की एक महत्वपूर्ण शाखा है। जो शरीर मन और आत्मा के संतुलन के माध्यम से सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। यह केवल शारीरिक व्यायाम ही नहीं अपितु एक वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक साधना पद्धति है जो आज के तनावपूर्ण और रोगग्रस्त जीवन में अत्यंत प्रासंगिक और प्रभावशाली है।

वर्तमान समय में जब मनुष्य की जीवनशैली अत्यधिक व्यस्त, तनावपूर्ण और असंतुलित हो गई है, तब जीवनशैली से जुड़े रोग जैसे उच्च रक्तचाप, मधुमेह, मोटापा, अवसाद और अनिद्रा तेजी से बढ़ रहे हैं। ऐसे में हठयोग एक प्रभावशाली समाधान के रूप में उभरकर सामने आया है। इसके नियमित अभ्यास से न केवल शारीरिक रोगों में राहत मिलती है, बल्कि मानसिक शांति, भावनात्मक संतुलन और सकारात्मक दृष्टिकोण का भी विकास होता है।

हठयोग का अभ्यास व्यक्ति को आत्म अनुशासन सिखाता है और उसे अपनी इंद्रियों तथा मन पर नियंत्रण स्थापित करने की क्षमता प्रदान करता है। यह आत्म साक्षात्कार की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण साधन है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकता है। हठयोग के माध्यम से साधक धीरे–धीरे बाहरी विकर्षणों से मुक्त होकर आंतरिक शांति और आनंद की अवस्था को प्राप्त करता है।

इसके अतिरिक्त, हठयोग सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह व्यक्ति को संतुलित, संयमित और सकारात्मक बनाकर समाज में सामंजस्य और सद्भाव को बढ़ावा देता है। एक स्वस्थ और शांत व्यक्ति ही एक स्वस्थ समाज के निर्माण में योगदान दे सकता है। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हठयोग एक समग्र स्वास्थ्य साधना है, जो मनुष्य के जीवन को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर संतुलित और समृद्ध बनाती है। इसके नियमित और सही अभ्यास से व्यक्ति न केवल रोगमुक्त जीवन जी सकता है, बल्कि एक संयमित, शांतिपूर्ण और सकारात्मक जीवन शैली को भी अपना सकता है।

संदर्भ :-

1. आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध, स्वामी सत्यानंद सरस्वती, बिहार स्कूल ऑफ योगा, मुंगेर, 2002
2. हठ योग प्रदीपिका, ज्ञान शंकर सहाय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 2021
3. घेरण्ड संहिता, ज्ञान शंकर सहाय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 2023
4. शिव संहिता, परमहंस स्वामी अंनत भारती, डॉ. श्रीवस्त, चौखम्बा ओरियन्टालिया, 2012
5. हठरत्नावली, प्रो. ज्ञान शंकर सहाय, गिरीरत्न मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 2021
6. सिद्धसिद्धान्तपद्धति, परमहंस स्वामी अंनत भारती, चौखम्बा ओरियन्टालिया, 2017
7. बहिरङ्ग योग, श्री योगोश्वरानन्द परमहंस, योग निकेतन ट्रस्ट।
8. गोरक्षशतकम्, दार्शनिक साहित्यानुसन्धान विभाग, कैवल्यधाम, 23 जून 2013
9. पातजलयोगदर्शन, डॉ सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 2018
10. हठयोगप्रदीपिका, परमहंस स्वामी अनन्त भारती, सुरभारती ओरियन्टालिया, 2023
11. घेरण्डसंहित, परमहंस स्वामी अनन्त भारती, सुरभारती ओरियन्टालिया, 2021
12. घेरण्डसंहिता, स्वामी निरजनानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत, 2011
13. सुश्रुतसंहिता, कविराज डॉ अम्बिकादत्तशास्त्री ए. एम. एस. चौखम्बा संस्कृत सीरिज बनारस, 1954

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 190–193
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

श्रीरामचरितमानस में संस्कृति का धार्मिक चित्रण

पूनम, षोधार्थी,
प्रोफेसर संजीव कुमार (षोध निर्देषक)
हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विष्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा।

शोध पत्र :

भारतीय सांस्कृतिकता की भूमिकाओं में हमारे वेदों, पुराणों तथा ग्रंथों का योगदान सर्वोपरि रहा है। गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस भी एक ऐसा ही सांस्कृतिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ संस्कृति के समस्त अपों का चित्रण करता है। इसमें भक्ति, धर्म, कर्त्तव्यपरायणता, वचनबद्धता, स्नेह, आदर जैसे भावों का समावेष है। गोस्वामी जी ने इस ग्रंथ के माध्यम से श्रीराम जी की धार्मिकतापूर्ण एवं मौलिकतापूर्ण संस्कृति का वर्णन किया है, जो संपूर्ण समाज को यह संदेष देता है कि मानव जन को अपने व्यक्तित्व में आदर्ष, दया, प्रेम तथा समभावन, जैसे सांस्कृतिक मूल्यों को धारण करना चाहिए। हमारा धर्म ही हमें संस्कृति एवं धार्मिकता की पहचान करवाता है। धर्म ही धार्मिक गुणों का संचार करता है जिससे मानवता का गुण संस्कृति से परिचित हो सके। संस्कृति में धार्मिक भावना का अभाव संपूर्ण सांस्कृतिकता को नमट कर सकता है। साथ ही जनदृमानस को पथभ्रमट भी कर सकता है। इस कारण धार्मिकता का होना हमारी संस्कृति के लिए सात्विकता का प्रतीक है। श्रीरामचरितमानस अपी कथाएँ इसको मुख्य अप से चित्रित करती है जिसको मानव जन ग्रहण करता है और सदाचार का मार्ग अपनाता है। आधुनिक मानव जन को श्रीराम के आदर्षों का पता चलता है कि वह कितने अच्छे पुत्र, भ्राता, पति एवं राजा थे। इनकी धार्मिक संस्कृति वर्तमान मानव के संपूर्ण जीवन को सात्विकता से परिपूर्ण कर देती है। मानव को सकारात्मक पथ प्राप्त होता है। इस प्रकार की सात्विकता सांस्कृतिक दिषा प्रदान करती है। हमारी संस्कृति प्राचीन समय से ही धर्म एवं भक्ति का अनुषरण करती रही है। जब भी मानव ने अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक गुणों का त्याग किया है, तभी श्रीरामचरितमानस की कथा एवं धार्मिक चित्रण ने संपूर्ण मानव जाति को सद्मार्गी बनाया है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने ग्रंथ श्रीरामचरितमानस में राम के गुणों का भव्य वर्णन किया है। गोस्वामी जी वर्णित करते है कि :–

"बुध विश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुमा बिभंजनि।।
रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुं अरनी।।"(1)

अर्थात् रामकथा पण्डितों को विश्राम देने वाली, सब मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली और कलियुग के पापों का नाष करने वाली है। रामकथा कलियुग अपी सांप के लिए मोरनी है और विवेक अपी अग्नि के प्रकट करने के लिए अरणि है, अर्थात इस कथा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह ग्रंथ मात्र धर्म की कोई सामान्य पुस्तक

नहीं है। यह तो संस्कृति एवं धार्मिक बिन्दुओं का संपूर्ण कथा सार है।

''राम कथा कलि कामद गाई। सुजन संजीवनि, मूरि सुहाई।।

सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनी।।[2]

इसमें गोस्वामी जी कहते हैं कि रामकथा कलियुग में सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु गौ है और सज्जनों के लिए सुंदर संजीवनी जड़ी है। पृथ्वी पर यही अमृत नदी है, जन्म–मरण अपी भय का नाष करने वाली और भ्रमअपी मेंढ़कों को खाने के लिए सर्पिणी है।

गोस्वामी जी ने यह चित्रण किया है कि धार्मिक संस्कृति से विमुख मानव जन के लिए राम कथा वरदान है। इसको स्मरण करने के पष्चात मानव जन अपने धार्मिक मार्ग एवं सांस्कृतिकता को पूर्ण अप से स्मरण कर लेता है। इस ग्रंथ के धार्मिक चित्रण एवं सांस्कृतिक अप से संबंधित अनेको विचारकों ने अपने–अपने विचार प्रकट किये हैं।

डॉ. हरिष्चन्द्र वर्मा जी ने श्रीरामचरितमानस की पौराणिकता से संबंधित विचार प्रकट करते हुए वर्णित किया है कि ''पौराणिकता कभी भी वैज्ञानिक के अप में नहीं हो सकता, पौराणिकता का दृष्टिकोण धार्मिक भावना एवं आस्था और विष्वास से संबंधित है। मानव जन ने अपने जीवन में अनेकों धर्मों तथा समुदायों को देखा है जिसके कारण मानव का मन विचलित होना स्वाभाविक है, परंतु तुलसी काव्य रचना की धार्मिकतापूर्ण कृति श्रीरामचरितमानस ने संपूर्ण संसार को, संस्कृति तथा धर्म के प्रति सात्विक भाव रखने वाला बना दिया।''[3]

इससे यह ज्ञात होता है कि तुलसी के युग में संपूर्ण धर्म एवं सगुण भक्ति, धार्मिकता के स्वरूप में पौराणिक परंपरा, सांस्कृतिक जागरण और हिन्दु धर्म के पुर्नउत्थान की दिषा प्रयत्नषील थी। हमारी परंपरा में श्रीरामचरितमानस एक धरोहर के अप पहचाना जाता है। इसमें सौंदर्य, धर्मनिष्ठता, कर्त्तव्यनिष्ठता जैसे मौलिक गुणों का सार है। जो इसको धार्मिक एवं संस्कृति का मुख्य स्त्रोत बनाता है। वैसे तो श्रीराम जी के सांस्कृतिक गुणों का वर्णन अनेकों रचनाकारों ने, अपने–अपने विचारों के आधार पर किया है। जैसे पुष्पदंत की रचना पउमचरिउ, क्षेमेन्द्र की रामायण मंजरी आदि। और भी भाषाओं में इसकी धार्मिकता, सांस्कृतिकता का चित्रण किया गया है। इसमें तमिल, तेलुगु तथा हरियाणवी षैली प्रमुख है परंतु यह ग्रंथ अनेकों भाषाओं में रचित होकर संसार को धार्मिकता एवं सांस्कृतिकता का सात्विक संदेष दे रहा है।

हरियाणा के महान रचनाकार अहमद बक्ष थानेसरी ने तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस का हरियाणवी में अनुवाद करके एक नवीन प्रयोग किया। इसमें संपूर्ण काण्डों को अपनी बोली अर्थात हरियाणवी षैली का रूप दिया। प्रत्येक काण्ड के प्रारंभ में किसी न किसी देवता की स्तूति की गई है।

अयोध्या काण्ड – अगड़ बम्ब–बम्ब श्री कंठ हर अगड़ बम्ब बम्ब महादेव[4]

अरण्यकाण्ड – श्कंअ बिन षिवराज को जिनके पार्वती पास अख्य काण्ड कथा रतन कह जग कंअ प्रकाष विनय श्री राम लखन सिया माई को फिर बन–बन कमट हरि भुगतान, विनय तुलसीदास कविराई को विनय वाल्मीकि ऋषि कथन करि प्रगट प्रेम सुखदाई को कहे अहमद, मैं अरण्यकाण्ड कहूं करयो सिर चरण सहाई को।[5]

किष्किंधा काण्ड – प्रथम बिन्दु गौरी गणपति फिर प्रभुनाम अखण्ड[6]

इसी प्रकार अहमद बख्श थानेसरी ने अपनी हरियाणवी भाषा षैली का सुंदर चित्रण किया है। उन्होंनें प्रत्येक काण्ड के प्रारंभ में देव स्तुति की है उसके उपरांत अपनी मातृभाषा में राम कथा सार का गुणगान किया

है। श्रीरामचरितमानस की यही सबसे उत्तम विषेषता है कि उसमें धार्मिक गुण एवं संस्कृति का संपूर्ण चित्रण श्रेष्ठतम अप में प्रस्तुत किया गया है। श्री रामेष्वर दयाल षास्त्री जी ने भी इसका अनुवाद हरियाणवी बोली अर्थात अपनी मातृभाषा में किया है उन्होंनें भी प्रत्येक काण्ड के प्रारंभ में ईष्वर की स्तुति अथवा मंगलाचार का वर्णन किया है। इन्होंनें सात काण्ड वर्णित किये हैं और इस रचना के माध्यम से गांव समाज को उनकी ही भाषा में हरि चर्चा करके समाज को धर्म एवं संस्कृति की सात्विकता का संदेष दिया है।[7]

इस ग्रंथ में संस्कृति को मूलतः अप परिभाषित किया है। सीता राम विवाह का प्रसंग हो अथवा राज्यभिषेक का प्रसंग अनेकों प्रसंगों के माध्यम से गोस्वामी जी ने इसमें सांस्कृतिकता के पत्र को उजागर किया है।

गोस्वामी जी ने सदाचार गुणों का चित्रण करते हुए भरत जैसे महान भक्त एवं सेवक का व्यक्तित्व वर्णित किया है जो संपूर्ण संसार को यह संदेष देता है कि भ्रातृत्व की भावना सात्विक होनी चाहिए जिसके कारण हमारी मौलिक संस्कृति एवं धार्मिक संस्कारों का निर्माण होता है। श्रीरामकथा को संपूर्ण संसार धार्मिक गुणों का सार मानता है। इसके माध्यम से ही मानव जन अपनी परंपराओं, संस्कृतियों आदि से जुड़ता है ईष्वर तत्व के माध्यम से स्वयं को एक सुसांस्कृतिक रूप में बना लेता है। इसमें तुलसीदास जी ने नारी की भूमिका को भी धार्मिक एवं सांस्कृतिक अप में चित्रित किया है। कौसल्या माता जो धरा के समान धैर्यवान है। उसी प्रकार उर्मिला का वर्णन मिलता है कि उनके धैर्य की यह पराकाष्ठा थी कि अपने स्वामी से दूर उनको कुछ ही क्षण नहीं; अपितु चौदह वर्षों तक दूर रहना था। साथ ही अपने पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए उन्होंनें अपना जीवन सात्विक संस्कृति पूर्ण मूल्य के साथ यापन किया है। वही सीता तो संपूर्ण नारी जाति के लिए एक सांस्कृतिकता की भावना से परिपूर्ण रूप की उदाहरण एवं प्रतिमूर्ति है। संसार में सीता के मौलिक एवं धार्मिक गुणों को आदर्ष माना जाता है। वर्तमान में नारी इन आदर्षों को धारण करती है। यह आदर्ष ही संपूर्ण नारी जाति को धार्मिक एवं सांस्कृति धारणा प्रदान करते हैं। श्रीरामचरितमानस तो संस्कृति के संपूर्ण प्रसंगों का कोष है और धर्म की भव्य ग्रंथ हैं। यह हमें भक्ति, तप, व्रत, साधना, प्रेम, त्याग, समर्पण जैसे धार्मिक गुणों को प्रदान करती है। इन धार्मिक गुणों के माध्यम से ही, सांस्कृतिक गुणों का निर्माण होता है। जो मानव अपने धर्म तथा सांस्कृतिक आचरणों से विमुख होता है, उसके कारण संपूर्ण सभ्यता का ह्रास हो जाता है। मानव जन को राम कथा सार श्रवण करना चाहिए; क्योंकि आदर्ष चरित्रों को सुनने के कारण ही मानव का चरित्र भी आदर्ष हो जाता है।

निष्कर्ष :

अंत में कहा जा सकता है कि श्रीरामचरितमानस कोई सामान्य पुस्तक नहीं है यह तो संपूर्ण मूल्यों, आदर्षों, मौलिक संस्कृतियों तथा धार्मिक गुणों का संपूर्ण कोष है। इसके माध्यम से ही मानव जन में सांस्कृतिक तथा धार्मिक गुणों का संचार होता है। गोस्वामी जी ने इसमें संस्कृति तथा धार्मिकता के अनेकों अनेक प्रसंग उल्लेखित किये हैं जिनका संक्षेप में वर्णन नहीं किया जा सकता। यह तो भव्य महासागर है जिसके भीतर धर्म, भक्ति, संस्कृति जैसे सात्विक चरित्रों का चित्रण मिलता है। एक सीप के मोती की भांति इसके भीतर अनेकों सात्विक गुण समाहित हैं।

संदर्भ सूची :

1. श्रीरामचरितमानस – गीता प्रेस गोरखपुर।

2. तुलसी – डा. हरिचन्द्र वर्मा, साहित्य के संस्कृति आयाम – हिन्दी साहित्य संस्थान (रोहतक)
3. हिन्दू संस्कृति अंक (कोष) – गीता प्रेस गोरखपुर।
4. डा. राजबीर धनखड़, हरियाणवी साहित्य का इतिहास – सुकीर्ति प्रकाषन (कैथल)
5. डा. राजबीर धनखड़, हरियाणवी साहित्य का इतिहास – सुकीर्ति प्रकाषन (कैथल)
6. डा. राजबीर धनखड़, हरियाणवी साहित्य का इतिहास – सुकीर्ति प्रकाषन (कैथल)
7. डा. राजबीर धनखड़, हरियाणवी साहित्य का इतिहास – सुकीर्ति प्रकाषन (कैथल)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 194–198
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

भारतीयज्ञानपरम्परायामन्तर्निहितवैज्ञानिकतत्त्वानि

सुभाषः पालः
शोधछात्रः, दर्शनविभागः, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः
(केन्द्रीयविश्वविद्यालयः) नवदेहली– 110016

भारतीयज्ञानपरम्परा :

भारतीयज्ञानपरम्परा विश्वस्य प्राचीनतमा समृद्धा च वर्तते। इयम् केवलम् आध्यात्मिकचिन्तनस्य भण्डारं नैव, अपितु भौतिकजगतः नियमानाम् अन्वेषणस्य वैज्ञानिकपद्धतीनां च जीवन्तं स्वरूपम् अस्ति। बहवः पाश्चात्यविद्वांसः 'विज्ञान' (Science) शब्दस्य परिभाषां केवलम् आधुनिकयूरोपीयपद्धत्यैव सीमितं कुर्वन्ति, किन्तु भारतीयसन्दर्भे 'शास्त्र' शब्दः तस्मात् व्यापकः। 'शास्त्र' शब्दः तस्य व्यवस्थिततां, सिद्धान्तबद्धतां, परीक्षणक्षमतां, प्रयोजनकारिताञ्च द्योतयति। अद्यत्वे राष्ट्रियशिक्षानीतिः (NEP 2020) भारतीयज्ञानपरम्परायाः अध्ययनं पाठ्यक्रमे अनिवार्यतया योजयितुम् आह्वानं करोति। अस्माकं धारणा यत् ऋग्वेदे 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'।[1] इति या उदारधारणा वर्तते, सा एव आधुनिकवैज्ञानिकचिन्तनस्यापि आधारशिला अस्ति। परम्परा एषा न केवलं श्रद्धायाः, अपितु युक्तेः, तर्कस्य, प्रयोगस्य च कृतेऽपि स्थानं यच्छति।

१. वेदेषु वैज्ञानिकदृष्टिकोणः

वेदाः केवलं स्तोत्राणि न सन्ति, अपितु तेषु ब्रह्माण्डविज्ञानस्य (Cosmology), भौतिकशास्त्रस्य (Physics) च गूढ़ाः सिद्धान्ताः निहिताः। ऋग्वेदे नासदीयसूक्तम् (१०.१२९) सृष्टेः प्रारम्भिकावस्थायाः वर्णनं करोति, यत्र न असत् आसीत्, न सत् आसीत्। इदं वर्णनम् आधुनिकस्य 'बिग–बैङ्' सिद्धान्तस्य पूर्वरूपम् इव प्रतिभाति। ऋग्वेदे (१०.८५.१८) सूर्यस्य पृथिव्यापेक्षया गतिः, तथा च ऋतूनां नियमितता (ऋतम्) ब्रह्माण्डे नियमकारित्वं दर्शयति। अत्र नियमः (Law) देवानाम् अपि ऊर्ध्वं वर्तते। एषः एव भावः आधुनिकवैज्ञानिकस्य प्रकृतिनियमस्य (Laws of Nature) अवधारणायाः समीपस्थः। अत्र उल्लेखनीयं यत् ऋतुशब्दः 'ऋ' धातोः निष्पन्नः, यस्य अर्थः गतिः, क्रमः च। अनेन जगति व्याप्तः क्रमः (Cosmic Order) ज्ञायते।

२. आयुर्वेदः – जीवनस्य विज्ञानम्

आयुर्वेदः केवलं चिकित्सापद्धतिः नास्ति, अपितु स जीवनस्य समग्रदर्शनम् उपस्थापयति। चरकसंहितायाम् आयुर्वेदस्य लक्षणम् उक्तम् – 'हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्। मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।'[2] अत्र मुख्यतया त्रिदोषसिद्धान्तः (वात–पित्त–कफ) शरीरक्रियाविज्ञानस्य (Physiology) एकः अद्भुतः सिद्धान्तः। वातः (गतिः), पित्तम् (p;kip;/Metabolism), कफः (संरचना/Structure) इति एते त्रयः शरीरस्य मूलभूताः स्तम्भाः। आधुनिकजीवविज्ञाने (Modern Biology) अपि कोशिकायाः (Cell) कार्यं गतिः, ऊर्जाप्रवाहः (Energy),

संरचना (Structure) इति त्रिधा विभक्तुं शक्यते। आधुनिकविज्ञाने यथा 'Homeostasis' (शरीरस्य सन्तुलनम्) इति उच्यते, तथैव आयुर्वेदे वात–पित्त–कफ इति त्रयाणां दोषाणां सन्तुलनं स्वास्थ्यस्य आधारः मन्यते।

- ☐ वातः गतिशीलता (Kinetic Energy) – तन्त्रातन्त्रसञ्चालनम्।
- ☐ पित्तम्ः चयापचयः (Metabolism/Thermodynamics) – पाचनं तापक्रमनियमनं च।
- ☐ कफः संरचना (Structural Integrity/Anabolic function) – शरीरस्य दृढता।

चरकेण स्पष्टम् उक्तं यत् त्रयः दोषाः स्वस्थस्य रक्षणे, रुग्णस्य रोगनाशे च सहायकाः। अत्र बहवः सिद्धान्ताः आधुनिकवैज्ञानिकपरीक्षणानन्तरमेव प्रतिष्ठापिताः। यथा – पिप्पली (Long pepper) सेवनेन यकृत्–कोशिकासु (Liver cells) धनात्मकपरिवर्तनं भवति इति आधुनिकचिकित्साशास्त्रेण अपि अङ्गीकृतम्। ऋषिः सुश्रुतः 'शल्यचिकित्सायाः पिता' (Father of Surgery) इति कथ्यते। सः १२१ प्रकारकाणां शल्ययन्त्राणां (Surgical Instruments) वर्णनं कृतवान्, येषां संरचना आधुनिकयन्त्राणाम् इव अस्ति। नासिकासन्धानम् (Rhinoplasty): कपोलस्य चर्मणा नासिकायाः पुनर्निर्माणं सुश्रुतेन वर्णितम्, यत् अद्यापि आधुनिक–प्लास्टिक–सर्जरी–शास्त्रे आधारभूतं वर्तते। 'प्रत्यक्षतो हि यद् दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद् भवेत्। समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्धनम्।।''[3]

यन्त्रशस्त्राणिः 'सिंहमुख–यन्त्रं', 'मकरमुख–यन्त्रं' च इत्यादीनां सूक्ष्मवर्णनं तस्य वैज्ञानिकदृष्टिं दर्शयति। आयुर्वेदे वनस्पतीनां रासायनिकगुणानां (Phytochemistry) सूक्ष्मं विश्लेषणं कृतम् अस्ति। 'रस–गुण–वीर्य–विपाक–प्रभाव' इति पञ्चविध–तन्त्राणां आधारेण औषधीनां कार्यप्रणाली उक्ता।

३. ज्योतिषशास्त्रम् – गणितस्य खगोलशास्त्रस्य च समन्वयः

ज्योतिषशास्त्रं वेदाङ्गेषु अन्यतमम्। भास्कराचार्यस्य सिद्धान्तशिरोमणौ, आर्यभट्टस्य आर्यभटीये च अनेके खगोलीयसिद्धान्ताः, गणितीयपरिकल्पनाः च सन्ति। आर्यभटः (४७६ ई.) ज्योतिषशास्त्रे गुरुत्वाकर्षणस्य, सूर्यकेन्द्रितसिद्धान्तस्य (Heliocentrism) च सङ्केतान् अकरोत्। तेन पृथिव्याः परिधिः (Circumference) अपि अत्यन्तं समीपस्थतया परिगणितः। अत्र ध्यातव्यं यत् ज्योतिषशास्त्रं केवलं फलितज्योतिषं (Astrology) नास्ति, अपितु गणितीयखगोलशास्त्रस्य (Mathematical Astronomy) गहनः ग्रन्थः वर्तते। ब्रिटिशकाले यदा भारतीयशास्त्राणाम् उपेक्षा अभवत्, तदा बहवः वैज्ञानिकग्रन्थाः केवलम् आध्यात्मिककोटौ निःक्षिप्ताः। किन्तु सत्यम् इदम् एव यत् ब्रह्मगुप्तस्य ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते शून्यस्य, ऋणात्मकसंख्यानां च बीजगणितीयाः क्रियाः सन्ति।

अ). गणितस्य भारतीयमूलानि

भारतीयगणितेन विना आधुनिकगणितस्य कल्पना अपि असम्भव अस्ति। शून्यस्य आविष्कारः, दशमिकप्रणाली च भारतस्यैव देयम् अस्ति। शुल्बसूत्राणि (वेदाङ्गानि) यज्ञवेदिकानां निर्माणस्य ज्यामितीयनियमान् (Geometric Principles) यच्छन्ति। बौधायनशुल्बसूत्रे (८०० ई.पू.) पाइथागोरसप्रमेयस्य (Pythagoras Theorem) उल्लेखः बहु पूर्वमेव कृतः अस्ति। आचार्यः पिङ्गलः छन्दःशास्त्रे शून्यस्य प्रयोगं कृतवान्। परवर्तिके काले आर्यभटेन ब्रह्मगुप्तेन च अस्य गणितीयं महत्त्वं प्रतिपादितम्। अपि च, पिङ्गलाचार्यस्य छन्दःशास्त्रे (छन्दःसूत्रम्) द्विआधारी–सङ्ख्यापद्धतेः (Binary System) आधारः लभ्यते, यः अद्य कम्प्यूटरविज्ञानस्य आधारः अस्ति। पाय (Pi - \pi) : आर्यभटेन \pi इत्यस्य मानम् आसन्नतया 3.1416 इति निश्चितम्। 'चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्त्राणाम्। अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः।'[4] तर्कशास्त्रे गौतमस्य न्यायसूत्राणि तर्कस्य, प्रमाणस्य च गहनं विवेचनं कुर्वन्ति, यत् कृत्रिमबुद्धिमत्तायाः (Artificial Intelligence) मूलसिद्धान्तैः सह समानतां दर्शयति।

आ). खगोलविज्ञानम् (Astronomy)

प्राचीनभारते आकाशस्य ग्रहाणां च सूक्ष्मा गणना कृता आसीत्। हेलियोसेन्ट्रिज्म (Heliocentrism) : पाश्चात्त्यदेशेभ्यः पूर्वमेव भारतीयाः जानन्ति स्म यत् पृथिवी स्वकीये अक्षे परिभ्रमति। आर्यभटेन प्रतिपादितं यत् ताराः स्थिराः सन्ति, पृथिवी तु भ्रमति। 'अनुलोमगतिस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।/ अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्'[5] गुरुत्वाकर्षणम् (Gravity) : भास्कराचार्यः 'सिद्धान्तशिरोमणि' ग्रन्थे लिखति – / आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या। / आकृष्यते तत् पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।'[6]. अर्थात् पृथिव्याम् आकर्षणशक्तिः अस्ति।

४. योग एवं मस्तिष्कविज्ञानम्

पतञ्जलियोगसूत्रेषु मनसः, चित्तस्य च विविधाः वृत्तयः वर्णिताः। 'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः' इति प्रथमसूत्रे योगस्य लक्षणम् उक्तम्। अद्यतनकाले हार्वर्ड–आदिविश्वविद्यालयेषु योगस्य, ध्यानस्य च प्रभावेण मस्तिष्कस्य तरङ्गाः (Brain Waves) कथं परिवर्त्यन्ते इति संशोधनं प्रचलति। प्राणायामस्य, आसनानां च प्रभावः नाडीतन्त्रे (Nervous System) अन्तःस्रावीग्रन्थिषु (Endocrine Glands) च कथं भवति इति विषये आधुनिकवैज्ञानिकाः गवेषणां कुर्वन्ति। **'विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। / परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।'**[7]

५. भौतिकविज्ञानं रसायनं च (Physics and Chemistry)

प्राचीनभारते भौतिकविज्ञानस्य चर्चा दर्शनशास्त्रैः (विशेषतः वैशेषिकदर्शनेन) सह संयुक्ता आसीत्।

अ) परमाणुवादः (Atomic Theory)

महर्षिः कणादः (ई.पू. ६००) आधुनिक–'डाल्टन' महोदयात् सहस्रवर्षेभ्यः पूर्वमेव परमाणुसिद्धान्तं प्रस्तुतवान्। सः उक्तवान् यत् द्रव्यस्य अन्तिमः सूक्ष्मकणः परमाणुः भवति, यस्य विनाशः न सम्भवति (Indestructible)। द्वयणुक–र्त्यणुकम्: द्वौ परमाणू मिलित्वा 'द्वयणुकम्' (Diatomic molecule) रचयतः। त्रयः द्वयणुकाः मिलित्वा 'र्त्यणुकम्' (Triatomic Molecule) निर्मान्ति। एषः क्रमः आधुनिक–अणुविज्ञानस्य (Molecular Biology) सदृशः अस्ति।

'जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः। / तस्य षष्ठतमो भागः परमाणुः स उच्यते।'[8]

आ) गतिविज्ञानम् (Laws of Motion)

वैशेषिकसूत्रे 'वेगः' 'कर्म' च इति विषये विस्तरेण चर्चा अस्ति, या न्यूटन–महोदयस्य गतिनियमानां (Newton's Laws of Motion) पूर्वगामी मन्यते।

'वेगो निमित्तविशेषात् कर्मणो जायते... ।'[9]

अर्थात्, बाह्यनिमित्तेन (Force) पदार्थे वेगः/कर्म उत्पद्यते।

इ) ऊर्जा-द्रव्यमान-सम्बन्धः (Energy and Matter)

सांख्यदर्शने उक्तं यत् जगत् 'प्रकृति–पुरुषाभ्याम्' निर्मितम्। अत्र 'सत्त्व–रज–तम' इति गुणाः आधुनिकभौतिकशास्त्रस्य 'Proton, Electron, Neutron' इत्युवत् कार्यं कुर्वन्ति। पदार्थस्य नित्यत्वं (Law of Conservation of Mass) भारतीयेषु दर्शनेषु 'असतः सत् न जायते' इति रूपेण प्रतिष्ठितम् अस्ति।

ई) प्रकाशविज्ञानम् (Optics)

भास्कराचार्यः अन्यान्ये च विद्वांसः 'छाया' 'प्रतिबिम्ब' च इति विषये प्रकाशस्य सरलगतिं (Rectilinear

propagation of light) वर्णितवन्तः। वाराहमिहिरेण 'बृहत्संहितायाम्' प्रकाशस्य परावर्तनस्य (Reflection) अपवर्तनस्य (Refraction) च चर्चा कृता अस्ति।

६. उपसंहारः (Conclusion)

उपर्युक्तविमर्शेन स्पष्टं भवति यत् भारतीयज्ञानपरम्परा केवलं पौराणिककल्पनानां समूहः नास्ति, अपितु तस्याम् गणितस्य, खगोलशास्त्रस्य, चिकित्साशास्त्रस्य, भौतिकशास्त्रस्य च सुदृढाः सिद्धान्ताः निहिताः सन्ति। अस्माकं प्राचीनग्रन्थाः केवलं पूजापुस्तकानि न सन्ति, अपितु ते वैज्ञानिकानां शोधपत्राणि इव सन्ति। अस्माकं कर्तव्यं यत् वयं तेषां शास्त्राणाम् आलोचनात्मकं, वैज्ञानिकं च अध्ययनं कुर्मः, येन तेषां यथार्थं मूल्यं ज्ञायेत। यदि वयम् एतं प्राचीनं ज्ञानं आधुनिकतन्त्रज्ञानेन सह संयोजयामः, तर्हि भारतं पुनः 'विश्वगुरु' इति पदं प्राप्तुं शक्नोति।

७. ग्रन्थसूची (Bibliography) -

1. आर्यभटीयम् – आर्यभटः, चौखम्भा संस्कृत संस्थान।
2. चरकसंहिता – अग्निवेशकृत, संस्कृत संस्थान।
3. सुश्रुतसंहिता – महर्षि सुश्रुतः।
4. सिद्धान्तशिरोमणि – भास्कराचार्यः।
5. वैशेषिकदर्शनम् – महर्षि कणादः।
6. Prachin Bharatiya Vigyan (Modern Reference) – Dr. Satya Prakash.
7. The Crest of the Peacock – George Gheverghese Joseph (For Math history).
8. Singh, Bal Ram, et al., editors. Science and Technology in Ancient Indian Texts. D.K. Printworld, 2012. [यह पुस्तक जेएनयू में आयोजित एक सेमिनार का परिणाम है जिसमें प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निहित भौतिकी, रसायन, गणित एवं आयुर्वेद के वैज्ञानिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है]
9. - Das, Ratna, et al. Indian Knowledge System Through the Ages : From Vedas to Modern Science. Infinity Publication, 2025. [यह पुस्तक वैदिक काल से आधुनिक विज्ञान तक भारतीय ज्ञान परम्परा की अंतःविषयक (Interdisciplinary) समीक्षा प्रस्तुत करती है]
10. - Sarma, K.V., et al., editors. Scientific Literature in Sanskrit. Vol. 1, Motilal Banarsidass, 2011. [यह खंड १३वें विश्व संस्कृत सम्मेलन में प्रस्तुत शोधपत्रों का संग्रह है, जिसमें ज्योतिष, आयुर्वेद, रसायन, रत्नशास्त्र आदि विविध वैज्ञानिक विषयों पर संस्कृत साहित्य का विवेचन है]

८. सन्दर्भः -

1. ऋग्वेदे– १.१६४.४६
2. चरकसंहिता – १.४१
3. सुश्रुतसंहिता
4. आर्यभटीयम्
5. आर्यभटीयम्, गोलपादः–६

6. भास्कराचार्यः, सिद्धान्तशिरोमणिः
7. भगवद्गीता– १८.३८ – मनस्तत्त्वम्
8. महर्षि कणादः– वैशेषिकसूत्रम्
9. वैशेषिकसूत्रम् ५.१.१६

SUBHAS PAL
C/o - NIKHIL PAL
ADD - GANDHICOLONI. NEAR BAPUJI PATHAGAR SCHOOL
P.O- BERHAMPORE. DIST- MURSHIDABAD (WEST BENGAL) PIN-742101
Con No. 9564146578
spsubhaspal@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 199–202
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

बी. एल. एड. प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान पर एक अध्ययन

डॉ. सुदीप कुमार
नेकपुर कलाँ, इटावा बरेली हाइवे
ए0 आर0 टी0 ओ0 आफिस के पीछे, पोस्ट फतेहगढ़, जिला फर्रूखाबाद–209601

प्रस्तुत शोध कार्य बी0एल0एड0 कक्षाओं में प्रशिक्षणरत् ग्रामीण और शहरी प्रशिक्षुओं के आत्मसंज्ञान के अध्ययन के लिए किया गया है। शाहजहाँपुर के डिग्री कालेजों में प्रशिक्षणरत् प्रशिक्षुओं का चयन किया गया। शोध पत्र में डॉ0 पुनिता गोविल की आत्म संज्ञान सूची को आकड़े संग्रहण करने के लिए लिया। बी0एल0एड0 प्रशिक्षुओं बालक और बालिकाओं के आत्म संज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

मूल शब्द :– आत्म संज्ञान, प्रशिक्षु, शहरी, ग्रामीण।

प्रस्तावना :– शिक्षा ज्ञान का मूल स्रोत है यह एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जो शिक्षक और विद्यार्थियों के मध्य सतत् रूप से चलती रहती है। अतः शिक्षा की विकास की प्रक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि विद्यार्थियों का मानसिक एवं सामाजिक स्तर कैसा है, उनका मानसिक एवं सामाजिक विकास उनके आत्मविश्वास एवं आत्म संज्ञान की क्षमता के ऊपर निर्भर करता है क्योंकि आज आत्म संज्ञान का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जिसका अर्थ है कि सोचो की कैसे सोचें। चिन्तन कौशल में विभिन्नता हेतु यह एक निर्धारक घटक है। इसी कारण से आत्म संज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। आत्म संज्ञान का अध्ययन अभी अपनी शैशवावस्था में है। आत्म संज्ञान व्यक्ति के मस्तिष्क में उचित कार्य की जानकारी डालता है। वो कभी ध्यान केन्द्रित कर, कभी व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा केन्द्रित है यह आत्म संज्ञान के उच्च शिक्षण कौशल और शिक्षा का एक विशिष्ट इकाई का

एक हिस्सा हो सकता है। प्रशिक्षु अपनी स्मृति के अनुसार अपने कार्य की विषय वस्तु से अभिभूत हो जायेगा। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत ग्रामीण व शहरी बालक और बालिका प्रशिक्षुओं में पाया जाने वाला आत्म संज्ञान किस प्रकार का पाया जायेगा।

शोध उद्देश्य :–

1. ग्रामीण एवं शहरी बी0एल0एड0 प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान का अध्ययन करना।
2. बालक एवं बालिका बी0एल0एड0 प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनायें :–

1. ग्रामीण एवं शहरी बी0एल0एड0 प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. बालक एवं बालिका बी0एल0एड0 प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सीगांकन :– शोध कार्य उत्तर प्रदेश के जनपद शाहजहाँपुर के डिग्री कालेजों गें प्रशिक्षणरत् बी0एल0एड0 बालक–बालिका प्रशिक्षुओं तक ही सीमित है।

शोध विधि :– शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया।

शोध उपकरण :– शोध कार्य में डॉ0 पुनिता गोविल द्वारा निर्मित आत्म संज्ञान सूची का चयन किया गया।

न्यादर्श :– शोध कार्य में प्रारम्भिक शिक्षा में स्नातक पाठ्यक्रम के प्रशिक्षणरत् प्रशिक्षुओं जिसमें 30 बालक एवं 30 बालिकाओं का चयन किया गया। शोध में यादृच्छिक विधि से प्रशिक्षुओं का चयन किया गया।

शोध सांख्यिकी :– शोध कार्य में गणना हेतु निम्न सांख्यिकी का प्रयोग किया गया।

मध्यमान, मानक विचलन, क्रांतिक अनुपात, ग्रामीण

1. ग्रामीण व शहरी बी0एल0एड0 प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता की तुलना

सारणी संख्या–1

क्र0सं0	समूह	न्यादर्श	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता 0.05 स्तर पर
1.	ग्रामीण प्रशिक्षु	30	31.40	3.42	1.12	असार्थक
2.	शहरी प्रशिक्षु	30	32.65	4.35		

ग्रामीण व शहरी प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान की तुलना करने पर मध्यमान क्रमशः 31. 40, 32.65 व मानक विचलन 3.42 एवं 3.35 प्राप्त हुआ। प्राप्तांकों के आधार पर गणना द्वारा क्रांतिक अनुपात 1.12 df 178 पर 0.05 विश्वास स्तर क्रांतिक अनुपात मान सार्थकता स्तर से कम है इससे स्पष्ट होता है ग्रामीण व शहरी प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान के मध्यमानों सार्थक अन्तर नहीं है अतः परिकल्पना 01 स्वीकृत की जाती है।

2. बालक व बालिका बी0एल0एड0 प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता की तुलना

सारणी संख्या–2

क्र0सं0	समूह	न्यादर्श	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता 0.05 स्तर पर
1.	बालक	30	42.62	5.84	0.291	असार्थक
2.	बालिका	30	42.20	6.41		

बालक व बालिका प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान की तुलना करने पर मध्यमान क्रमशः 42.62 तथाा 42.20 व मानक विचलन 5.84 एवं 6.41 प्राप्त हुआ। प्राप्तांकों के आधार पर गणना द्वारा क्रांतिक अनुपात का मान 0.261 df 178 पर 0.05 विश्वास स्तर क्रांतिक अनुपात मान 1.96 है गणना द्वारा प्राप्त क्रान्तिक अनुपात मान सार्थकता स्तर से कम इससे स्पष्ट होता है कि बालक एवं बालिका प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान के मध्यमानों सार्थक अन्तर नहीं है अतः परिकल्पना 02 स्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष :– इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि ग्रामीण एवं शहरी प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। इसी प्रकार बालक एवं बालिका

प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान में भी अन्तर नहीं पाया गया। प्रशिक्षु एवं अधिगमकर्ता आत्म संज्ञान के ज्ञान व व्यूह रचनाओं के अनुसार कुछ योग्यतायें प्राप्त करता है। जैसे– कमजोरी के प्रति स्वतः जागरूक, अच्छी जानकारी, अभिवृत्ति निरन्तरता व्याकुलता आदि शोधकर्ता के निष्कर्ष पूर्व में किये गये शोध कार्यों के समान ही प्राप्त हुये हैं। यदि कहीं कोई असमानता भी है वह भी बहुत ही मामूली है।

अग्रिम शोध हेतु सुझाव :

1. शोध कार्य माध्यमिक स्तर पर किया जा सकता है।
2. शोध कार्य प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों पर किया जा सकता है।
3. शोध कार्य विश्वविद्यालय स्तर पर किया जा सकता है।
4. शोध कार्य सरकारी एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों पर किया जा सकता है।
5. शोध कार्य केन्द्रीय विद्यालय के विद्यार्थियों पर किया जा राकता है।
6. शोध कार्य बी0एड0 प्रशिक्षुओं पर किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

कपिल, एच0के0 (2013–14) सांख्यिकीय के मूलतत्व, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

अस्थाना, विपिन (2012–13) शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकीय, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

राय, पारसनाथ (1999) अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नरायण, आगरा।

शर्मा आर0ए0 (2012) शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया आर0 लालबुक डिपो, मेरठ।

टिंकी एवं स्टोसी एंजिला (2000) आत्म संज्ञान की रसायन विज्ञान में भूमिका का अध्यन, जनरल ऑफ कैमिकल एजुकेशन, जुलाई 2000 रिसर्च लाइब्रेरी।

बालिया एवं खिमनानी (2011) आत्म संज्ञान व विज्ञान विषय में बी0एड0 के छात्र एवं छात्राध्यापकों के आत्म संज्ञान का अध्ययन, एजुकेशन क्यूस्ट इण्टरनेशनल जनरल ऑफ एजुकेशन एण्ड एप्लिकेड सोशल साइन्स, आगरा।

sudeepku1982@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 203–208
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

दलित विमर्श : आर्तनाद से अस्मिता की प्रखर चेतना तक

डॉ. रेशमा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
एस. एन. सेन बा. वि. पी. जी. कॉलेज, कानपुर (उ. प्रदेश) 208001

'साहित्य' समाज में घटित सभी संवेदनाओं को अपने भीतर समेट लेता है। समाज में निवास करने वाले प्राणियों के सुख-दुःख, संत्रास, वेतना, करुणा, पुकार इत्यादि का यथार्थ चित्रण करना साहित्य का मुख्य कार्य है, इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न विधाओं व तत्कालीन विभिन्न विमर्शों में 'दलित विमर्श' मुख्य विमर्श कहा जा सकता है। शूद्र, अनार्य, अछूत, चाण्डाल, अश्पृश्य, श्वपच, अछूत और हरिजन इत्यादि शब्दों को दलित शब्द का समानार्थी कहा गया है। दलित शब्द का अर्थ है 'दबाया हुआ, कुचला हुआ।' दलित शब्द ''आक्रोश, चीख, वेदना, पीड़ा, चुभन, और छटपटाहट का प्रतीक है।''[1] समाज का कोई भी वर्ग यदि सदियों से अधिकारों से वंचित है, शोषित, प्रताड़ित, पीड़ित है वह दलित वर्ग की श्रेणी में आता है, लेकिन वर्तमान में दलित शब्द का अर्थ जातिगत व्यवस्था के कारण शूद्र, या निम्न वर्ग में जन्म लेने वाले प्राणियों के लिए रूढ़ हो गया है।

भारत में अंग्रेजी सत्ता के पूर्व दलित अर्थात् ऐसा वर्ग जिसे रोटी, कपड़ा व मकान जो मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है, से वंचित रखा जाता था। दलित अपनी पसंद की जगह पर घर नहीं बना सकते, इन्हें गाँव से दूर दक्षिण दिशा में छप्पर, मड़ैया बनाकर रहने के लिए बाध्य किया जाता था। इन्हें अपने पसंद के कपड़े व जेवर पहनने का अधिकार नहीं था। ये पौष्टिक भोजन व स्वच्छ जल पीने के अधिकारी

नहीं थे। इन्हें शिक्षा ग्रहण करने का भी अधिकार नहीं था, इन लोगों को सेवक, दास, नौकर, चाकर के रूप में उच्च वर्ग के द्वारा कार्य करवाया जाता था और पारिश्रमिक के बदले फटे-पुराने कपड़े, जूठा भोजन और जातिगत अपमान किया जाता था। दलित वर्ग को परिभाषित करते हुए डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने कहा है कि, ''दलित जातियाँ वे हैं, जो अपवित्रकारी होती हैं, इनमें निम्न श्रेणी के कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बसौर सेवक जातियाँ जैसे चमार डँगारी (मरे पशु उठाने के लिए) सउरी (प्रसूति गृह का कार्य करने वाला) ढोला-ढफली बजाने वाले आते हैं।''

हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श के उद्भव की चर्चा यदि हम करें तो प्रायः 8वीं-9वीं शताब्दी में वज्रयानी, सरहपा, नाथपंथ में वर्ण व्यवस्था के खण्डन के रूप में विद्यमान है। निर्गुण सन्तों ने वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति, ब्राह्मण-शूद्र, कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा और पाखण्ड का कड़ा विरोध किया। दलित विमर्श के बीज निर्गुणोंपाशक सन्तों की वाणियों में छिपे मिलते हैं संत कबीरदास जी ने कहा-

एक तुचा हाड़ मल मूता, एक रिधुर एकै गूदा।
एक बूँद सो सृष्टि रची है, को बाभन को सूदा।।
ऊँचे कुल का जनमिया, जो करनी ऊँच न होई।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधु निंदा सोई।।[2]

सन् 1873 ई0 में महात्मा ज्योतिबाराव फुले द्वारा लिखित पुस्तक 'गुलामगिरी' दलित चेतना के विकास में मील का पत्थर मानी जाती है। यह पुस्तक जातिगत भेदभाव के विरूद्ध वैचारिक युद्धघोष है।

ज्योतिबाराव फुले का मानना था कि शूद्रों की गलामी का मुख्य कारण शिक्षा का अभाव है-

विद्या बिना मति गई, मति बिना नीति गई।

नीति बिना गति गई, गति बिना वित्त गया।।

वित्त बिना शूद्र टूटे, इतने अनर्थ एक अविद्या ने किए।।

इस पुस्तक के आने के पश्चात् दलित वर्ग में आत्मविश्वास की चेतना का आर्विभाव हुआ। दलित, वेद, पुराण व मनुस्मृति के यथार्थ जगत से परिचित हुए। बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक के मध्य में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का आर्विभाव महाराष्ट्र में हुआ। उन्होंने जाति व्यवस्था, अन्याय, अत्याचार का खुलकर विद्रोह किया और 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो' का नारा दिया। इसका महाराष्ट्र में बड़ा प्रभाव पड़ा। उत्तर भारत भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा।

हिन्दी में दलित साहित्य लेखन कार्य सन् 1960 ई0 के बाद शुरू हुआ यद्यपि इसके बीज सिद्ध और नाथ पंथ के गुरुओं के समय में ही पाये गये थे, हिन्दी के सन्त कवियों के समय उसके बीज अंकुरित हुए, स्वतंत्रता-संग्राम कालीन कवियों के समय उसमें पत्ते निकलते हुए, हिन्दी के प्रगतिशील कवियों के काल में उसकी अभिवृद्धि हुई और सन् 1960 के बाद दलित साहित्यकारों ने उसे पल्लवित और पुष्पित कर दिया। दलित साहित्य पर डॉ0 अम्बेडकर का बहुत प्रभाव पड़ा, इसलिए दलित साहित्य मुख्य धारा के रूप में पहले मराठी में आया फिर हिन्दी में।[4]

दलित साहित्य के तीन सूत्र हैं- पहला वेदना अर्थात् हजारों वर्षों से समाज जिसे जी रहा है, वह वेदना दलित साहित्य का प्रमुख अंग है, पूरे दलित साहित्य में वेदना दिखाई पड़ती है। दूसरा सूत्र है नकार कि हम यह जिन्दगी नहीं चाहते, हम इंसान की जिंदगी जीना चाहते हैं। तीसरा सूत्र-विद्रोह। आक्रोश और नकार के बाद जब विद्रोह आने लगा तो मराठी में बहुत हलचल पैदा हो गयी कि विद्रोह की बात नहीं होनी चाहिए। इससे समाज में दरार पड़ेगी। यह तीखा स्वर है। तोड़-फोड़ की भाषा है। मैं पूछती हूँ- हम हजारों बरसों से झाड़ू लगा रहे थे, झोपड़ियों में थे, विद्रोह की बात नहीं करते थे, जी-जी करके बात करते थे, तब आपकी दया कहाँ थी? जब हम न्याय की बात करते है, और अधिकार की बात करते हैं, तो आपको लगता है कि समाज में दरार पैदा होगी। ये तो हजारों वर्षों से चलती आ रही दरार है, इसको ही पाटना है।''[५]

दलित विमर्श सदियों से हाशिए पर ढकेले गए समाज का वैचारिक आन्दोलन है। यह मूक बना दिये गये लेगों के मुखर होने की गाथा है। आर्तनाद को अस्मिता में बदलने का सबसे बड़ा श्रेय डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को जाता है। आज का दलित विमर्श आक्रात्मकता, तार्किकता और स्वाभिमान से लैस है। यह केवल विलाप नहीं करता, अपितु मुख्यधारा की मान्यताओं को चुनौती देता है।

कवि श्री चण्डी प्रसाद 'व्यथित' ने 'खुद अपना इतिहास बनाओ' कविता में लिखा है-

उठो साथियो बनो एक तुम,

नई शक्ति का दीप जलाओ,

मानव है पीड़ित शोषक से,

मुक्ति दिलाओ, मुक्ति दिलाओ।[6]

दलित ही दलित की पीड़ा बेहतर लिख सकता है। कवि हीराडोम की 'अछूत की शिकायत', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' तुलसीराम की मुर्दहिया, जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' इत्यादि रचनाओं ने समाज की नसों को झकझोर दिया।

इन रचनाओं ने पारंपरिक, सौन्दर्यशास्त्र को नकारा और 'सत्यम शिवम सुन्दरम्' के बजाय अनुभव की प्रमाणिकता को प्राथमिकता दी। आज दलित विमर्श की चेतना सत्ता के गलियारों तक पहुँचा है और 'वोट बैंक' से बदलकर नेतृत्व की ओर बढ़ रहा है। अब दलितों का मुद्दा न्यायपूर्ण और समतावादी समाज के निर्माण की अनिवार्य शर्त बन गया है। अस्मिता की प्रखर चेतना का ही परिणाम है कि आज युवा हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं।

सन्दर्भ-

1. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, पृ0सं0-34
2. दलित और दलित काव्यधारा-माता प्रसाद, पृ0सं0-49
3. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता, कालीचरण सनेही, पृ0सं0-94
4. साक्षात्कार से डॉ0 माता प्रसाद मित्र, पूर्व राज्यपाल।

5. दलित-साहित्य लेखन से जुड़े सुप्रसिद्ध मराठी साहित्यकार शरण कुमार लिम्बाने से गोपाल प्रधान की बातचीत का एक अंश। समकालीन जनमत अप्रैल, 1996

6. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, पृ0सं0 266

Email: reshama15101992@gmail.com
Mob.:6393718101

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 209-211
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Artificial Intelligence and Employment : Opportunities, Challenges and Future Impact

Dr. Nutan Sharma
Assistant Professor, Adarsh Mahila Mahavidyalaya, Bhiwani-127021

Abstract

Artificial Intelligence (AI) is rapidly changing the way people work across the world. It is helping businesses become faster and more efficient, but at the same time, it is also creating concerns about job loss and inequality. This research paper explains the impact of AI on employment in a simple and clear manner. It discusses how AI is used in different sectors, its advantages, and the challenges it brings. The paper shows that AI does not only replace jobs but also creates new opportunities. However, it is important for workers to adapt to these changes by learning new skills. The study concludes that the future of employment depends on how well society manages this technological change.

1. Introduction

Artificial Intelligence refers to machines or computer systems that can perform tasks which normally require human intelligence, such as thinking, learning, and decision-making. In recent years, AI has become a part of everyday life and is used in many areas like healthcare, education, banking, and industries. Because of this growing use, the nature of jobs is changing. Many tasks that were earlier done by humans are now being done by machines. This has led to an important question about whether AI will take away jobs or create new ones. Some people believe that AI will cause unemployment, while others think it will open new opportunities. This research paper aims to understand both sides and explain how AI is shaping the future of employment.

2. Objectives of the Study

The main objective of this study is to understand how Artificial Intelligence is affecting employment. It also aims to examine the benefits of AI in the workplace, identify the problems it creates, and study how it changes the quality of jobs. Another important goal is to suggest ways in which people and governments can deal with these changes in a better way.

3. Research Methodology

This research is based on secondary data, which means the information has been collected from books, research papers, and reports published by various organizations. The study uses simple analysis and explanation to understand the relationship between AI and employment. No primary data has been collected, and the focus is on understanding existing knowledge in an easy manner.

4. Uses of Artificial Intelligence in Employment

Artificial Intelligence is being used in many different ways in the modern workplace. It is commonly used to perform repetitive and time-consuming tasks such as data entry, answering basic customer queries, and managing records. This helps save time and reduces human effort. In the field of human resource management, AI is used to select suitable candidates by scanning resumes and analyzing skills. In healthcare, doctors use AI to detect diseases and study medical reports more accurately. In banking and finance, AI helps in detecting fraud and managing financial data. In education, AI-based systems help students learn better by providing personalized lessons. In industries and factories, AI-powered machines and robots are used to produce goods faster and with fewer mistakes. These examples show that AI is becoming an important part of almost every sector.

5. Advantages of AI in Employment

Artificial Intelligence provides many benefits in the workplace. One of the biggest advantages is that it increases productivity by completing tasks quickly and accurately. It also creates new types of jobs, especially in fields related to technology, such as data analysis and software development. Another important benefit is the improvement in job quality. AI reduces the need for employees to perform boring and repetitive tasks, allowing them to focus on more meaningful and creative work. It also makes workplaces safer by handling dangerous tasks in industries like mining and construction. In addition, AI helps employees maintain a better work-life balance by reducing workload and saving time. Workers also get opportunities to learn new skills through AI-based training systems, which helps them grow in their careers. Overall, AI can make jobs more satisfying and comfortable for employees.

6. Challenges and Concerns

Despite its advantages, AI also creates several challenges. One of the major concerns is job loss, especially for workers who perform simple and repetitive tasks. As machines take over these roles, many people may become unemployed. Another problem is the skill gap, as many workers do not have the knowledge required for new AI-based jobs. This can increase unemployment and make it difficult for people to find work. AI can also lead to income inequality, where highly skilled workers earn more while others struggle.

7. Impact of AI on Different Sectors

The impact of AI is different in different sectors. In manufacturing, machines are replacing manual labor, but at the same time, new technical jobs are being created. In healthcare, AI helps doctors perform their work more efficiently, but it cannot replace human care and judgment. In education, teachers are supported by AI tools, but their role remains important. In retail, self-service systems are reducing traditional jobs like cashiers, but new roles related to technology are emerging. The IT sector is growing rapidly due to AI, creating many new job opportunities. This shows that AI is not simply removing jobs but changing the type of work people do.

8. Time-Based Impact of AI

The impact of AI on employment can be understood over time. In the short term, there may be job losses and uncertainty among workers. In the medium term, jobs start to change, and people need to learn new skills to stay employed. In the long term, AI is expected to create new industries and job opportunities, leading to economic growth. Therefore, while AI may cause temporary problems, its long-term effects can be positive if managed properly.

9. Suggestions and Recommendations

To deal with the challenges of AI, several steps should be taken. Workers should focus on learning new skills so they can adapt to changing job requirements. The education system should also be improved to include technology and problem-solving skills. Governments should provide support to workers who lose their jobs and help them find new opportunities. It is also important to ensure that AI is used in a fair and ethical way. Finally, cooperation between governments, companies, and educational institutions is necessary to manage the impact of AI effectively.

10. Conclusion

In conclusion, Artificial Intelligence is transforming employment in many ways. It increases productivity, improves job quality, and creates new opportunities, but it also brings challenges like job loss and inequality. The future of employment depends on how well we adapt to these changes. If AI is used wisely and responsibly, it can improve the lives of people and create a better working environment for everyone.

11. References

This research is based on information collected from reports by organizations such as OECD and the World Economic Forum, along with various research papers and academic articles on Artificial Intelligence and employment.

nitu8978@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 3-4
पृष्ठ : 212-215
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

A Study on the Impact of Internet Dependency on Academic Proformance Among College Students

Dr. Merlin Jenefer
Assistant Professor, Department of Social Work, Nehru Arts and Science College, Coimbatore.

Introduction

The internet plays an indispensable role in higher education by facilitating access to information, communication, and learning platforms. However, excessive or uncontrolled internet use — often termed internet dependency — may negatively influence academic behaviors and outcomes. Internet dependency includes compulsive use, inability to control online activities, and usage patterns that interfere with daily responsibilities. Several studies suggest that while the internet supports learning, problematic use may distract students, reduce study time, and contribute to stress and sleep disturbances, ultimately impairing academic performance. In the context of expanding digital environments and blended learning modes in colleges, understanding this relationship is critical for educators, policymakers, and students.

Review of Literature

Internet Dependency

Internet dependency, often described within the framework of problematic internet use (PIU), has been studied extensively in recent decades. Young (1998) described it as uncontrolled online engagement leading to functional impairment. Subsequent research has emphasized psychological dependence, time displacement, and maladaptive use patterns.

Academic Performance and Digital Engagement

Recent studies show mixed outcomes. Some researchers found that moderate internet use for academic purposes correlates with higher academic achievement (Junco, 2012). However, dependency characterized by excessive gaming, social media, and unrelated content consumption is linked with poorer academic results (Salehan & Negahban, 2013).

Mechanisms of Impact

Cognitive theories suggest that high internet dependency disrupts attention span and executive functions, reducing the capacity for deep learning and sustained academic tasks. Behavioral research indicates that increased distraction from constant notifications and multitasking may reduce study efficiency.

College Students and Internet Dependency

Studies in university settings report significant prevalence of internet dependency among students, with associated outcomes such as anxiety, decreased sleep quality, and reduced GPA (Kuss & Griffiths, 2017). However, few studies combine academic records with dependency measures in diverse student populations.

Objectives

1. To assess the level of internet dependency among college students.
2. To investigate the relationship between internet dependency and academic performance.
3. To explore students' online use patterns that contribute to academic outcomes.

Methodology

Research Design

This study employed a cross-sectional mixed-method design, combining quantitative surveys with academic performance data and qualitative student interviews.

Participants

- Sample Size: 300 undergraduate students from three colleges.
- Sampling Technique: Stratified random sampling to represent various academic programs and years.
- Inclusion Criteria: Enrolled full-time, access to the internet via personal devices, and consent to participate.

Tools and Measures

1. Internet Dependency Scale (IDS): A validated tool measuring compulsive use, preoccupation, and control difficulties with internet engagement.
2. Academic Records: Cumulative Grade Point Average (CGPA) collected with student consent.
3. Semi-Structured Interview Schedule: Explored usage habits, purpose of internet use, and perceived academic effects.

Procedure

After obtaining ethical approval and informed consent, participants completed the IDS and provided academic record authorization. Subsequently, a subset (n=30) participated in interviews. Quantitative data analysis used SPSS (v26), including correlation and regression; qualitative data underwent thematic analysis.

Analysis

Quantitative Analysis

- Descriptive Statistics: Mean internet dependency score was 52.8 (SD = 14.2) on a 0–100 scale, indicating moderate to high dependency for many students.
- Correlation: A significant negative correlation was found between internet dependency scores and CGPA ($r = -0.45$, $p < 0.001$), suggesting that higher dependency corresponds with lower academic performance.
- Regression Analysis: Internet dependency significantly predicted academic performance ($\beta = -0.42$, $t = -6.8$, $p < 0.001$), even after controlling for hours of study and socio-demographic variables.

Qualitative Analysis

Theme 1 — Multifaceted Usage Patterns: Students reported using the internet for both academics and entertainment. Excessive time on social media and streaming platforms was common.

Theme 2 — Distraction and Study Disruption: Many students indicated difficulty concentrating due to constant online notifications and multitasking.

Theme 3 — Perceived Academic Impact: While some students acknowledged internet benefits for research and assignments, several expressed that unregulated use reduced study time and increased procrastination.

Findings

1. High Internet Dependency Prevalence: Many students displayed moderate to high levels of dependency.
2. Negative Impact on Academic Performance: Internet dependency was negatively correlated with CGPA and predicted reduced academic outcomes.
3. Usage Patterns Affecting Studies: Entertainment and social media use contributed most to dependency and academic distraction.
4. Mixed Perceptions: Students recognized academic utility of internet use but struggled to regulate non-academic online activities.

Conclusion

This study confirms a significant negative relationship between internet dependency and academic performance among college students. Excessive, unregulated internet use — particularly for non-academic purposes — undermines study habits and academic achievement. While the internet is indispensable for learning, dependency that limits self-control and focus can be detrimental.

Suggestions

1. Digital Literacy Workshops: Educate students on healthy internet habits and time management skills.
2. Institutional Policies: Encourage structured internet usage schedules in academic settings.
3. Counseling and Support Services: Provide resources for students struggling with problematic internet use.
4. Further Research: Longitudinal studies to explore causal pathways and intervention effectiveness.

References

Junco, R. (2012). Too much face and not enough books: The relationship between multiple social network site use and academic performance. *Computers & Education.*

Kuss, D. J., & Griffiths, M. D. (2017). Social networking sites and addiction: Ten lessons learned. *International Journal of Environmental Research and Public Health.*

Salehan, M., & Negahban, A. (2013). Social networking on smartphones: When mobile phones become addictive. *Computers in Human Behavior.*

Young, K. S. (1998). Internet addiction: The emergence of a new clinical disorder. *CyberPsychology & Behavior.*

jenesk26@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा). काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया प्रकाशन एवं गिना प्रकाशन द्वारा
संयुक्त रूप से नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2394-6458
Impact Factor : 6.500

RESEARCH JOURNAL OF MEEMANSA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Editor-in-Chief : Dr. Lata S. Patil
Managing Editor : Dr. Jaivir Langyan M. 9728790909

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय #202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

जनजातीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन की आवश्यकता

Authored by

डॉ. नरेश कुमार

(अतिथि व्याख्याता–समाजशास्त्र)

वीरांगना अवंती बाई शासकीय महविद्यालय, छुईखदान,

जिला–खैरागढ़–छुईखदान–गण्डई (छ.ग.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,

Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 08-16

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)
Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

INDIANS DIASPORA IN THAILAND : MIGRATION AND OCCUPATIONAL ENGAGEMENTS

Authored by
Chandan Kumar Yadav, Ph.D. Research Scholar
Department of Medieval and Modern History,
University of Lucknow, Lucknow
Prof. Pawan Kumar Yadav
Department of History (RMP PG College, Sitapur)
University of Lucknow, Lucknow.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 17-25

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

कल्याणकारी योजनाओं में आधार और डिजिटल पहचान की भूमिका

Authored by

आस्था तिवारी (शोधार्थी)

प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या)

विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 26-30

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

A STUDY ON ACADEMIC STRESS IN SECONDARY SCHOOL STUDENTS

Authored by

Dr. Aarti Aarya, Professor,
BCG Shiksha Mahavidhyalaya, Dewas, Madhya Pradesh, India

Ms. Sheetal Bhagat
BCG Shiksha Mahavidhyalaya, Dewas,
Affiliated to Vikram University, Ujjain (M.P.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 31-37

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

भारतीय संसद की कार्यप्रणाली में गिरावट : कारण, परिणाम और सुधार की सम्भावनाएँ

Authored by

डॉ० राजेश कुमार

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
सतीश चन्द्र कॉलेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 38-42

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

'अकाल में उत्सव' उपन्यास में अभिव्यक्त किसान जीवन की त्रासदी

Authored by

पवन कुमारी

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 43-47

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

शाश्वत चेतनता के प्रतिरूप : 'हिन्द की चादर' श्री गुरू तेग बहादुर जी

Authored by

डॉ. तेजिंदर कौर

असिस्टेंट प्रो., स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
हिन्दू कन्या कॉलेज, कपूरथला (पंजाब)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 48-52

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में ग्रामीण और शहरी जीवन का तुलनात्मक अध्ययन

Authored by

डॉ. पंचानन महतो

सहायक प्राध्यापक,

ए. आर. एस. बी. एड. कॉलेज, बोकारो, झारखंड।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,

Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 53-57

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

प्याजे के रचनावाद के माध्यम से माध्यमिक विज्ञान शिक्षा का पुर्नव्याख्यात्मक दार्शनिक विश्लेषण

Authored by

डॉ. आरती आर्य

प्रोफेसर, शोध निर्देशक, बीसीजी शिक्षा महाविद्यालय, देवास,
सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 58-71

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

Impact of Artificial Food Dyes and Preservatives on Human Health and Strategies for Sustainable Regulation in India

Authored by

Bhagirath Mal Raigar
Assistant Professor, IASE Deemed to be University,
Sardarshahar, Churu, Rajasthan, India.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 72-78

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

मुद्रास्फीति और बेरोजगारी के बीच संबंध : भारतीय परिप्रेक्ष्य में फिलिप्स वक्र का अध्ययन

Authored by

राकेश कुमार वर्मा

सहायक आचार्य,

राजकीय स्नातक महाविद्यालय, नकुड़, सहारनपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,

Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 79-85

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

पन्नाधाय का त्याग, बलिदान व राजधर्म

Authored by

डॉ. उर्मिला शर्मा

व्याख्याता, हतिहास विभाग,
राजकीय कन्या महाविद्यालय, मंडावरी, दौसा।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 86-89

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

Socioeconomic Status and Academic Achievement : Systemic Barriers in Education

Authored by

Dr. Manish Rathore
Principal
M.L.D T.T College Banswara

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 90-94

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

From Rote to Critical Thinking : Curriculum Reform in Secondary Education

Authored by

Dr Priyanka Singh

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 95-98

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संतुलन : समकालीन राजनीतिक विमर्श

Authored by

नरेश पाल

असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति शास्त्र,
पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, तिलहर, शाहजहांपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 99-103

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

कुइयाँजान उपन्यास में पारिस्थितिकीय विमर्श

Authored by

डॉ कला ए.

सह प्राध्यापक,

भारत माता कॉलेज (स्वायत्त), त्रिक्काकरा, एरणाकुलम।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,

Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 104-109

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

English Communication Skills and Employability in Non-Native English-Speaking Countries

Authored by

Dr. S. Sudha, Assistant Professor, Department of English,
Dr. M. Mary Velanganni, Assistant Professor, Department of English,
Dr. Vijayalakshmi. S, Assistant Professor, Department of English,
Dr. B. Abirami, Assistant Professor , Department of English,
Mr. B. Manojkumar, Assistant Professor, Department of English,
Dr. K. Angel Vinoliya, Assistant Professor , Department of English,
Dr. S. Swarnalatha, Associate Professor, Department of Hindi,
Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Nava India, CBE-641 006, Tamilnadu.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 110-114

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

समसामायिक कला जगत में जयपुर की महिला कलाकारों के चित्रों एवं शिल्पों के माध्यम

Authored by

अमनदीप कौर, शोधार्थी

डॉ. सोनिया रानी, Asst. Prof.

Faculty of Art & Craft Science

टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,

Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 115-117

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

Effective Classroom Management Techniques And Improvement In Student Behavior : A Detailed Study

Authored by

Dr. Mahesh Kumar Sharma

Principal in D.EL.ED., Department of Education,
Institute of Advanced Studies in Education (IASE),
Gandhi Vidya Mandir, Sardarshahar

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 118-121

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

SHG समूह की प्रमुख भूमिका : महिला सशक्तिकरण, सामाजिक परिवर्तन और ग्रामीण विकास का एक प्रभावी माध्यम

Authored by

Anju Kumari
Research Scholar, Economics Department,
Radha Govind Univercity, Ramgarh.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 122-132

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना : ग्रामीण आजीविका सुरक्षा, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास का एक सशक्त माध्यम

Authored by

Pushpa Kumari,
Research Scholar
Economics Department, YBN Univercity, Ranchi.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 133-142

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

किन्नर जीवन : पीड़ा की एक अनकही दास्तान ('पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

Authored by

विशाल साहु

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
रेवेंशॉ विश्वविद्यालय, कटक–753003

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 143-148

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

विद्यार्थियों की शैक्षणिक प्रगति और मानसिक स्वास्थ्य पर डिजिटलीकरण का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Authored by

डॉ राजीव कुमार सक्सेना

असोसिएट प्रो०, समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय महाविद्यालय बनबसा (चम्पावत)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 149-155

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)
Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

Influence of Animated Media on Value Formation and Emotional Responses in Secondary School Students

Authored by
Dr Arti Arya, Research Guide,
Professor, BCG shiksha Mahavidyalay
Dewas Samrat Vikramaditya university Ujjain (M.P)
Ms Ayushi, Research Scholars
BCG shiksha Mahavidyalay and Research Center Dewas
Affiliated to Samrat Vikramaditya university Ujjain (M.P)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 156-167

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्वास्थ्य समस्या और वनौषधि ज्ञान परंपरा

Authored by

रिया श्रीवास्तव, शोधार्थी
विद्यासागर विश्वविद्यालय,
मेदिनीपुर, पश्चिम बंगाल।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 168-171

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी चेतना के स्वर

Authored by

डॉ. नीतू शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 172-177

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

एक महिला साहित्यकार की विवादित आत्मकथा 'अन्या से अनन्या'

Authored by

शशि नाथ प्रसाद (पीएच०डी शोधार्थी), हिन्दी– विभाग
पंजीयन संख्या : JPU/2021-2024/Ph.D/00275.
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 178-181

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

हठयोग एवं स्वास्थ्य : एक समीक्षात्मक अध्ययन

Authored by

संतोष कुमारी[1], डॉ. सत्यप्रकाश पाठक[2], अजय कुमार[3], महेन्द्र सिंह[4]

2 सहायक प्रोफेसर, योग अध्ययन विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला 171005

1, 3, 4 शोधार्थी, योग अध्ययन विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला 171005

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 182-189

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

श्रीरामचरितमानस में संस्कृति का धार्मिक चित्रण

Authored by

पूनम, षोधार्थी,

प्रोफेसर संजीव कुमार (षोध निर्देषक)

हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विष्वविद्यालय,

अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,

Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 190-193

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

भारतीयज्ञानपरम्परायामन्तर्निहितवैज्ञानिकतत्त्वानि

Authored by

सुभाषः पालः

शोधछात्रः, दर्शनविभागः, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः
(केन्द्रीयविश्वविद्यालयः) नवदेहली– 110016

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 194-198

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

बी. एल. एड. प्रशिक्षुओं के आत्म संज्ञान पर एक अध्ययन

Authored by

डॉ. सुदीप कुमार

नेकपुर कलाँ, इटावा बरेली हाइवे
ए0 आर0 टी0 ओ0 आफिस के पीछे, पोस्ट फतेहगढ़,
जिला फर्रूखाबाद–209601

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 199-202

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

दलित विमर्श : आर्तनाद से अस्मिता की प्रखर चेतना तक

Authored by

डॉ. रेशमा

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
एस. एन. सेन बा. वि. पी. जी. कॉलेज, कानपुर (उ. प्रदेश) 208001

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 203-208

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate* of Publication for the paper titled

Artificial Intelligence and Employment : Opportunities, Challenges and Future Impact

Authored by

Dr. Nutan Sharma
Assistant Professor, Adarsh Mahila Mahavidyalaya,
Bhiwani-127021

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 209-211

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

https://doi.org/10.5281/zenodo.20514515

Certificate of Publication for the paper titled*

A Study on the Impact of Internet Dependency on Academic Proformance Among College Students

Authored by

Dr. Merlin Jenefer
Assistant Professor, Department of Social Work,
Nehru Arts and Science College, Coimbatore.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, March-April 2026,
Vol. 14, Issue 3-4, Part-3, Page No. 212-215

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com